
स्वाद व सुगन्ध में आज भी
रत्ना
त का
सिफ मलिक कांड
क परिवार को
ात्महत्या के लिए
कैसे विवश
किया गया
जिन्दा समाधि :
यह कैसी भक्ति
शव क्या जीवित हो सकता है :
भवाल संन्यासी का हैरतअंगेज मुकदमा





मनोहर कहानियाँ

जून १९९८

इस अंक में



३८

मेजर आशुतोष कुमार की शहादत
कश्मीर में मेजर आशुतोष कुमार ने जिस जांबाजी एवं वीरता का परिचय दिया, उसकी मिसाल कम ही मिलती है



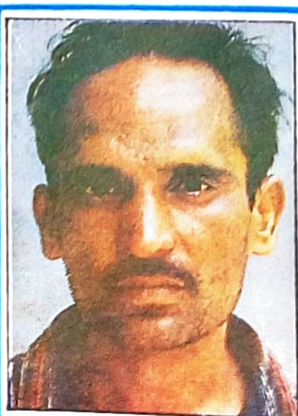
९८

जुनून
प्रेमिका को जुनून की हद तक चाहनेवाले एक व्यक्ति की वहशत-कथा



८

कृष्ण-प्रेम में बदला जीवन
कृष्ण-प्रेम में कल की रोजालिया आज की राधिकाप्रिया है



१५

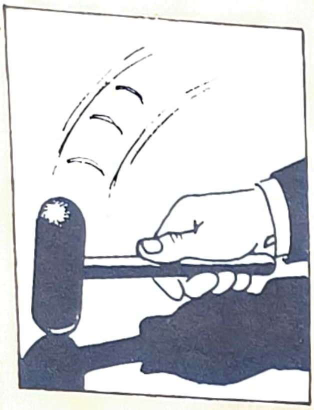
इंसानी गुर्दे के व्यापार में..
मानव-गुर्दे की खरीद-फरोख्त का खुलासा करती सनसनीखेज कहानी

लघु कथाएं

आवरण पारदर्शी माडलिंग पर आधारित

संपादकीय कार्यालय : मनोहर कहानियां,
२८१, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद-३
Air Surcharge Rs. 1 per copy for Kathmandu, 50 paise per copy for Dibrugarh, Dimapur, Imphal, Jorhat, Mohanbari, Shillong, Silchar, Port Blair, Tinsukia and Tezpur. For Agartala it is 25 paise

फेमस ट्रायल



पूर्वी बंगाल की भवाल रियासत के राजकुमार रमेन्द्र नारायण राय की दार्जिलिंग में 'मृत्यु' होने पर वहीं उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया था। बारह साल बाद अचानक एक संन्यासी के प्रकट होने पर विवाद उठा कि दाह-संस्कार से पहले तूफान और बारिश के कारण शव-यात्री एवं परिजन शव छोड़कर छांह में चले गये थे। बाद में वे लौटे, तो शव गायब था। संन्यासी ने स्वयं को वही 'गायब शव' बताया, जिसे नागा साधु उठा ले गये थे और उसे जीवित कर लिया था। रियासत और राजपरिवार के एक पक्ष ने इसे सत्य माना, तो दूसरे पक्ष ने सशक्त विरोध किया। बस यहीं से शुरू हुई, अंग्रेजी जमाने के सबसे अधिक दिलचस्प मुकदमे की आश्चर्यजनक कहानी। प्रस्तुत है पहली किस्त...

शव क्या जीवित हो सकता है?

भवाल संन्यासी का हैरतअंगेज मुकदमा

—महेन्द्र सरल

बड़ी गंगा पर बने वाकलैण्ड बांध के पास वृक्ष की छाया में एक संन्यासी ने अपनी धूनी जगायी। संन्यासियों का वहां आना कोई नई बात नहीं थी। अक्सर आते रहते थे। जनता में इनके प्रति श्रद्धा होती थी। इस संन्यासी ने कोई डेरा नहीं डाला था। डेरा उसके पास था भी नहीं। उसके पास एक कमण्डल और लंबे चिमटे के अतिरिक्त कोई आडम्बर नहीं था। सीधा-सादा वह व्यक्ति लंबी दाढ़ी और लंबी जटाओं में ढका हुआ-सा था।

लोग यूं ही उस तरफ आते-जाते उसे देखते। कोई सिर्फ नमस्ते करके चला जाता, कोई चरणस्पर्श करने के लिए पास भी आ बैठता और साधु बाबा बिलकुल साधारण तौर-तरीकों से बातें करता। अगर कोई व्यक्ति उसके सामने अपनी कोई समस्या रखता, तो उसके लिए भगवान से प्रार्थना करके चुटकी भर भस्म दे देता। कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति आता, तो भस्म के बजाय इलायची दे देता। सर्दी, गर्मी और वर्षा संन्यासी को परेशान नहीं कर पाती थीं।

बगैर किसी कारण के ही थोड़े दिनों में उस संन्यासी के पास आने-जानेवालों की संख्या बढ़ गयी। कुछ तो आपस में बातें करने लगे थे, "साधु बाबा की आंखें देखीं? ऐसी नीली आंखें तो दूसरे नंबर के राजकुमार रमेन्द्र नारायण राय की थीं। इनको देखते हैं, तो बारह बरस पहले परलोक सिधारे राजकुमार रमेन्द्र की याद आ जाती है। संन्यासी का रंग भी उनके जैसा ही गेहुंआ है।"

सुननेवाला व्यक्ति सहमति में सिर हिलाता हुआ बोला, "अब तुमने कहा तो मुझे भी इनकी शक्ल राजकुमार रमेन्द्र से मिलती सी दिखायी पड़ने लगी। कहीं वे ही तो नहीं हैं ये बाबा...?"

और बातों बातों में पैदा हुई यह शंका आम लोगों में कानाफूसी का रूप ले बैठी। अफवाह राजपरिवार के सदस्यों तक भी पहुंची और एक दिन राजकुमार रमेन्द्र नारायण की मझली बहन राजकुमारी ज्योतिर्मयी अपने बेटे बुद्धू बाबू के साथ संन्यासी बाबा को देखने आयीं। साथ में कासिमपुर के जमींदार अतुल राय चौधरी और रमेश चौधरी भी थे। ज्योतिर्मयी ने उन्हें देखते ही एकदम स्वीकार कर लिया कि हो न हो, यही उनका छोटा भाई रमेन्द्र है। कुछ स्त्री-पुरुष उन्हें घेरे हुए थे। ज्योतिर्मयी ने पूछा, "स्वामीजी, आप कहां से आये हैं, कहां के रहनेवाले हैं?"

"यह कैसा प्रश्न करती हो देवी, रमते जोगी कहां से आते हैं, कहां रहते हैं?" संन्यासी ने साधारण जवाब दिया।

"मैंने इसलिए पूछा कि शायद कहीं पहले भी आपके दर्शन किये हैं, ऐसा लगता है।"

"बिलकुल स्वाभाविक सी बात है। इस विशाल भारत भूमि के जोगियों से जाने कहां-कहां मुलाकातें हो जाती हैं।"

"बातों से लगता है, आप साफ हिन्दी बोलते आये हैं।"

"यही तो तपस्वियों की भाषा है।"

"फिर भी संन्यास लेने से पहले आप कहीं तो रहे होंगे। मूल भाषा क्या थी?"

"पंजाबी, औजला गांव में बचपन बीता था। मगर अब तो वहां कुछ भी बचा नहीं होगा।" यह सुनकर ज्योतिर्मयी की आशा को धक्का लगा। निराश होकर उठीं और चलने लगीं। फिर रुकीं और पूछा, "अच्छा, आप कभी दार्जिलिंग गये हैं?"

"रमते जोगी कहां-कहां चले जाते हैं, सब जगहों के नाम भी याद नहीं रहते। मगर क्या बात है, आपने खास दार्जिलिंग के बारे में ही क्यों पूछा?"

"हमारे परिवार का सर्वनाश वहीं हुआ। हमारा मझला भाई रमेन्द्र स्वास्थ्य लाभ के लिए वहां गया था। स्वस्थ हो भी गया था। शिकार खेलने लगा था। एक शेर मारा था। मगर बीमारी फिर से पलट गयी। मरणासन्न हो गये। एक अशुभ पक्षी कार्निस पर बैठकर हूकने लगा। सब घबरा गये। अंगरक्षक हरिसिंह ने उसे गोली मार दी। पक्षी तो मर गया, मगर उससे होनी तो नहीं टली। भाई ने वहीं दम तोड़ दिया।"

बाबा ने दुखी होकर आखें बंद कर लीं और परलोकवासी की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की। ज्योतिर्मयी अपने साथियों के साथ वहां से उठ आयीं।

यह वाकलैण्ड बांध संयुक्त बंगाल के भवाल परगने में था। ब्रिटिश शासन के दौरान इस परगने के ख्यातिनाम जमींदार राजेन्द्र नारायण राय राजा साहब कहलाते थे। राजा का उन्हें खिताब मिला हुआ था। जिसकी सन् १९०९ में दार्जिलिंग में मृत्यु हो गयी थी। उसी की छवि को लोगों ने इस संन्यासी में देखना शुरू कर दिया था। उनका दूसरा पुत्र था राजकुमार रमेन्द्र नारायण राय।

रमेन्द्र के दो भाई और थे—बड़े राजकुमार रणेन्द्र नारायण राय तथा छोटे राजकुमार रवीन्द्र नारायण

राय। इन तीन भाइयों की तीन बहनें भी थीं। सबसे बड़ी राजकुमारी इंदुमयी, दूसरी ज्योतिर्मयी। इन दो बहनों के बाद तीनों भाइयों का जन्म हुआ था और सबके बाद हुई थीं छोटी बहन तारिणी देवी।

इस राजपरिवार की कहानी त्रासदियों से भरी हुई थी। जिन दिनों यह संन्यासी उस राज्य सीमा में आया, उस समय राजपरिवार विधवा आश्रम जैसा बन गया था। दुर्दैव से तब वहां विधवाएं ही बची रह गयी थीं। रानी विलासमणि का बेटों पर कोई अंकुश नहीं रह गया था। राजा राजेन्द्र नारायण राय सन् १९०१ में ही परलोक सिधार गये थे और सन् १९०७ में रानी की भी मृत्यु हो गयी। बेटों में सबसे बड़े रणेन्द्र नारायण राय का विवाह वे अपनी जीवन-काल में ही कर गये थे। रणेन्द्र तब मात्र १९ वर्ष के थे। मझले बेटे रमेन्द्र नारायण राय तब १७ वर्ष के और कनिष्ठ पुत्र रवीन्द्र चौदह वर्ष के ही थे।

राजा साहब ने अपनी रियासत में उत्तम अस्पताल और धर्मशालाएं बनवायीं। शिक्षा के लिए अच्छे स्कूल खुलवाये। मेधावी छात्रों को अनुदान देकर भरपूर प्रोत्साहन देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मगर देखिए त्रासदी कि उनके अपने ही पुत्रों में किसी ने भी शिक्षा को रत्ती भर महत्व नहीं दिया। पिता की छाया सिर से हट चुकी थी। चापलूसों की खूब बन आयी थी। उन्होंने अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए राजकुमारों में अय्याशी की ऐसी बीमारी का समावेश करा दिया कि वे हमेशा बाजारू औरतों और दलालों द्वारा लायी लड़कियों में ही रमे रहने लगे। उन्हें भयंकर यौन रोगों में गलना-सड़ना पड़ा।

भवाल परगने के ६०० वर्ग मील के क्षेत्र में घने जंगल थे। बाघ, सूअर, हिरन और हाथियों की भी कमी नहीं थी। राजकुमारों को शिकार खेलने का शौक भी था। जब वे शिकार पर जाते, तो उनके जी-हुजूर उनकी सेवा में नर्तकियों और गायिकाओं को भी बटोर कर ले जाना नहीं भूलते थे।

रानी विलासमणि की मृत्यु के बाद कोई जिम्मेदार प्रबंधकर्ता न होने के कारण प्रबंध का काम कोर्ट आफ वार्ड्स को सौंप दिया गया था। वार्ड्स के सरकारी अधिकारी भी नहीं चाहते थे कि राजकुमारों में से कोई उनके काम में दखल दे या कुछ स्पष्टीकरण मांगे। अप्रत्यक्ष रूप से वे अधिकारी भी यही चाहते थे कि राजकुमारों को और ही कहीं मस्त-व्यस्त रखा जाये।

(शेष पृष्ठ २३ पर)



गौरवमयी हिमालय की गोद में सुरम्य और अत्यंत मनोहारी उपत्यका का नाम है—बद्रिकाश्रम। उस पार श्वेत हिममंडित उत्तुंग चोटियां तथा चहुं ओर फैली मनभावन हरियाली। दैविक औषधीय गुणों से परिपूर्ण घास-पात, फूल, झाड़ियां, बेलें, लतरें और चोटियों से होड़ लगाये खड़े चीड़,



कृष्ण-प्रेम में जीवन बदला रोजालिया का

—पुष्कर पुष्प

कृष्ण-दीवानी रोजालिया राधिकाप्रिया और (ऊपर) उनका बनाया हुआ एक चित्र

देवदार, बांस और फर के वृक्ष। शांत सौम्य वातावरण। जन-कलरव से दूर, सांसारिक चिंताओं की पहुंच से बाहर। ईश्वरीय अनुभूति से निकटतम का सम्बन्ध स्थापित करती यह घाटी युगों-युगों से संतों, मनीषियों और तपस्वियों की तपोभूमि रही है। कालखंड की समय सीमा में झांकें, तो वह उत्तर कांड का पूर्वार्द्ध था। इसी मनोरम वादी में साध्वियों का भी एक आश्रम था। आश्रम की प्रमुख साध्वी का नाम था—शैव्या।

साध्वी शैव्या जितनी विद्वान और मनीषी थीं, उससे कहीं अधिक सुंदर थीं। उनके संरक्षण में वर्जनों साध्वियां रहती थीं। शैव्या साध्वी क्यों बनी, यह तो कोई नहीं जानता, लेकिन उनके मधुर व्यवहार और विद्वता के कारण समकालीन ऋषि-मुनियों में उनका बड़ा सम्मान था।

वह वसन्त ऋतु की एक सुहानी सुबह थी। सद्य:स्नाता साध्वी शैव्या, अपनी कुटिया से बाहर निकलीं तो सौंदर्य की साक्षात प्रतिमा लग रही

रोजालिया को दुख है कि भारत के लोग धर्म से दूर जा रहे हैं, जबकि विदेशी लोग हिन्दू धर्म अपना रहे हैं

थीं। उन्हें कुटिया से बाहर निकलते देख आश्रम के एक कोने में बंधी गायें रंभाने लगीं। गायों की व्याकुलता देख साध्वी शैव्या के चेहरे पर मृदु मुस्कान फैल गयी। वे आगे बढ़ आयीं। किसी गाय का सिर सहलाया, किसी के पुट्ठे पर हाथ फेरा, और किसी को अपने हाथ से दो-चार मुट्ठे घास खिलाई।

साध्वी शैव्या गायों को घास खिलाने में इतनी मग्न थीं कि उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि घास के मुट्ठे में छिपा बैठा एक बिच्छू नंदिनी गाय के मुंह तक पहुंच गया। प्राणों पर संकट आया देख बिच्छू ने नंदिनी को डंक मार दिया। डंक के साथ बदन में जहर पहुंचा तो नंदिनी बुरी तरह तड़प उठी। साध्वी शैव्या की समझ में कुछ नहीं आया कि भली-चंगी गाय को अचानक क्या हो गया। जब तक

(शेष पृष्ठ ९५ पर)


"रेज़र को तो मैं कभी हाथ तक नहीं लगाऊंगी"
दीप्ति की ख़ूबसूरती के राज़ का पर्दाफ़ाश.
मैं तो इस्तेमाल करती हूँ सिर्फ़ ऐन् फ्रेंच. ख़ूबसूरती से काम करे. अपने बेबी ऑइल से मेरी त्वचा को पोषण दे. और मेरे अंग-अंग में कोमलता जगाये.
निर्मल, कोमल, सुरक्षित एहसास.
SATIN ROSE
Anne French
LOTION HAIR REMOVER WITH BABY OIL
CREME HAIR REMOVER WITH BABY OIL

जिन दिनों मैं पांचवीं कक्षा में पढ़ता था, मेरे अब्बू कैंसर का शिकार होकर चल बसे थे। अब्बू का देहांत होते ही हम पर मुसीबतें टूट पड़ीं। घर की सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी।

अब्बू का छोड़ा हुआ जो थोड़ा-बहुत पैसा था, उससे हम गुजारा करने लगे। अब्बू के दोस्त और रिश्तेदार धीरे-धीरे हमसे मुंह मोड़ गये। फिर जैसे ही अब्बू के छोड़े हुए पैसे खत्म हुए, मुसीबतों के दिन शुरू हो गये। वालिदा साहिबा कपड़ों की सिलाई वगैरह करके कुछ पैसे कमा लेती थीं, जिनसे मुश्किल से घर का गुजारा होता था। जब मैंने मां की परेशानी देखी, तो कुर्सियां बुनना सीख लिया। उन दिनों एक कुर्सी की बुनाई डेढ़ रुपये मिलती थी। उन्हीं पैसों से मैं अपनी और छोटी बहन की पढ़ाई का खर्च पूरा करने की कोशिश करता था। हम दोनों बहन-भाई सुबह स्कूल जाते थे, वापसी पर पहले स्कूल का काम करते थे, फिर शाम को कुर्सी बुनने के लिए ले आता था और रात गये तक बुनता रहता था। इसी तरह हमारे दिन-रात बीत रहे थे।

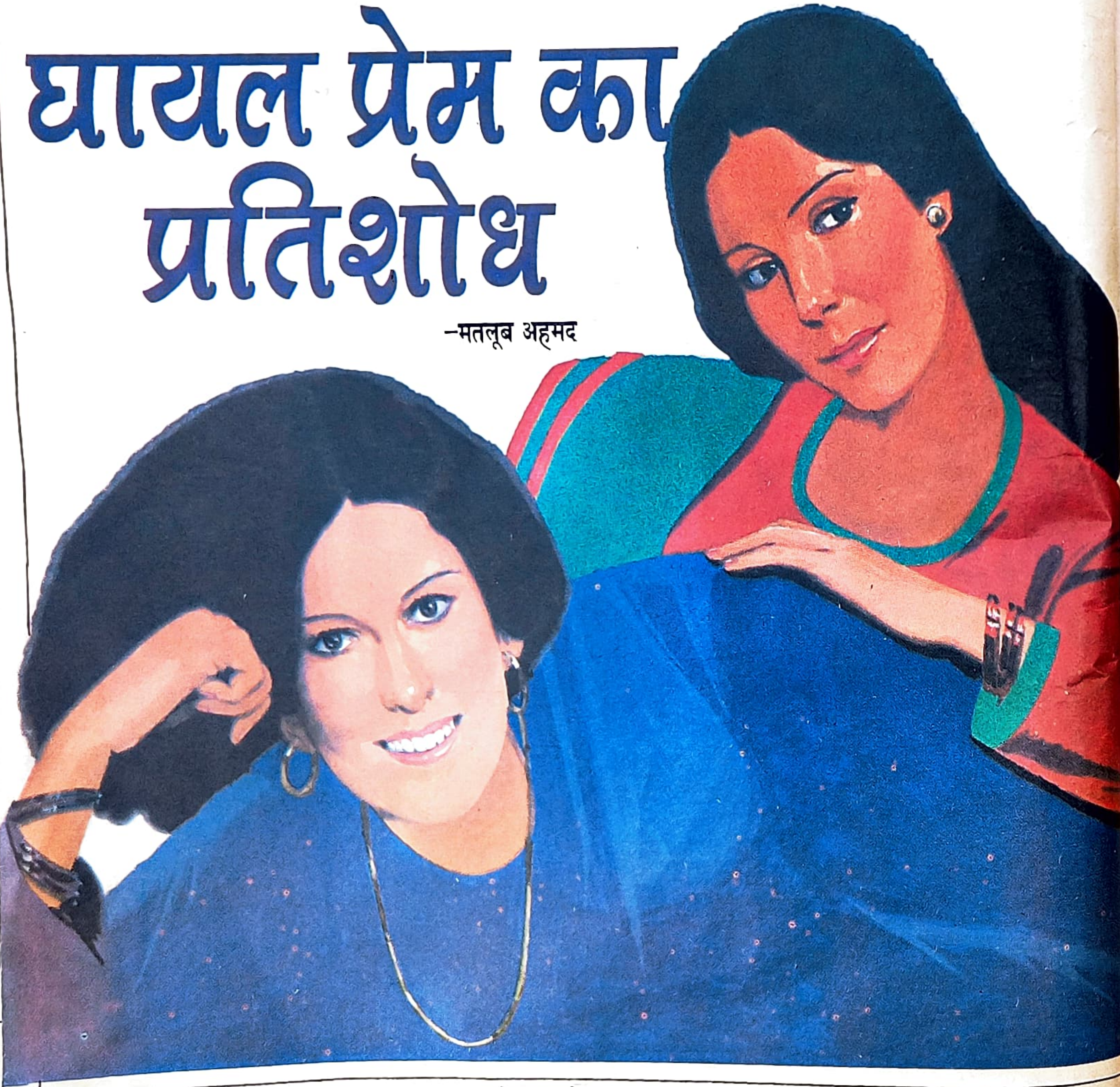
ईद पर हम दूसरे बच्चों को नये-नये कपड़े पहने हुए जरूर देखते थे, लेकिन कभी अम्मी से नये कपड़ों की जिद नहीं करते थे। सच तो यह है कि हमें पूरे साल में केवल बकरीद पर गोश्त नसीब होता था, जो कुछ मुहल्लेवाले हमारे घर भेज देते थे। अम्मी अक्सर हमारे उदास चेहरे देखकर रोती रहती थीं, मगर वक्त जैसे-तैसे बीतता रहा और मैं दसवीं कक्षा में पहुंच गया।

इतवार का दिन था। मैं छत पर बैठा पढ़ाई में मग्न था, कि अचानक एक सुरीली आवाज ने मुझे चौंका दिया। हमारे साथवाले मकान की छत पर एक निहायत ही खूबसूरत लड़की खड़ी थी। खुले बालों के बीच उसका चेहरा ऐसा लग रहा था, जैसे स्याह बादलों में चांद चमक रहा हो। मैंने दूसरे ही लम्हे अपनी आंखें झुका लीं और पढ़ाई में मग्न हो गया। मुझे बाद में मालूम हुआ कि साथवाला मकान एक पैसेवाले ने खरीद लिया था। वह लड़की उसकी छोटी बेटी आसिमा थी, जो हाई स्कूल में पढ़ती थी। आसिमा की एक बड़ी बहन जरमीना भी थी, जो स्थानीय स्कूल में शौकिया पढ़ाती थी। आसिमा से छोटा एक भाई भी था।

आसिमा आम तौर पर ऐन उस

घायल प्रेम का प्रतिशोध

—मतलूब अहमद



समय अपनी छत पर आ खड़ी होती थी, जब मैं पढ़ाई में मग्न होता था। वह मेरी तरफ देखती रहती थी। उसके मदहोश कर देनेवाले हुस्न ने मुझे कई बार प्रभावित किया, लेकिन मैंने हर बार अपनी अम्मी और छोटी बहन की जिम्मेदारी को ध्यान में रखते हुए आसिमा के खयाल को दिल में जगह न दी। वह कभी किताब, कभी कापी, गर्ज यह कि किसी-न-किसी बहाने से मुझे बुलाती रहती थी। आसिमा कई बार मुझे दबे शब्दों में अपनी मुहब्बत प्रकट भी कर चुकी थी।

एक दिन मैंने उसको समझाया कि आसिमा, मैं आपकी मुहब्बत की कद्र करता हूं, लेकिन हकीकत को झुठलाया नहीं जा सकता। हम गरीब लोग हैं, और न जाने किस तरह अपनी जिंदगी गुजार रहे हैं। मैं अपनी अम्मी और मासूम बहन के चेहरे पर खुशियां देखना चाहता हूं। हमारे दिलों में लाख मुहब्बत हो, लेकिन हम किसी सूरत में एक नहीं हो सकते। यही दुनिया का दस्तूर है।

आसिमा जितनी खूबसूरत थी, अल्लाह ने उसको उतनी ही समझदारी भी प्रदान की थी। यही वजह थी कि मेरी बात उसकी समझ में आ गयी और फिर कभी उसने प्रेम प्रकट नहीं किया। जब भी कोई बात करती, पढ़ाई के बारे में ही करती थी।

जरमीना भी मुझमें दिलचस्पी लेती थी, लेकिन उसकी मुहब्बत जज्बाती थी। वह अक्सर मेरे साथ छेड़छाड़ में ऐसी हरकतें कर जाती थी, कि मैं शर्म से सिर झुका लेता था। वह अपने हसीन और जज्बात भड़का देनेवाले शारीरिक कोणों से मुझ पर प्रभाव डालना चाहती थी, लेकिन मैंने कभी भी उसकी हरकतों को कोई अहमियत नहीं दी थी।

एक दिन दोपहर के समय मैं अपने मकान के ऊपरी कमरे में बैठा पढ़ाई में मग्न था कि सहसा जरमीना अंदर आयी और आते ही दरवाजा बंद करके मुझसे लिपट गयी। उसकी हरकतें हद से बढ़ीं, तो मैंने जरमीना को उसकी हैसियत और मुकाम का एहसास दिलाया, जिस पर वह आगबबूला हो गयी। जरमीना मुझ पर झपटी, तो मैंने अपने बचाव के लिए उसे धक्का मार दिया। जरमीना औंधे मुंह फर्श पर गिर पड़ी। मैं पलंग पर बैठा हुआ उसे खाली-खाली नजरों से देखता रहा।



जहां आसिमा की चाहत सच्ची थी, वहीं ज़रमीना की नीयत में खोट था। उसकी आपत्तिजनक हरकतों को जब मतलूब ने बरदाश्त नहीं किया, तब वह प्रतिशोध पर आमादा हो गयी

फिर वह घायल शेरनी की तरह उठी। मेरे गाल पर दो-तीन थप्पड़ मारे और गुर्राकर बोली, "मैं तुम्हें इज्जत का वह मुकाम देना चाहती थी, जिसे हासिल करने के लिए लोग मेरे पीछे मारे-मारे फिरते हैं। तुमने मेरी तौहीन की है। अब तुम मेरे इंतकाम से नहीं बच सकोगे। मेरे सामने तुम्हारी हैसियत क्या है। तुमको मैं इज्जत देना चाहती थी, लेकिन तुम्हें इज्जत रास नहीं आयी।"

मैंने बड़ी याचना से कहा, "जरमीना, मैं मानता हूं कि आपके सामने मेरी कोई हैसियत नहीं है, लेकिन जो कुछ आप चाहती हैं, वह मुझसे नहीं हो सकता।"

मेरे जवाब पर जरमीना पांव पटकती हुई वहां से चल दी, और उस दिन से मेरी जानी दुश्मन गयी। मैंने आसिमा को पूरी बात बता दी, कि जरमीना ने मेरे साथ यह हरकत की है।

दसवीं की बोर्ड फीस जमा करने की आखिरी तारीख सिर पर थी और मेरे पास पैसे नहीं थे। मैं बहुत परेशान था। हमारे पड़ोस में एक हेडक्लर्क रहते थे। मैंने उनके लड़के अफजल से फीस की बात की, तो वह कहने लगा, "मैं तुम्हारी फीस के पैसे दे दूंगा, लेकिन तुम्हें भी मेरा एक काम करना होगा।"

मैंने पूछा, "क्या काम करना होगा?"

अफजल ने कहा, "तुम मेरे अब्बू के सामने सिर्फ यह कह देना कि खत मैंने लिखा था, बाकी बात मैं संभाल लूंगा।"

मैंने बेबसी से कहा, "आप मुझसे कैसे लेटर का इकरार करा रहे हैं?"

अफजल ने कहा, "मामूली-सी बात है, बाद में मैं तुम्हें सब कुछ बतला दूंगा।"

मैं दुविधा में ग्रस्त हो गया, तो वह कहने लगा, "सोच लो, तुम्हारा साल बरबाद हो जायेगा, और फिर तुम्हारी अम्मी को भी बहुत सदमा होगा।"

मेरा दिल तो नहीं मानता था, लेकिन फीस की वजह से मैंने हामी भर ली। शाम को वह मुझे अपने अब्बू के दफ्तर में ले गया, जो उनके मकान के नीचे ही था। वहां आसिमा और जरमीना का बाप मलूका खान भी बैठा था। अफजल के पिता ने मेरी तरफ देखते हुए पूछा, "यह परचा तुमने लिखा था?"

मैंने स्वीकृति में सिर हिलाते हुए जवाब दिया, "जी हां।"

बस फिर क्या था। मलूका खान उठा और बेदरेग मुझे मारना शुरू कर दिया। मैं नीचे गिर पड़ा, तो उन्होंने

(शेष पृष्ठ २१ पर)

इंसानी गुर्दे के व्यापार में डाक्टर और पुलिसकर्मी भी शामिल

–शैल माथुर

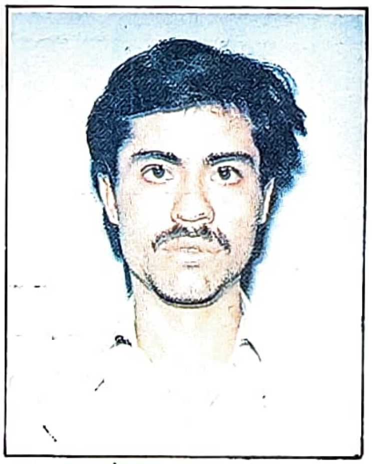
कुलदीप की उम्र पच्चीस-छब्बीस साल होगी। बड़े बाप का बेटा कुलदीप मां-बाप के तलाक की त्रासदी का शिकार हुआ था। बाप ने दूसरी शादी कर ली थी। मां ने भी किसी और मर्द के साथ घर बसा लिया था। जवान लड़के से रिश्ता रखने को दोनों में से कोई राजी नहीं था। अतः कुलदीप शहर छोड़कर दिल्ली आ गया। कई दिन तक वह काम की तलाश में भटकता रहा। यूं ही बेकार भटकते हुए उसे एक दिन कनॉट प्लेस के पास एक आदमी मिला। बातचीत हुई तो उसने बताया कि वह चाहे तो खून बेचकर हाल-फिलहाल अपनी समस्या का समाधान कर सकता है, दर्जनों लोग यह काम करते हैं। कुलदीप जिंदगी की कड़वी सच्चाइयों से नावाकिफ था। उसे खून बेचकर पेट भरने की बात हजम नहीं हुई। उसे खून बेचने की राय देने वाले उस आदमी पर खासा गुस्सा भी आया। दरअसल वह व्यक्ति प्राइवेट ब्लड बैंकों के लिए दलाली करता था। लड़के को अपनी बातों में न फंसता देख दलाल ने उससे यह कहकर किनारा कर लिया कि बेटा अभी तो शहर में नये हो और जेब में रोटी के पैसे हैं। कल जब तुम्हें इस शहर की सच्चाई पता चलेगी तो खुद ही मुझे ढूंढ़ोगे।

सचमुच, हुआ भी ऐसा ही। जाड़े का मौसम था। पहली ही रात कुलदीप का सामना भूख और हाड़ कंपा देनेवाली ठंड से हुआ। कुलदीप ने कुछ देर तो आसपास का कूड़ा-कचरा जलाकर शरीर गर्म कर लिया, लेकिन लम्बी सुरंग-सी अंधेरी रात का शेष एक-एक पल उसने मरते-जीते गुजारा। ठंड से ठिठुरते उन पलों में उसे कई बार उस दलाल की याद आयी।

अगली सुबह कुलदीप सचमुच उस दलाल को ढूंढ़ने लगा। वह दलाल तो उसे नहीं मिला, लेकिन कनॉट प्लेस के सेंट्रल पार्क में ऐसे कुछ युवक मिल गये, जो शहर के अस्पतालों और प्राइवेट ब्लड बैंकों में थोड़े-थोड़े दिन बाद अपना खून बेचा करते थे। कुलदीप ने उन्हीं युवकों से बात की। दिल्ली शहर में आकर भटके पंजाब के उस युवक ने पहली बार उन युवकों के साथ जाकर एक ब्लड बैंक में अपने खून की एक बोतल का सौदा किया। एक यूनिट खून के दो सौ रुपये उसे बुरे नहीं लगे। खून देने के बाद भी वह यह जानकर खुश था उसे किसी तरह की कोई कमजोरी महसूस नहीं हो रही थी।



शौकत अली : यहां से गुर्दा निकाला गया था



ब्रजेश कुमार

अपने खून का यह सौदा उसे इसलिए और भी उचित लगने लगा, क्योंकि पैसा मिलने से उसके बहुत सारे कष्ट दूर हो गये थे। उस शाम

उसने ठीक से खाना खाया और एक हल्की-सी रजाई भी खरीद ली। उस रात भी वह पिछली रात की तरह सोया तो फुटपाथ पर ही, लेकिन रजाई की गर्माहट में उसे मीठी नींद आयी। धीरे-धीरे फुटपाथ पर जीवन बितानेवाले लोगों से कुलदीप की जान-पहचान बढ़ने लगी। वह जल्दी ही समझ गया कि देश के अलग-अलग इलाके से नयी जिंदगी की शुरुआत करने की उम्मीद लेकर दिल्ली आये उसके फुटपाथी साथियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि भले ही कुछ भी रही हो, लेकिन उनकी जिंदगी घूम-फिरकर एक ही रास्ते पर चलती है। कुलदीप के साथ फुटपाथ पर सोनेवाले उसके कुछ साथी कैटरिंग के ठेकेदारों के लिए दिहाड़ी पर विवाह-पार्टियों में वेटर का काम करते थे। वह भी उनके साथ इसी काम में लग गया। शाम से देर रात के उस काम से उसे सत्तर-अस्सी रुपये मिल जाते थे। इस धंधे में न तो रोज काम मिलने की गारंटी थी, न इस कमाई से खाली दिनों के लिए कोई बचत ही हो पाती थी। परन्तु, शादी और पार्टियों के बाद का बचा खाना उसकी जुबान का जायका बन गया और अपेक्षाकृत कम मेहनतवाला यह काम उसके साथियों की तरह उसे भी मेहनत-मजदूरी के दूसरे कामों के मुकाबले ठीक-ठाक लगने लगा।

कुछ दिन में कुलदीप भी उन युवकों में शामिल हो गया, जो जंतर-मंतर, दिल्ली गेट, अजमेरी गेट, तुर्कमान गेट और कनॉट प्लेस के इलाकों में कैटरिंग के ठेकेदारों का इंतजार करते थे। पार्टियां खत्म होने के बाद इन्हीं इलाकों में फुटपाथ पर रात बिताकर ऐसे युवक दूसरा दिन गुजारने की उम्मीद लिये उठते थे। काम न मिलने पर ये लोग गुरुद्वारों में लंगर खाकर काम चला लेते थे।

ऐसे युवकों के साथ रहने के बाद कुलदीप ने जाना कि उनमें से ज्यादातर लोग ऐसे हैं, जो नियमित रूप से अपना खून बेचते हैं। खून बेचकर जो पैसा मिलता, उसे वे शराब और स्मैक के नशे में उड़ा देते थे। सड़क की जिंदगी जीनेवालों के बीच रहकर कुलदीप को जीवन की ऐसी ही और भी तमाम सच्चाइयों का पता चला।

उसे पता चला कि उसका एक साथी कई साल पहले अपना एक गुर्दा बेच चुका है। पहले तो गुर्दा बेचने की बात उसके गले नहीं उतरी। लेकिन जब उसे बताया गया कि उसके फुटपाथ के साथियों में से कई मोटी रकम लेकर ऐसा कर चुके हैं, जो उसने सोचा कि अगर एक गुर्दा बेच देने से एकमुश्त इतना पैसा मिल जाये कि नये सिरे से जिंदगी शुरू की जा सके तो कोई बुराई नहीं है। जिंदगी तो एक गुर्दे से भी चल सकती है।

एक दिन कुलदीप के एक साथी ने जंतर-मंतर के पास उसकी मुलाकात बबलू और अखिलेश नाम के दो युवकों से करायी। कुलदीप गुर्दा बेचना चाहता है, यह जानकर बबलू और अखिलेश ने उसे नोएडा ले जाकर संजय नाम के एक सिपाही से मिलवाया। अखिलेश उसी दिन से कुलदीप को रोज सौ रुपये देने लगा। अखिलेश, संजय और बबलू के मिलने का अड्डा था नोएडा के एक निजी अस्पताल 'नोएडा मेडिकेयर सेंटर' के करीब स्थित एक पी॰सी॰ओ॰ बूथ। अखिलेश, बबलू और संजय ने कुलदीप को बताया कि गुर्दे के बदले में उसे सत्तर हजार रुपये और एक बड़ी कंपनी में पक्की नौकरी मिलेगी। कुलदीप ने सोचा कि एकमुश्त पैसा और नौकरी मिल जाने के बाद जिंदगी आराम से गुजरेगी।

वह दिन भी जल्दी ही आ गया जब कुलदीप के गुर्दे के लिए ग्राहक मिल गया। उस अमीर आदमी का गुर्दा खराब हो गया था। उसकी जिंदगी तभी बच सकती थी, जब उसके खराब गुर्दे की जगह किसी स्वस्थ व्यक्ति का गुर्दा प्रत्यारोपित कर दिया जाता। कुलदीप की बात उस मरीज के परिवारवालों से करायी गयी। सौदा पट गया। दोनों के अनेक टेस्ट हुए। ये टेस्ट कई दिनों तक चले। टेस्ट से पता चला कि दोनों के खून और गुर्दे एक-दूसरे से मेल नहीं खाते। इस पर अखिलेश और बबलू, कुलदीप की जगह एक अन्य युवक को तैयार करके



नोएडा मेडिकेयर सेंटर : अस्पताल या मानव-गुर्दा बिक्री केन्द्र

लाये। वह भी उसी का साथी था। कुलदीप काम का आदमी साबित नहीं हुआ था। अतः उसे दो-चार सौ रुपये देकर विदा कर दिया गया।

पंद्रह दिन बाद जब कुलदीप का वह साथी उसे मिला, तो उसका हुलिया बदला हुआ था। वह अच्छे-कपड़े पहने था और कई लड़के उसके साथ थे। उसने कुलदीप को भी दावत दी। दूसरे साथियों के साथ उसे भी बढ़िया खाना खाने और एक शाम को शराब में डुबोने का मौका मिला।

अंततः कुलदीप की भी गुर्दा देकर नोट गिनने की बारी आयी। कुलदीप के फिर कुछ टेस्ट हुए। गुर्दा निकलवाने के बाद वह जिस दिन अस्पताल से छूटा, उसे पैंतालीस हजार रुपये मिले। यह अलग बात है कि उससे बात सत्तर हजार की हुई थी। उसे पूरे पैसे ही नहीं, अच्छी नौकरी की भी उम्मीद थी। जब उसने अखिलेश और बबलू से बाकी पैसों की मांग की, तो उनके साथ नोएडा पुलिस के सिपाही संजय ने उसे फिर कभी नोएडा में दिखायी न देने की धमकी देकर भगा दिया।

संजय और अखिलेश के व्यवहार से कुलदीप को कोफ्त तो हुई, लेकिन जिस रुपये से उसकी जेब गर्म थी, उसने कुलदीप को बात बढ़ाने से रोक लिया। उसने भी अपने उस साथी की तरह अपने साथियों को दावत दी और अच्छे-अच्छे कपड़े खरीदे। लेकिन ऐसा पैसा रुकता कहां है। मौज-मस्ती के कुछ दिनों की जिंदगी के बाद सारे पैसे खत्म हो गये। जब तक शादियों का सीजन रहा, पार्टियों की दिहाड़ी से काम चलता रहा। उसके बाद वह अपने दूसरे साथियों के साथ शीशगंज और बंगला साहिब गुरुद्वारों में लंगर खाकर दिन काटने लगा। आजकल कई दिनों तक उसे दस का नोट भी देखने को नहीं मिलता। उसे इस बात की शिकायत है कि जिस सेठ ने नौकरी देने का वादा करके उसका गुर्दा लिया, वह वादे से मुकर गया। उसने जब अखबार में पढ़ा कि अखिलेश, संजय और गुर्दा-व्यापार में शामिल डाक्टरों और उनके अड्डे (नोएडा मेडिकेयर सेंटर) का भेद खुल गया है, तो उसे अच्छा लगा। उसे इस बात की खुशी है कि पुलिस ने उन लोगों को कानूनी जाल में लपेट लिया है। कुलदीप पूरे विश्वास से कहता है कि इस धंधे का भंडाफोड़ सिर्फ इसलिए हो सका, क्योंकि दलालों ने गुर्दा बेचनेवालों के साथ धोखाधड़ी शुरू करके उनका पैसा हड़पना शुरू कर दिया था, वरना यह धंधा वैसे ही आराम से चलता रहता, जैसे पिछले सात-आठ सालों से चल रहा था।



अदालत के बाहर डा० चौधरी और डा० हर्ष जौहरी

मानव-गुर्दे के धंधे का भंडाफोड़ तब हुआ, जब ७ मई को पटपड़गंज मस्जिद के पास की झुग्गी बस्ती में रहनेवाले तीस वर्षीय शौकत अली ने दिल्ली के कल्याणपुरी थाने जाकर पुलिस को अपना गुर्दा निकाले जाने की जानकारी दी। गुर्दे के बदले में काफी पैसा और नौकरी देने के नाम पर दो बेटों और एक बेटी के पिता शौकत अली को ठगा गया था। हापुड़ के असौड़ा गांव का बाशिंदा शौकत लाखों दूसरे लोगों की तरह बेहतर जिंदगी की तलाश में दिल्ली आ बसा था। ठेके पर धातु की चीजों पर पॉलिश करके वह औसतन ढाई-तीन हजार रुपये माहवार कमा लेता था। कुछ तंगी में ही सही, पर जिंदगी कट रही थी। एक मंगलवार को, अपने साप्ताहिक अवकाश के दिन वह तीन-चार साथियों के साथ छुट्टी का आनंद लेने घर से निकला। शौकत अपने दोस्तों के साथ काफी देर तक लाल किला और जामा मस्जिद में घूमते रहने के बाद सुभाष पार्क में जाकर बैठ गया। जब ये लोग आपस में बातें कर रहे थे, तभी शौकत का ध्यान करीब बैठे चार लोगों की तरफ तब गया, जब उसने उनमें से एक को यह कहते सुना, 'सिंगापुर से आयी एक बड़ी पार्टी के लिए कुछ लोगों की जरूरत है। उसके लिए कुछ लोगों का इंतजाम करना पड़ेगा।'

शौकत से रहा न गया, तो उसने उस व्यक्ति की तरफ मुखातिब होकर पूछा, "भाई, क्या हमारा भी कुछ बंदोबस्त हो सकता है?"

उस व्यक्ति ने शौकत की बात का सकारात्मक जवाब दिया।

बातचीत हुई, तो उस व्यक्ति ने अपना नाम मुकेश बताया। मुकेश ने शौकत से बातें करते हुए कहा कि इसके लिए नोएडा चलना होगा। शौकत फौरन तैयार हो गया। शौकत के दूसरे साथी अपने-अपने घर चले गये और वह खुद मुकेश और उसके साथियों के साथ नोएडा चला गया। नोएडा पहुंचते-पहुंचते शाम हो गयी थी। वहां सेक्टर तीस में स्थित एक एस०टी०डी० बूथ पर जाकर मुकेश ने शौकत को संजय नाम के पुलिस सिपाही से मिलवाया। उसे बताया गया कि संजय के सिंगापुर वाली पार्टी से बहुत अच्छे संबंध है, और उसे कल इसी जगह नौकरी देनेवाली पार्टी से मिलवाया जायेगा। संजय ने जेब से सौ का एक नोट निकालकर शौकत को दिया और उसे अगले दिन उसी जगह आने को कहकर वापस भेज दिया।

अगले दिन जब शौकत सुबह करीब नौ बजे नोएडा मेडिकेयर सेंटर के करीब स्थित उस पी०सी०ओ० बूथ पर पहुंचा, तो संजय के साथ वहां दो व्यक्ति मौजूद थे। वे किसी कंपनी के मालिक जैसे लग रहे थे। उनमें से एक ने शौकत से कहा, संजय ने तुम्हारी सिफारिश की है। तुम अपना काम हुआ समझो। तुम्हें पासपोर्ट बनवाने के लिए फोटो खिंचवाने हैं और तुम्हारी डॉक्टरी जांच होनी है।

डाक्टरी जांच के बहाने वे लोग शौकत को नोएडा मेडिकेयर सेंटर के अंदर डॉ० वधावन के पास ले गये। उन लोगों ने रास्ते में शौकत से कह दिया था कि अगर डाक्टर साहब पूछें तो बता देना कि इनके साथ पिछले आठ-दस साल से काम कर रहा हूं। डॉ० वधावन ने शौकत से कुछ नहीं पूछा। डाक्टर साहब के निर्देश पर शौकत का एक्सरे हुआ। खून की और कुछ दूसरी जांच हुई। फिर उससे कहा गया कि कुछ और जांच होनी हैं, जिसके लिए उसे ग्लूकोज चढ़ाने की जरूरत है।

शौकत का कहना है कि जब उसने

३ - मक्क०

कहा कि वह एकदम ठीक है, तो उसे ग्लूकोज चढ़ाने की क्या जरूरत है, इस पर उन्होंने उसे समझाया कि इससे जांच ठीक हो जाएगी। अन्ततः उनके ज्यादा कहने पर शौकत को मानना पड़ा। उसे स्ट्रेचर पर लेटाकर नोएडा मेडिकेयर सेंटर के कमरा नंबर ३१० में ले जाया गया। जब शौकत को ग्लूकोज चढ़ाया जा रहा था, तो उसे नींद आ गयी।

शौकत को जब होश आया तो उसने संजय और डॉ० वधावन को सामने पाया। जिस बिस्तर पर वह लेटा था, उसके पांयताने दो व्यक्ति बैठे थे। शौकत के पेट में अजीब-सा खिंचाव था और पेट के बाईं तरफ के हिस्से में पट्टियां बंधी थीं। तभी उसका ध्यान अपने बाएं हाथ के अंगूठे पर लगी मोहर लगानेवाली स्याही पर गया। उसकी समझ में न आया कि उसके अंगूठे पर स्याही कैसे लगी और उसे इतनी गहरी नींद क्यों आयी। शौकत ने डॉ० वधावन से कुछ पूछना चाहा, पर कुछ भी बोलने की हिम्मत नहीं हुई।

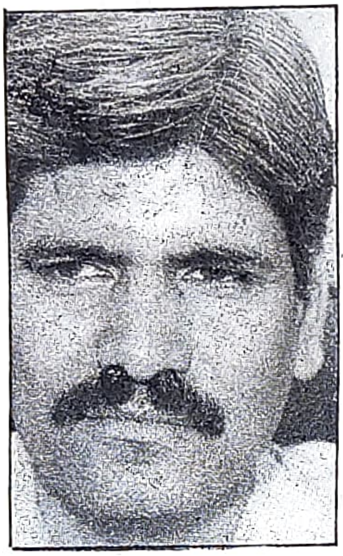
शौकत का कहना है कि मुकेश और उसके साथ एक महिला अस्पताल में हर वक्त उसके साथ रही और उन्होंने ही उसकी देखभाल की। ७ जनवरी '९८ को उसका ऑपरेशन हुआ और पांच दिन बाद उसे छुट्टी दे दी गयी। मुकेश और उसके साथी शौकत को एक कार में बैठाकर नोएडा मोड़ पर स्थित पाण्डवनगर के पेट्रोल पंप तक ले गये। वहां उसके हाथ में संजय ने पांच हजार रुपये रखे और तीन दिन बाद नोएडा मेडिकेयर सेंटर आने को कहा। जब शौकत ने ये जानना चाहा कि ये रुपये किस लिए हैं, तो उन लोगों ने उसे समझाया कि जांच वगैरह के बाद कमजोरी महसूस होती है। पैसे रहेंगे, तो पौष्टिक चीजें खाना और फलों का रस पीना। पैसे खाने-पीने के लिए ही हैं। उन्होंने यह भी कहा कि अभी उसे और रुपये मिलेंगे, जिससे उसके घर का काम चलता रहेगा। बाद में यह पैसा धीरे-धीरे सिंगापुर में मिलनेवाली तनख्वाह से काट लिया जाएगा।

संजय और मुकेश के कहे अनुसार शौकत तीन दिन बाद डॉ० वधावन के पास नोएडा पहुंचा। डॉ० वधावन ने उसकी पट्टियां खोल दीं। तभी उसे पता चला कि उसे उसके वास्तविक नाम से नहीं, बल्कि सुनील के नाम से अस्पताल में भर्ती कराया गया था। शौक़त की पट्टियां तो खुल गयीं। लेकिन न उसे नौकरी मिली, न पैसा।

इसी वर्ष जनवरी की सात तारीख को हुए ऑपरेशन के बाद से शौकत को काफी कमजोरी महसूस होने लगी थी। वह काम पर भी नहीं जा पा रहा था। तभी एक दिन अचानक उसे दस्त आने लगे। दस्त में खून देखकर घबराया शौकत अपनी झुग्गी बस्ती के बंगाली डाक्टर के पास पहुंचा। नोएडा मेडिकेयर सेंटर से शौकत को मिला पर्चा देखकर बंगाली डाक्टर ने उसे बताया कि उसका एक गुर्दा निकाल



हरीशचन्द्र



आर०के० पालीवाल

लिया गया है। उसे इलाज के लिए नोएडा मेडिकेयर सेंटर के डाक्टरों के पास ही जाना पड़ेगा।

डरता-घबराता शौकत संजय से मिलने नोएडा पहुंचा। संजय नहीं मिला तो उसने डा० संजय वधावन को ढूंढ़ा।

शिकायत करने पर डा० वधावन ने शौकत को वहां से चले जाने का निर्देश देकर कहा कि वह संजय या करोलबाग वाली पार्टी से बात करे। उनके पास बिलकुल न आये। डाक्टर की बेरुखी ने शौकत को अंदर तक हिला दिया। उसे लगा कि एक तो उन लोगों ने धोखे से उसका गुर्दा निकाल लिया, ऊपर से ठीक से बात भी नहीं करते। तभी उसने ठान लिया कि डाक्टरों और दलालों के इस गंदे धंधे को वह सबके सामने उजागर करके रहेगा। शौकत सीधे थाना त्रिलोकपुरी पहुंचा और थानाध्यक्ष को अपनी आपबीती सुनाई। उन्हीं के कहने पर वह नोएडा के सेक्टर बीस थाने गया, जहां सब इंस्पेक्टर शैलेंद्र पाल सिंह ने उसकी पूरी कहानी सुनी और उसे थानाध्यक्ष पालीवाल से मिलवाया। पुलिस ने शौकत के बयान के आधार पर नोएडा मेडिकेयर सेण्टर के डाक्टरों व अन्य संबंधित कर्मचारियों के विरुद्ध मुकदमा दर्ज किया।

मुकदमा दर्ज करने के बाद आर०के० पालीवाल ने अपने एक आदमी को सादे कपड़ों में अस्पताल भेजा। उसने अस्पताल में जाकर जब अपने एक रिश्तेदार के लिए गुर्दा दिलाने की मांग की, तो उसे अस्पताल के सामने पी०सी०ओ० बूथ चलाने-वाले सुशीलकुमार झा के पास भेजा गया। सुशील से बात की गयी तो उसने मोबाइल फोन पर सिपाही संजय सिंह से संपर्क कराया। संजय सिंह थाना सेक्टर २० का ही सिपाही था। उसे नोएडा मेडिकेयर सेंटर के मालिकों की कोठी पर तैनात किया गया था।

पुलिस ने संजय सिंह को गिरफ्तार कर लिया। उससे पूछताछ हुई तो एक बहुत बड़े रैकेट का भण्डाफोड़ हुआ। पुलिस ने संजय सिंह की निशादेही पर अस्पताल में छापा मारकर वहां का कम्प्यूटर रूम और रिकार्ड सील कर दिया। साथ ही अस्पताल के मालिक डॉ० नवीन चौधरी, उसकी बहन साधना सूद, डा० संजय वधावन और डा० हर्ष को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके अलावा इस गिरोह में शामिल सुशील कुमार झा, मुकेश कुमार, यशपाल सिंह, सूर्य प्रकाश राय उर्फ बबलू और अशोक शर्मा को भी गिरफ्तार किया गया।

अब जब नोएडा मेडिकेयर सेंटर और वहां के डाक्टरों की कलई खुल गयी है, तो कुलदीप और शौकत अली ही नहीं, बल्कि और भी कई ऐसे लोगों की दास्तान खुलकर सामने आयी हैं, जिनकी जिंदगी दर्जनों अमीरों के लिए दांव पर लगाकर इस मेडिकेयर सेंटर में उनके गुर्दे निकाल लिये गये।

शौकत से ज्यादा अलग नहीं है हरीशचंद्र उर्फ फौजी का गुर्दा निकाले जाने की दास्तान। मात्र कक्षा पांच तक पढ़े पैंतालीस वर्षीय हरीशचंद्र टेरीटोरियल आर्मी में काम कर चुके हैं। नैनीताल जिले के आनंदनगर कस्बे के रहनेवाले इस गरीब किसान के दो बच्चे हैं। एक बारह साल का बेटा अरुण और उससे छोटी एक बेटी अंजू। थोड़ी-सी पुश्तैनी जमीन की उपज पर चलनेवाला हरीशचंद्र का परिवार तंगी के दौर से गुजर रहा था। सर्दी के मौसम में वैसे भी खेती का कोई खास काम नहीं रहता। हरीशचंद्र पिछले वर्ष काम की तलाश में दिल्ली आ गये थे। यहां आकर उन्होंने अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के पिछवाड़े स्थित गौतमनगर की झुग्गियों में रहनेवाले अपने गांव के लोगों के पास रहना शुरू कर दिया।

बात गत वर्ष दिसंबर माह की पहली तारीख की सुबह की है। हरीश कहीं जाने के लिए गौतमनगर की झुग्गियों से निकलकर अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के बस स्टाप पर खड़े थे। उस वक्त नौ-दस बजे के बीच का वक्त था। उन्हें वहां खड़े अभी दस-पंद्रह मिनट ही बीते होंगे कि चौबीस-पच्चीस साल का एक चुस्त-दुरुस्त युवक उनके पास आकर खड़ा हो गया। जब कई बसें निकल गयीं और बस के इंतजार में खड़े लोगों की भीड़ छंट गयी, तो वह युवक हरीशचंद्र के पास आया। वह उनसे

बड़े हमदर्दीभरे स्वर में पूछा, "भाई साहब, आप बड़े परेशान हो रहे हैं। कहां से आये हैं?"

हरीश उसकी हमदर्दीभरी बातों को नजरअंदाज नहीं कर पाये। उन्होंने सच-सच बता दिया कि वह नैनीताल जिले के रहनेवाले हैं और काम की तलाश में दिल्ली आये हैं। उस युवक ने हरीश को अपना नाम बबलू बताया।

बबलू ने हरीश से कहा कि उन्हें अब कोई फिक्र करने की जरूरत नहीं है। उसे एक कंपनी के लिए कुछ ऐसे ही लोगों की तलाश है। हरीश सीधे-सादे व्यक्ति थे। वे बबलू की बातों में आ गये। बबलू हरीशचंद्र को साथ लेकर सीधे नोएडा मेडिकेयर सेंटर के करीब वाले एस०टी०डी० बूथ पर पहुंच गया। इस बूथ पर बबलू ने हरीश का परिचय अखिलेश यादव और संजय सिंह से कराया। बबलू ने उन दोनों को हरीश से मिलवाते वक्त कहा कि यह हरीश हैं और इन्हीं को नौकरी चाहिए। यह सारी बातें बूथ के पीछे बने कमरे में हो रही थीं। इस थोड़ी-सी बातचीत के बाद वे तीनों हरीश को वहीं रुकने के लिए कहकर कमरे से बाहर निकल गये। हरीशचंद्र ने खिड़की के शीशे से देखा कि बाहर संजय, अखिलेश और बबलू कुछ बातचीत कर रहे हैं।

चंद मिनट बात करके संजय और बबलू कहीं चले गये। अखिलेश यादव हरीश के पास अंदर आ गया। कमरे में आकर अखिलेश ने हरीश से कहा कि चलो बाजार चलते हैं। वह अखिलेश के साथ बाहर आकर उसकी कार में बैठ गया। वे दोनों नोएडा के एक बड़े शॉपिंग कॉम्पलेक्स में पहुंचे। हरीश ने देखा, कई दुकानदार अखिलेश को बड़ी इज्जत से नमस्कार कर रहे थे। वे दोनों कॉम्पलेक्स से बाहर आये तो अखिलेश ने उससे पूछा कि क्या वह शराब पीता है। हरीश ने झिझकते हुए कह दिया कि कभी-कभी थोड़ी-बहुत पी लेता है। रास्ते में अखिलेश ने एक अंग्रेजी शराब की दुकान के सामने गाड़ी रोकदी। कार में बैठे-बैठे उसने एक पानवाले को इशारे से पास बुलाया। अखिलेश को देखते ही पानवाला दौड़कर कार के पास आ गया। अपने बटुए में से पांच सौ रुपये का एक नोट निकालकर उसे देते हुए अखिलेश ने कहा, "मेरे ब्रांड की एक बोतल ले आओ।"

जरा सी देर में पानवाला बोतल लेकर आ गया। अखिलेश ने उससे पूछा, "तुम्हारे भी तो कुछ पैसे बकाया है, कितने हैं?"

"सत्ताइस सौ रुपये का बिल है जी।" पानवाले ने झिझकते हुए कहा।

अखिलेश ने यह कहते हुए जेब से तीन हजार रुपये निकालकर उसे दे दिये, कि बाकी आगे के लिए रख लो। आगे बढ़ने के बाद अखिलेश ने कार एक बढ़िया रेस्टोरेंट के सामने रोकी और हरीश से बोला, "चलो, कुछ खा-पी लेते हैं।"

कार से उतरकर वे लोग रेस्टोरेंट के द्वार की ओर बढ़े। जब वे दरवाजे के पास पहुंचे तो एक व्यक्ति रेस्टोरेंट से निकलकर उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़ा। हरीश यह तो नहीं समझ सका कि जो व्यक्ति उन दोनों की अगवानी करने आया है, वह उस रेस्टोरेंट का मालिक है या मैनेजर, लेकिन वह इतना जरूर समझ गया कि वह कोई बड़े ओहदेवाला आदमी था। स्वागत करनेवाला व्यक्ति उन दोनों को मुख्य हाल से अलग एक अन्य कमरे में ले गया। उस वातानुकूलित कमरे में हरीश और अखिलेश बैठे ही थे कि एक वेटर पानी और शीतल पेय वगैरह लेकर आ गया। अखिलेश ने उससे मुर्ग के कुछ व्यंजन और दही लाने को कहा। कुछ देर में दोनों खाने पीने में जुट गये। हरीशचन्द्र ने देखा कि अखिलेश बहुत थोड़ी-थोड़ी शराब पी रहा है, जबकि वह उसे ज्यादा और जल्दी पिलाने की कोशिश कर रहा था। जैसे ही हरीश का गिलास खाली होता, अखिलेश बड़ी तत्परता से उसका गिलास भर देता। खिलाने-पिलाने के बाद अखिलेश हरीश को ऐसी जगह ले गया, जहां एक कमरे में बबलू और कुछ अन्य युवक पहले से मौजूद थे। वे सब शराब के नशे में डूबे थे। अखिलेश ने हरीश की ओर इशारा करते हुए बबलू से कहा कि इन्हें कल सुबह साथ लेकर नौ बजे नोएडा मेडिकेयर सेंटर पहुंच जाना। बबलू को निर्देश देने के बाद अखिलेश वहां से चला गया।

उसी कमरे में रात गुजारने के बाद जब सुबह हरीश और बबलू नोएडा मेडिकेयर सेंटर पहुंचे तो सामने वाले एस०टी०डी० बूथ के मालिक सुशील कुमार झा के साथ अखिलेश और संजय को वहां पहले से मौजूद पाया। वहीं पर सबने ऑमलेट और परांठों का नाश्ता किया। नाश्ता करते वक्त अखिलेश ने बबलू को स्टाम्प पेपर लाने के लिए गाजियाबाद जाने को कहा। उसने बबलू को तीन हजार रुपए भी दिये।

बबलू के चले जाने के बाद अखिलेश ने हरीश से कहा कि नौकरी के लिए तुम्हें अपना नाम बदलना पड़ेगा, क्योंकि नौकरी राणा उपनाम वालों को ही दी जानी है। इसके साथ ही अखिलेश ने सुशील झा से पूछा कि इनके लिए क्या नाम ठीक रहेगा। सुशील कुमार झा ने अखिलेश के कहने पर एक डायरी निकाली और कुछ पन्ने उलट-पलटकर देखने के बाद बताया कि बालम सिंह राणा नाम ठीक रहेगा। इस तरह कागजी कार्रवाई के लिए हरीश बी०एस० राणा हो गये और उनके पिता का नाम चुना गया नरेन्द्र सिंह राणा। केवल इतना ही नहीं, बल्कि उनके पैतृक गांव का नाम भी बदलकर तय कर दिया गया— सुगरखाल, नैनीताल।

ये सब बातें अभी पूरी हुई ही थीं कि एक मारुति कार एस०टी०डी० बूथ के सामने आकर रुकी। उसमें से एक पुरुष और एक महिला उतरे, जो देखने में अच्छे परिवार के लग रहे थे। अखिलेश और संजय ने हरीश को बताया कि वही लोग उसे नौकरी देंगे। उन लोगों में से पुरुष ने हरीशचंद्र को अपना परिचय देते हुए बताया कि उनका नाम एस०एन० श्रीवास्तव है। वे चार्टर्ड एकाउंटेंट हैं और अमेरिका में रहते हैं। साथ वाली महिला को उन्होंने अपनी पत्नी बताया। हरीशचंद्र को यह भी बताया गया कि वसंत कुंज में उनका घर है। श्रीवास्तव दंपति ने हरीशचंद्र से पूछा कि उसे किसी तरह की शारीरिक दर्द की तकलीफ तो नहीं है। हरीश ने बताया कि एक बार बचपन में वह पेड़ से गिर गया था। तभी से रीढ़ की हड्डी में कभी-कभी दर्द उठ जाता है।

हरीशचंद्र की तरफ इशारा करते हुए अखिलेश ने एस०एन० श्रीवास्तव से कहा कि आप इन्हें डा० जौहरी और डॉ० संजय वधावन को क्यों नहीं दिखा देते, वो तो आपके अच्छे दोस्त हैं। इस पर एस०एन० श्रीवास्तव बोले, "चलिए, अभी दिखा देते हैं।"

संजय और अखिलेश के कहने पर हरीशचन्द्र तैयार हो गया।

एस०एन० श्रीवास्तव और उनकी पत्नी हरीशचन्द्र को साथ लेकर नोएडा मेडिकेयर सेंटर में डॉ० संजय वधावन से जाकर मिले। हरीशचन्द्र को बाहर बैठाकर एस०एन० श्रीवास्तव और उनकी पत्नी डॉ० वधावन के कमरे में गये। कुछ देर बाद डॉ० वधावन ने हरीश को भी अंदर बुला लिया। उसे बताया गया कि उसके कुछ टेस्ट होने हैं, जिनके लिए उसे एस०एन० श्रीवास्तव के साथ जाना होगा। हरीश ने कोई आपत्ति नहीं की। वहां से श्रीवास्तव दंपत्ति हरीश को साथ लेकर कनॉट प्लेस के हनुमान मंदिर लेन स्थित लाल एंड लाल पैथॉलाजी लेबोरेटरी पहुंचे। वहां के कर्मचारियों से एस०एन० श्रीवास्तव से अंग्रेजी में बात की। उसके बाद थोड़ा-सी कागजी कार्रवाई करके एक कर्मचारी ने एस०एन० श्रीवास्तव की बांह से थोड़ा-सा खून निकालकर एक शीशी में डाला। इसके बाद उसने तीन छोटी शीशियों में हरीशचंद्र की बांह से खून निकालकर भरा। टेस्ट के लिए दोनों के खून के नमूने लेने के बाद श्रीवास्तव और हरीश के और भी कई टेस्ट हुए। सारे टेस्टों के बाद काउण्टर पर मौजूद लेबोरेटरी के एक आदमी ने श्रीवास्तव से पैसा जमा कराने को कहा। श्रीवास्तव ने पैसे जमा करा दिये। पैसे जमा हो गये तो कर्मचारी ने श्रीवास्तव से अगले दिन आकर रिपोर्ट ले जाने को कहा।

लेबोरेटरी से चलने से पहले एस०एन० श्रीवास्तव ने हरीशचंद्र को सात सौ रुपये दिये। उन्होंने उसे समझाया कि जांच के लिए खून निकालने से कमजोरी आ सकती है, इसलिए इस पैसे से जितना हो सके, अनार का रस पीना। उन्होंने हरीश से अगले दिन नोएडा मेडिकेयर सेंटर आने को कहा। टेस्ट के बाद श्रीवास्तव और उनकी पत्नी अपनी कार में बैठकर चले गये। हरीशचंद्र घूमता-फिरता कनॉट प्लेस की तरफ निकल गया।

पहाड़ में पले-बढ़े हरीशचंद्र को दिल्ली की दिसंबर की ठंड बड़ी ही सुहावनी लग रही थी। मौसम का मजा लेते हुए काफी देर तक यूं ही घूमते रहने के बाद हरीशचंद्र रीगल सिनेमा पर आकर रुका। सिनेमाहॉल के बाहर फुटपाथ से उसने अपने लिए एक कमीज, एक जींस और बनियान खरीदने के बाद फिल्म देखने की सोची।

हरीशचन्द्र हॉल से फिल्म का मैटिनी शो देखकर निकला तो उसका कुछ खाने-पीने का मन हुआ। छुटपुट खाने के बाद चलते-चलते उसे एक शराब की दुकान दिखाई दे गयी। उसने शराब खरीदी और गौतमनगर जाकर वह शाम खूब मजे में गुजारी।

जांच रिपोर्ट आने के बाद हरीशचंद्र को मोटी रकम और नौकरी का लालच देकर गुर्दा देने के लिए तैयार कर लिया गया।

हरीशचंद्र को ४ दिसम्बर '९७ को नोएडा मेडिकेयर सेंटर में भर्ती कराया गया। ६ दिसंबर '९७ को ऑपरेशन करके उसका गुर्दा एस०एन० श्रीवास्तव को प्रत्यारोपित कर दिया गया। बाद में जब १२ दिसंबर को हरीशचंद्र अस्पताल से डिस्चार्ज हुआ तो अखिलेश यादव ने उसे १२ हजार रुपये दिये। फिर उसे एक सप्ताह बाद पट्टी खुलवाने के लिए अस्पताल आने को कहा गया।

एक सप्ताह बाद हरीशचंद्र अस्पताल जाकर पट्टी खुलवायी। अखिलेश वहां मौजूद था। हरीशचंद्र ने पहले से तय ५० हजार रुपये में से बाकी पैसे मांगे तो अखिलेश ने उसे अपनी कार में बैठा लिया। नोएडा की सीमा के बाहर जाकर अखिलेश ने हरीशचंद्र को २००० रुपये दिये और रिवाल्वर दिखाकर धमकाते हुए कहा, "अब कभी नोएडा में दिखायी दिये तो जिंदा नहीं रहोगे।"

डरकर हरीशचंद्र अपने घर नैनीताल चला गया। वहां जाकर उसने अपनी पत्नी आनन्दी को पूरी कहानी सुनायी। बाद में जब यह मामला अखबारों में उछला तो हरीशचंद्र ने नोएडा आकर रिपोर्ट दर्ज करायी।

नोएडा मेडिकेयर सेंटर में धोखाधड़ी से गरीब लोगों के गुर्दे जरूरतमंद अमीर लोगों को प्रत्यारोपित करने का यह काम सालों से चल रहा था। झूठे शपथपत्रों व अन्य फर्जी कागजात के आधार पर गुर्दे खरीदने और बेचने के इस काम में नोएडा मेडिकेयर सेंटर के मालिकों, डाक्टरों व अन्य लोगों सहित दर्जनों कर्मचारी शामिल थे। इन लोगों के गिरोह का सरगना था—नोएडा पुलिस का सिपाही संजय सिंह। मैनपुरी निवासी संजय सिंह की नियुक्ति १९९६ में नोएडा में हुई थी। यहीं पर उसकी मुलाकात अपने पड़ोसी जिले इटावा के रहनेवाले अखिलेश यादव से हुई। अखिलेश यादव टैक्सी चलाता था और गुर्दा खरीद-फरोख्त के धंधे में शामिल था। उसने संजय सिंह को भी अपने गिरोह में शामिल कर लिया। दोनों ने काफी दिन साथ-साथ काम भी किया। एक दिन उनमें लेन-देन पर कुछ झगड़ा हो गया। इस पर संजय सिंह ने अखिलेश का साथ छोड़कर अपना अलग गिरोह खड़ा कर लिया, जो पैसे और नौकरी के लालच में गरीबों को नोएडा मेडिकेयर सेंटर लाने लगा। संजय सिंह का गिरोह गरीबों को धोखाधड़ी से बेशक बेवकूफ बनाता था, पर गुर्दा प्रत्यारोपित करानेवालों से ७५ हजार से एक लाख रुपये तक वसूल करता था। संजय शक्तिशाली बना, तो अखिलेश ने पुनः उसके साथ काम शुरू कर दिया।

पुलिस ने संजय के पास से विजया बैंक, नोएडा की एक पास बुक बरामद की थी। इस पास बुक में २ अगस्त '९७ से २६ मार्च '९८ तक सवा दो लाख रुपये निकाले और जमा किये गये थे। पुलिस के अनुसार, संजय ने इसी पैसे से अपने गांव में एक ट्रैक्टर भी खरीदा था।

शौकत अली, कुलदीप और हरीशचंद्र की तरह ही अम्बाला हरियाणा के एक अविवाहित युवक ब्रजेश कपूर का एक गुर्दा भी नोएडा मेडिकेयर सेंटर में झूठे शपथपत्रों के आधार पर निकालकर अप्रैल '९७ में लुधियाना के एक व्यक्ति को प्रत्यारोपित किया गया था। ब्रजेश कपूर जंतर-मंतर के पास मेहनत-मजदूरी करके अपना पेट पालता था। उसे भी मोटी रकम और विदेश में नौकरी दिलाने के नाम पर गुर्दा देने के लिए फंसाया गया था।

इसी तरह नोएडा मेडिकेयर सेंटर में २० वर्षीय नीरज जैन का गुर्दा शकुंतला गोयल को प्रत्यारोपित किया गया था। नीरज जैन दिल्ली में स्थित 'सुपरसिक्स' नामक रेडीमेड कपड़ों की दुकान पर बारह सौ रुपये महीना की नौकरी करता था। यह दुकान नवल किशोर गोयल की है।

नवलकिशोर गोयल की मां शकुंतला गोयल बीमार थीं। डाक्टरों ने उन्हें गुर्दा प्रत्यारोपित करने की सलाह दी। नवलकिशोर ने अपने नौकर नीरज जैन को सब्जबाग दिखाया कि अगर वह अपना एक गुर्दा दे दे, तो उसे चालीस हजार रुपये नकद और जीवन भर ५००० रुपये महीना दिये जायेंगे। अभावों में पला नीरज लालच में आ गया। उसने हां कर दी तो नवलकिशोर ने डाक्टरों से बात की। डाक्टरों ने यह कहकर उनकी मां को गुर्दा प्रत्यारोपित करने से इंकार कर दिया कि गुर्दा देनेवाला कोई ऐसा रिश्तेदार होना चाहिए, जिससे मरीज का खून का रिश्ता हो। जब नवलकिशोर ने इस बारे में नोएडा मेडिकेयर सेंटर के डाक्टरों से बात की तो बताया जाता है, उन्होंने इस समस्या को चुटकी बजाते हल कर दिया। पुलिस के अनुसार, उन्होंने अपने दलाल के माध्यम से फर्जी शपथपत्र बनवाकर नीरज जैन को मनोज गोयल निवासी डी/२ कृष्णानगर बनवा दिया। उसे शकुंतला देवी का करीबी रिश्तेदार बताकर ६ फरवरी '९७ को एन०एम०सी० (नोएडा मेडिकेयर सेंटर) में उसका आपरेशन किया गया। नीरज जैन को हालांकि चालीस हजार रुपये मिल गये पर एक बीस वर्षीय युवक की जिंदगी तो दांव पर लग ही गयी। नीरज जैन की मां उषा जैन इसे धोखाधड़ी बताती हैं।

गोपाल सिंघल और सुरेंद्र कुमार के गुर्दे भी नोएडा मेडिकेयर सेंटर में इसी तरह फर्जी शपथपत्रों के माध्यम से दूसरे लोगों को प्रत्यारोपित किये गये थे।

गोपाल सिंघल को ६० हजार रुपये नकद और बढ़िया नौकरी का लालच दिया गया था। उसे यह कहकर राठौर नामक व्यक्ति एन०एम०सी० ले गया था कि नौकरी के लिए मेडिकल फिटनेस जरूरी है। उसका मामूली-सा चेकअप किया जायेगा। राठौर ने गोपाल को नोएडा मेडिकेयर सेंटर ले जाकर डा० वधावन और डा० हर्ष से मिलवाया। बातचीत के बाद उसके एक्स-रे के साथ-साथ खून और पेशाब की जांच हुई। बाद में उसका आपरेशन किया गया। होश आने पर उसने अपने पेट में घाव देखकर उसके बारे में पूछताछ की तो उसे डरा-धमका कर चुप रहने को कहा गया।

गोपाल सिंघल के अनुसार, बाद में उसे ३५ हजार रुपये देकर मुंह बंद रखने की धमकी दी गयी।

गोपाल सिंघल पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन के आसपास मेहनत-मजदूरी का काम करता है।

जिला रोहतक के मरोड़ी गांव के मूल निवासी सुरेंद्र कुमार का परिवार गणेश नगर जालंधर की झुग्गी बस्ती में रहता है। वह चार साल पहले काम की तलाश में दिल्ली चला आया था। उसके परिवार में सात बहनें और तीन भाई हैं।

सुरेन्द्र को जितेन्द्र नाम के व्यक्ति ने राठौर से मिलवाया था। राठौर ने उसे नौकरी और मोटी रकम का लालच देकर चेकअप के नाम पर एन०एम०सी० के डाक्टरों से मिलवाया। संजय सिंह के चैनल से उससे सौदेबाजी की गयी। जब वह फंस गया तो ६ फरवरी १९९६ को उसका ऑपरेशन हुआ। उसका गुर्दा गाजियाबाद के एक कपड़ा व्यापारी को प्रत्यारोपित किया गया था। इसके बदले में उसे ३५ हजार रुपये मिले थे।

ईसादनगर, पिलखुआ निवासी राकेश शर्मा कोण्डली में, अपने मामा के घर रहता था। वह झील खुरेजी के जूली कैटरर्स के यहां काम करता था। जनवरी '९८ में जब वह एक विवाह समारोह में काम कर रहा था, तो वहां मेहमानों में आये अखिलेश यादव से उसकी मुलाकात हुई। अखिलेश ने उसे ५० हजार रुपये और सिंगापुर में नौकरी देने का लालच देकर नोएडा बुलाया।

राकेश नोएडा जाकर अखिलेश से मिला तो उसने मेडिकल फिटनेस के नाम पर उसका चेकअप कराया। उससे कुछ फर्जी कागजात पर भी

(शेष पृष्ठ १३३ पर)

—घायल प्रेम का प्रतिशोध—

(पृष्ठ ११ का शेष)

लातों से मार-मारकर मेरा बुरा हाल कर दिया। मैं हैरान और परेशान था कि आखिर परचे में ऐसी कौन-सी बात थी, जिसकी वजह से मुझे इतनी सजा मिली।

आसिमा ने चंद रोज बाद मुझे बताया कि अफजल ने एक प्रेम-पत्र उनकी रिश्तेदार लड़की सदफ सुलताना को लिखा था, वह पत्र किसी तरह जरमीना के हाथ लग गया। उसने अफजल की लिखावट पहचान ली थी। फिर जरमीना ने मौका गनीमत जानते हुए अफजल को अपने साथ मिलाया और तमाम इल्जाम मुझ पर डाल दिये।

बात यहीं खत्म नहीं हुई। जरमीना ने मेरे और आसिमा के बारे में भी अपने अब्बू को भड़का दिया। मलूका खान ने पहले तो आसिमा की खूब पिटाई की, फिर मेरे पीछे कुछ गुंडे लगा दिये।

उस रोज शुक्रवार था। मैं मस्जिद में जुमा पढ़कर घर आ रहा था, कि कुछ गुंडों ने मुझे घेरकर मारना शुरू कर दिया। इसी दौरान सईद मेरे लिए फरिश्ता बनकर वहां आ गया। उसने उन गुंडों के चंगुल से मुझे छुड़ाया। मेरे कपड़े कई जगह से फट गये थे। कई जगह जिस्म छिल-कट गया था। घावों से खून बह रहा था।

सईद मुझे डाक्टर के पास ले गया। डाक्टर ने स्प्रिट से मेरे जख्म साफ किये, तो दर्द की वजह से मेरी चीखें निकल गयीं। इसी दौरान मेरी मां रोती-पीटती वहां पहुंच गयी। वह बार-बार मेरे चेहरे को चूमती रही और रोते हुए पूछती रही कि यह जुल्म किसने किया है, पर मैंने उन्हें कुछ नहीं बताया। फिर सईद हमें घर तक छोड़ गया। डाक्टर को पैसे भी उसी ने दिये थे।

मैं घर में पड़ा रहता था। कुछ दिन बाद चलने-फिरने के काबिल हुआ, तो सईद ने मुझसे कहा कि अगर तुम मेरे पेट्रोल पम्प पर काम करना चाहो, तो मैं तुम्हें वहां रख देता हूं। लेकिन मैंने नौकरी के लिए इनकार कर दिया, क्योंकि मैट्रिक का इम्तिहान सिर पर था।

मैंने रात-दिन मेहनत की। अल्लाह ने मेरी मेहनत का मुझे फल दिया और मैंने अच्छे नंबरों से पास हो गया।

इसी दौरान शिक्षा विभाग को कुछ अनट्रेंड टीचर भरती करने थे। मैंने कोशिश की, तो सौभाग्य से एक प्राइमरी स्कूल में मुझे अध्यापक की नौकरी मिल गयी।

एक माह बाद मैं अपना पहला वेतन लेकर खुशी-खुशी घर आया। मां के हाथों पर अपनी पहली तनख्वाह रखी, तो उनकी आंखों से आंसू निकल



"मेरा ताल्लुक एक अमीर खानदान से था। घर के मर्द दौलत के घमंड में बिगड़ते जा रहे थे। औरत मेरे बाप और भाई की कमजोरी बन चुकी थी। उस बिगड़े माहौल का असर मेरे जेहन पर भी पड़ा। मैं भी उसी बाप की बेटी थी, जिसके भैया थे। वे मर्द थे। उन्हें औरत की जरूरत थी। मैं औरत होने की वजह से पीछे क्यों रहती?"

पड़े। मैंने वजह पूछी, तो कहने लगीं, 'यह खुशी के आंसू हैं।'

मेरी छोटी बहन भी बहुत खुश थी। वह बार-बार मेरा हाथ पकड़कर कह रही थी, 'भैया, इस ईद पर मैं नये कपड़े बनवाऊंगी। मेहंदी और चूड़ियां भी खरीदूंगी।''

मैंने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए वायदा किया कि इस ईद पर तुम जो कहोगी, मैं वह चीजें तुम्हें लाकर दूंगा। मेरी छोटी बहन उस समय तेरह-चौदह साल की थी और नौवीं में पढ़ रही थी।

एक सोमवार की सुबह बस से मैं स्कूल जा रहा था। पहले स्टाप पर जैसे ही बस रुकी, वहां खड़ी एक कार से दो सशस्त्र आदमी उतरे। उन्होंने मुझे बस से घसीटकर कार में डाला और चल पड़े। मेरे प्रतिरोध करने पर उन्होंने मेरी नाक पर रुमाल रख दिया, जिससे मैं बेहोश हो गया। जब मुझे होश आया, तो मैं एक अध-अंधेरे कमरे में चटाई पर पड़ा हुआ था। मेरे पास ही कच्ची मिट्टी का घड़ा और अल्युमिनियम का कटोरा रखा हुआ था। मेरे दोनों पांव में जंजीरें थीं, जिनका दूसरा सिरा लोहे के कुंडे से जड़ा था। कुंडा दीवार में लगा हुआ था।

कुछ देर बाद घुंघराले बालोंवाला एक नौजवान एक बूढ़े आदमी के साथ अंदर दाखिल हुआ। मैंने उनसे अपना कुसूर पूछा, तो उन्होंने मुझे गंदी गालियां दीं और लातों से मारते हुए कहा, "कुसूर पूछते हो, कुसूर तो तुम्हें जरमीना बतायेगी। अगर जिंदगी चाहते हो तो खामोशी से पड़े रहो। जब जरमीना कहेगी, तुम्हें छोड़ देंगे। शोर करोगे, तो तुम्हारी आवाज हमेशा के लिए बंद कर देंगे।"

मैं बेबसी से उन्हें देखता रहा।

हर दिन के बाद रात, और रात के बाद दिन आता रहा। इसी तरह न जाने कितने दिन बीत गये। मेरी रिहाई की कोई सूरत नजर नहीं आती थी। मेरे पांव जंजीरों की वजह से जख्मी हो गये थे। मैं अक्सर रातों को रो-रोकर अल्लाह से फरियाद करता था, 'या अल्लाह! मेरी बहन और मां को इन जालिमों से महफूज रखना।'

मेरी हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। कमरे में बदबू और मच्छरों की भरमार थी। अतः मुझे मलेरिया बुखार हो गया। जब एक रात मेरी हालत ज्यादा खराब हो गयी, तो उन्होंने सुबह अजान के समय मेरी आंखों पर पट्टी बांधी और दो-तीन गलियों से गुजारकर मुझे एक सड़क पर छोड़ गये। मैंने आंखों से पट्टी खोली, तो एक पुराने कारखाने के सामने अपने आप को खड़े पाया।

कमजोरी की वजह से मुझे चक्कर आया और मैं सड़क पर गिर पड़ा। पास ही एक मस्जिद थी। कुछ नमाजियों ने मुझे उठाया और मस्जिद में ले गये।

मौलवी फतेहदीन ने चाय-बिस्कुट आदि मंगवाकर मुझे नाश्ता कराया। फिर मैंने अपनी सारी कहानी उनको सुनायी, तो उन्होंने अपने इलाके के सभासद नसीरुद्दीन को बुलाकर मेरे बारे में बताया। नसीरुद्दीन ने मुझे थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए कहा, लेकिन मैंने उनके आगे हाथ जोड़ दिये, "खुदा के लिए मुझे जल्दी-से-जल्दी मेरे घर पहुंचा दीजिए।"

नसीरुद्दीन ने कहा, "मैं तुम्हें अस्पताल में दाखिल करा देता हूं। पहले अपना इलाज करा लो, फिर घर चले जाना।"

लेकिन मैंने अपने घर जाने पर जोर दिया, क्योंकि मुझे अपनी मां और बहन की चिंता थी। अतः नसीरुद्दीन ने मुझे बस में बैठाकर मेरे घर पहुंचवा दिया।

रात के समय मैं अपने घर पहुंचा। मेरी हालत बहुत खराब थी। मेरी मां और बहन का रो-रोकर बुरा हाल हो चुका था। मुझे देखते ही मेरी अम्मी और बहन पागलों की तरह मुझसे लिपट गयीं। अम्मी मेरे माथे पर और बहन बार-बार मेरे हाथों को चूम रही थी। मेरी अम्मी रोते हुए अल्लाह से बार-बार फरियाद कर रही थी कि हमें किस जुर्म की सजा मिल रही है।

कई दिन बाद आसिमा को मेरे आने का पता चला, तो वह हमारे घर आयी। वह काफी परेशान थी। उसने

मेरी अम्मी से कहा कि आप आसिफ को कहीं भेज दें, वरना जरमीना उसे कत्ल करा देगी। वह बार-बार बेबसी और हसरतभरी नजरों से मेरी तरफ देख रही थी। कुछ देर बाद वह चली गयी।

हमने वह शहर छोड़ने का फैसला कर लिया था, कि जैसे ही छोटी बहन के इम्तिहान खत्म होंगे, हम यहां से चले जायेंगे।

जरमीना को भी मेरे आने का पता चल गया था।

एक दिन दोपहर के समय मेरी अम्मी घर पर नहीं थीं। छोटी बहन अकेली थी। उसी बीच मैं घर लौट आया। घर आकर देखा, मेरी छोटी बहन दोनों हाथों से अपना पेट पकड़े मछली की तरह तड़प रही थी। घबराकर मैं उसके पास पहुंचा। छोटी बहन से उसके पेट की तकलीफ के बारे में पूछा, मगर पीड़ा की अधिकता के कारण वह कुछ भी बताने की स्थिति में नहीं थी।

इसी दौरान उसको खून की उलटी हुई। अतः मैं मुश्किल से भागता हुआ डाक्टर के पास गया। डाक्टर फौरन ही मेरे साथ घर आ गया। मेरी बहन की हालत बहुत बिगड़ चुकी थी। डाक्टर साहब ने हालत देखकर फौरन किसी बड़े अस्पताल में दाखिल कराने की सलाह दी। डाक्टर की बात सुनकर मेरी आंखों में आंसू आ गये, क्योंकि हमारी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। मैंने सारी पोजीशन डाक्टर को बता दी। उन्होंने कहा, "मैं इस बच्ची का इलाज अपनी बेटी समझकर करूंगा। तुम पैसों और दवाओं की फिक्र न करो।"

डाक्टर साहब ने इलाज में कोई कसर न छोड़ी, लेकिन थोड़ी देर बाद उसको जो उलटियां आयीं, उनमें गोश्त के छोटे-छोटे टुकड़े भी थे। वह दर्द से कराहते हुए नीम-बेहोशी में बार-बार कह रही थी, "भैया, कोई चीज मेर दिल को अंदर से काट रही है...मुझे बचा लो...अम्मी, मुझे बचा लो...मैं मर जाऊंगी।"

हम मां-बेटा उसकी चीख-पुकार सुनकर सिवाय रोने के और कुछ न कर सके। मेरी बहन का हाथ मेरे हाथों में था। वह दम तोड़ रही थी और मैं बेबसी से उसको मरते हुए देख रहा था। आखिर रात दस बजे मेरी मासूम बहन हसरतभरी नजरों से हमें देखते हुए मेरी बांहों में दम तोड़ गयी।

हम पहले तो समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर उसने ऐसा क्या खा लिया, जो उसकी मौत हो गयी। बाद में जब उसकी मैयत उठी, तो चारपाई के नीचे से एक कटोरी बरामद हुई, जिसमें तब भी थोड़ी-सी खीर थी। हम समझ गये कि वह खीर जहरीली थी। डाक्टर का भी कहना था कि जहर से ही मेरी बहन की मौत हुई थी, और हम भी समझ रहे थे कि वह जहरीली खीर किसने भेजी होगी।

डाक्टर ने बार-बार कहा कि तुम रिपोर्ट कर दो। तुम्हारी बहन को खीर में जहर मिला कर दिया गया था। यह जहर दिल और कलेजे को काटता है, मगर हमने परचा कटाने से इनकार कर दिया। परचा कटा देता, तो शायद और भी मुसीबतें हमारे गले पड़ जातीं। लिहाजा हमने अपना फैसला अल्लाह पर छोड़ दिया।

अब हमारा उस घर में दिल नहीं लगता था। मेरी अम्मी मानसिक तौर पर अर्ध-विक्षिप्त हो गयी थीं। वह हर समय रोती रहती थीं।

हम वह शहर छोड़कर अपने दूर के एक रिश्तेदार के पास चले गये। कुछ दिनों के बाद मुझे स्पेशल पुलिस, आई०जी० आफिस में नौकरी मिल गयी।

मेरी अम्मी हर समय अपनी मरहूम बेटी को याद करके रोती रहती थीं। उन्हें यह गम दीमक की तरह चाटता जा रहा था। वह चंद माह बाद मुझे अकेला छोड़कर अपनी मासूम और बेगुनाह बेटी के पास चली गयीं, जो जरमीना के इंतकाम की भेंट चढ़ गयी थी।

यह घटना हुए कई साल बीत चुके थे, लेकिन मैं अपनी बहन की मौत के आखिरी लम्हे आज तक नहीं भूल सका। मेरे अंदर दुखों का अलाव दहक रहा था। मैं अगर चाहता, तो इंतकाम ले सकता था, क्योंकि स्पेशल पुलिस फोर्स के आई०जी० आफिस में था। अगर किसी अफसर को इशारा भी कर देता, तो वह मेरा इंतकाम खुद ले लेता, लेकिन मुझे मेरे अल्लाह पर भरोसा था। मैं उसकी अदालत में इंसाफ का तलबगार था।

उन्हीं दिनों पुलिस ने एक होटल पर छापा मारकर कुछ औरतों को गिरफ्तार किया था। संयोग की बात है कि जो इंसपेक्टर केस की तहकीकात कर रहा था, वह मेरे दोस्तों में से था। एक दिन मैं किसी काम से उसके पुलिस स्टेशन पर बैठा था कि मेरी नजर एक फाइल में नत्थी कुछ तस्वीरों पर पड़ी। मैंने समय बिताने के लिए उसे देखना शुरू कर दिया। उस बंडल में लगभग सोलह औरतों और आठ मर्दों की तस्वीरें थीं। लगभग सबके चेहरों पर धूर्तता फैली हुई थी, जो जरायमपेशा की विशेषता होती है। फिर भी एक के बाद एक तस्वीर उलटता जा रहा था, कि मेरी निगाह एक चित्र पर ठहर गयी। मुझे विस्मय का तीव्र झटका लगा और मैंने तस्वीर वाली फाइल खोल ली।

अपने बयान में उसने कहा था, "मेरा ताल्लुक एक अमीर खानदान से था। घर के मर्द दौलत के घमंड में बिगड़ते जा रहे थे। औरत मेरे बाप और भाई की कमजोरी बन चुकी थी। उस बिगड़े माहौल का असर मेरे जेहन पर भी पड़ा। मैं भी उसी बाप की बेटी थी, जिसके भैया थे। वे मर्द थे। उन्हें औरत की जरूरत थी। मैं औरत होने की वजह से पीछे क्यों रहती? मैंने भी मर्दों से संपर्क बढ़ाने शुरू कर दिये। यह खबर अब्बू से छुपी न रह सकी और तीन खानदान मेरी वजह से मर्दों से वंचित कर दिये गये। मैं इस जख्म पर खामोश न रह सकी और प्रतिरोध के तौर पर एक युवक का हाथ थामकर घर से भाग गयी। घर छोड़ते वक्त जेवरात और नकदी की शक्ल में इतना कुछ ले आयी थी कि किसी भी शहर में रहकर आराम से जिंदगी गुजार सकती थी, मगर ऐसा न हो सका। वह युवक कुछ दिनों तक एक होटल में मुझसे खेलता रहा, फिर एक रात मुझे छोड़ सब कुछ समेट ले गया। कई दिन के बाद होटलवाले को भी इस बात का पता चल गया और उसने बिल की वसूली के लिए मुझे अपने कमरे में बुला लिया। फिर तो मैं एक ऐसा सिक्का बन गयी, जिसका मुकद्दर ही विभिन्न हाथों में गर्दिश करना है, लेकिन मुझे अब भी गम नहीं है कि मैं बरबाद हो गयी। बरबाद होना तो मेरा मुकद्दर था, और अपना मुकद्दर मैंने खुद लिखा है। जिन लोगों की जिंदगियों से मैंने खेला था, उनकी हाय मुझे लगना जरूरी थी।"

फाइल बंद करके मैंने सिर ऊपर उठाकर कहा, "अल्लाह, तेरा शुक्र है, तूने मुझे सब्र की दौलत देकर इंतकाम जैसे गुनाह से बचा लिया।"

जरमीना अब भी जेल में है। मैंने कई बार सोचा कि उससे जाकर मिलूं, उसके गुनाह उसे याद दिलाऊं, लेकिन यह सोचकर खामोश रह जाता हूं कि नहीं, उसे अब और शर्मिन्दा करने से क्या फायदा। उसने मुझे तबाह करने की कोशिश की, और खुद तबाह हो गयी। ●

(एक सत्य घटना पर आधारित। चित्रांकन चित्रकार की कल्पना से)

—प्रस्तुति : सुरजीत

जहां मौत त्यौहार बने

भारत में कई जातियों में वृद्ध-पुरुषों के मरने पर उत्सव सा मनाया जाता है। पहले तो उनकी शव-यात्रा बारात जैसी निकाली जाती थी। अनेक प्रकार के बाजे, होली जैसा उड़ता गुलाल, साथ ही वारांगनाओं का नृत्य भी होता चलता था। बाली द्वीप में तो उल्लास के साथ ढोल बजाये जाते हैं। मैक्सिको में भी शव-यात्रा, नाच-गाना के साथ निकलती है।

कश्मीर के चित्राल नामक स्थान पर कालाश कबीला है। उनमें तो किसी की मौत की खबर सुनते ही वे उछलते नाचते हैं, और बन्दूकों से गोलियां दागी जाने लगती हैं। गोया कोई फौत नहीं हुआ, बेटा जन्मा है। हैसियत के मुताबिक जश्न मनाया जायेगा। अंगूर की बेटी के दौर चलेंगे। शव-पेटिका में भी गहने ही नहीं रखे जाते, कम-अज-कम सात दिनों का खाना भी रखा जाता है। लम्बा सफर जो ठहरा।

हैरतअंगेज मुकदमा
(पृष्ठ ७ का शेष)

ऊपर राजकुमारों की शिक्षा का जिक्र आया था। राजा साहब ने अपने बेटे-बेटियों की शिक्षा के लिए बंगाली अध्यापक तो रखे ही थे, दो अंग्रेज अफसर भी नियुक्त किये थे, जो जमींदारी का काम भी देखा करते थे। वे राजकुमारों को खास तौर पर अंग्रेजी में वार्तालाप करना सिखाने के लिए नियुक्त किये गये थे। उनमें से एक का नाम था मिस्टर व्हाइटन। वे काफी दिनों तक अंग्रेजी में वार्तालाप करा सकने की कोशिश करते रहे। एक बार रानी विलासमणि ने उनसे पुछवाया, "बेटों की शिक्षा में कैसी प्रगति है?"

जवाब में मिस्टर व्हाइटन ने लिखा, "रानी साहिबा, आपके बेटों को अंग्रेजी सिखाते-सिखाते मुझे बंगला में महारत हासिल हो गयी, मगर उन्हें मैं एक शब्द भी सिखा नहीं पाया हूं। बोलिए, मेरा क्या कसूर है? वे अपने हस्ताक्षर भी नहीं कर पाते।"

दूसरे अंग्रेज मास्टर थे मिस्टर मायर। उन्होंने रानी साहिबा को लिखा, "राजा साहब का अंकुश न रहने के कारण तीनों बेटे उच्छृंखल और लापरवाह हो गये हैं। उन्हें मैं एक शब्द भी अंग्रेजी नहीं सिखा पाया। उन्हें कोई शिक्षक बांधकर नहीं बैठा सकता। उनकी सोहबत एकदम निकृष्ट और दुष्ट लोगों में ही सिमट कर रह गयी है। अनुचित संगति ने उन्हें पुस्तकों से दूर कर दिया है। बड़े बेटे के बारे में कुछ भी न लिखूं, यही ठीक है। बेहद बदचलन हो गये हैं। मझले कुमार रमेन्द्र जी से कुछ उम्मीद बनी थी। एक-दो शब्द सीखने लगे थे कि अब वे भी रस्सा तुड़ाकर भाग खड़े हुए हैं। बड़े भइया से भी चार कदम आगे हैं। उनकी अनुशासनहीनता को अब काबू में नहीं लाया जा सकता।"

"तीनों भाइयों के हाथों में ढेरों रुपये होते हैं। विधवा दादी अपने पूजा-पाठ से जब निवृत्त होती हैं, तो समझाने की कोशिश करती हैं। पर वे जब आपकी भी नहीं सुनते, तो उनकी क्या सुनेंगे। उनके इर्द-गिर्द जो चापलूस और दलाल लोग रहते हैं, वे हमेशा आग में घी छिड़कते रहते हैं। वही उनके विश्वासपात्र और शुभचिंतक बन बैठे हैं।"

रानी ने यह वृत्तांत पढ़कर क्षोभ और कुंठा के कारण अपने आपको अपनी हवेली की चारदीवारी में कैद कर लिया। बेटों को नियंत्रण में रखने के तमाम प्रयास खत्म कर दिये और पूजा-पाठ में लगी रहने लगीं।

इन्हीं तीन भाइयों में मझले भाई थे रमेन्द्र नारायण राय, जिनकी याद इन संन्यासी महोदय के आने से ताजी हो गयी थी।

पिता की मृत्यु के साल भर बाद उम्र के अठारहवें वर्ष में रमेन्द्र का विवाह हो गया। पत्नी थीं अनुपम सुंदरी विभावती। उसकी माता उत्तर पाड़ा के संपन्न एवं कुलीन मुखर्जी परिवार की एक विधवा थीं। उनके पति विष्णु वंद्योपाध्याय विभा के जन्म के बाद ही परलोक सिधार गये थे। राजघराने के विधवा आश्रम में अंततः इस विधवा माता और रमेन्द्र की मृत्यु के बाद विधवा पुत्री विभावती भी शामिल हो गयी थी।

विभावती हवेली में उतरी, तो नगर की महिलाओं में उसके रूप की चर्चा परम प्रिय विषय बन गया था। मगर हवेली के दुर्भाग्य से वह भोली सुंदरी भी नहीं बच पायी। वह सजी हुई सुहाग सेज पर बैठी रमेन्द्र नाम के पति की प्रतीक्षा करती रही और पति महोदय अपनी प्रेयसी 'एलोकेरी' की बांहों में लिपटे अपने आपको भूले पड़े थे। अपने सौंदर्य की ऐसी उपेक्षा देखकर विभावती ने उसी दिन से अपने आपको विधवा मान लिया। स्वर्णभूषण उतार कर रख दिये। शृंगारदान बंद करके रख दिया और पति को देखने तक की इच्छा कभी जाहिर नहीं की। पति-पत्नी का एक अलिखित समझौता हमेशा निभाया जाता रहा कि वे एक-दूसरे से अलग ही रहते रहेंगे। अप्रत्यक्ष रूप से विभावती के लिए वह संन्यास जैसा जीवन वरदान बन गया। उस तक पति की वे घिनौनी बीमारियां नहीं पहुंची, जिनसे बाद में वे सड़ने लगे थे।

विभावती अक्सर अपनी माता और भाई सत्येन्द्र के पास ही रहती थी। भाई सत्येन्द्र ने कालांतर में बी०ए०एल०एल०बी० की परीक्षाएं पास करके राजघराने की मदद से कहीं किसी अच्छी नौकरी की कोशिश की थी। मगर जब नौकरी नहीं प्राप्त हुई, तो बहन के ही काम-काज में मदद करना शुरू कर दिया था। राजपरिवार में कोई भी पुरुष नहीं बचा था और समस्याएं तथा उलझनें पैदा होती रहती थीं। बहन को अपने खर्च के लिए एक हजार एक सौ रुपए मिलते थे। ऐसी रकम उन दिनों बड़ी से बड़ी नौकरी करने पर भी नहीं मिलती थी। विभावती के सामने घराने की इज्जत का प्रश्न सर्वोपरि रहता था। चुपचाप सब कुछ सह कर घराने के सम्मान पर आंच न आने देना ही उसका जीवनमंत्र रह गया था।

अलबत्ता घराने के सम्मान के लिए जितना दुख-दर्द, क्षोभ विभावती सहती रहीं, उतनी ही ज्यादा बेइज्जती और बदनामी रमेन्द्र नारायण उछालते रहे। एलोकेशी से रमेन्द्र नारायण का परिचय तब हुआ था, जब वह उसी के विवाह के अवसर पर राजमहल में एक मुजरा पेश करने आयी थी और रमेन्द्र नारायण के सामने उसे ही लक्ष्य करके उसने बड़ी अदाओं के साथ गाया था—"जो मेरे जानी को/होवै शौक पहलवानी/तो आ जा मसहरी बीच/रि देखूं तेरी पहलवानी।" और अंतिम वाक्य गाते-गाते जब वह अपनी साड़ी को अपनी गोरी सुडौल जंघा तक उठाकर हाथ से पहलवानों जैसी थाप देती, तो सामने बैठा रमेन्द्र बिना मोल ही जिबह हो जाता रहा।

मुजरा तो खत्म हो गया, मगर गोरी जंघा पर मारी गयी थाप ने रमेन्द्र को मुग्ध कर दिया। एलोकेशी के सामने रुपयों की थैली फेंककर उसे अपने प्राइवेट कक्ष हवाखाने में ले जाकर छिपा दिया। कई दिन न वह खुद बाहर निकला, न एलोकेशी को निकलने दिया। विभावती हवेली में पड़ी बिसूरती रही थी।

आखिर जब एलोकेशी ने ढाका के बेगम बाजार में अपने कोठे पर जाने की तैयारी की, तो रमेन्द्र उसके साथ इस तरह चला गया, जैसे अपनी नई नवेली प्रेमिका पत्नी को उसे मैके छोड़ने गया हो। उसके बाद कई दिनों तक ढाका में ही रुका रहा और नित्य नियम से उसके कोठे पर हाजिरी देता रहा। एक दिन हंसी-हंसी में कहने लगा, "तुमने मेरा शौक-ए-पहलवानी तो देख लिया, मुझे घुड़सवारी का भी शौक है। मेरे कई घोड़े रेस में दौड़ते हैं। वाइसराय-कप वाली दौड़ में मैंने खुद जॉकी बनकर दौड़ जीती थी। चलो, तुम्हें घुड़सवारी सिखाऊंगा।"

वह मुंह बिचकाकर बोली, "इस शौक के लिए कोई और ढूंढ़ लो। मैं कहां-कहां तुम्हारे शौक पूरे करती फिरूंगी।" ऐसा रूखा जवाब सुनकर रमेन्द्र को बहुत निराशा हुई थी। मन ही मन फैसला किया, 'अब इसे दिखाना ही पड़ेगा कि मैं इस जैसी पचास लड़कियां खरीद कर नचवा सकता हूं।' दांत पीसते हुए कहा, "एलोकेशी! तुम मेरे शौक का अंतिम पड़ाव नहीं हो।" और कोठे से नीचे उतरकर अपने चापलूस दोस्तों और दलालों से कहा, "अब नई महफिलें जमानी हैं। कलकत्ते के बहूबाजार का बहुत नाम सुना है।"

साथी लोग तो चाहते ही थे कि यही सब होता रहे। कलकत्ता ही नहीं, अन्य नगरों की रातरानियों को भी छान मारा। अय्याशी ही रमेन्द्र और उसके साथियों के जीवन का उद्देश्य बन गया था। यह सोचा ही नहीं कि वे अपने जीवन की आहुति दे रहे थे।

संन्यासी बाबा से मुलाकात करने के बाद राजकुमारी ज्योतिर्मयी बड़े उत्साह के साथ विभावती की हवेली में पहुंची और कहा, "मेरी छोटी भाभी, मुझे लगता है, तुम्हारा भाग्य अब पलटा खानेवाला है। मैं उन संन्यासी बाबा की ख्याति सुनकर अपनी आंखों देखने गयी थी। मुझे तो यही लगता है कि वे मेरे छोटे भाई रमेन्द्र ही हैं। वहीं आंखें, चमकती-दमकती त्वचा, बस इन बारह बरसों में थोड़ा मुटाय गये हैं। संसार की चिंताओं से दूर रहकर संन्यासी थोड़ा-बहुत जरूर मुटाय जाता है..."

ज्योतिर्मयी कहती जा रही थीं। अचानक रुक गयीं। उनका अनुमान था कि विभावती अपने पति के बारे में सुनकर एकदम उठ खड़ी होगी और खुद उस संन्यासी को देखने के लिए उतावली हो जायेगी। मगर उस पर तो कोई प्रतिक्रिया ही नहीं हो रही थी। बुत की तरह बैठी रही।

"क्या हुआ तुम्हें?" कुछ बोल नहीं रही हो?" ज्योतिर्मयी ने पूछा।

"क्या बोलूं, पता नहीं कैसे आपको कोई अजनबी अपना भाई लगता है।"

"सिर्फ मुझे ही नहीं, और भी जो लोग भइया को पहचानते थे, सब यही कह रहे हैं। आखिर दुनिया में चमत्कार होते हैं या नहीं? खोये हुए लोग कभी न कभी तो मिलते ही हैं।"

"खोये हुए लोग, मृत्यु को प्राप्त हुए लोग नहीं। मरने के बाद सत्यवान ही वापस जी उठा था, क्योंकि तब तक उसका शरीर अग्नि को समर्पित नहीं किया गया था। आपके भइया का शव तो पूरी तरह अग्नि को समर्पित किया गया था। शव-यात्रा से पहले उनका शरीर घंटों मेरे सामने पड़ा रहा था। पहले तो कोई मुझे उनके पास जाने ही नहीं देता था, मगर जब प्राण पखेरू हो गये, तो शायद हमारे शुभचिंतकों को मुझ पर दया आ गई और उनके पास जाने दिया। जितनी देर मैं उनके शव के पास रही, उतनी देर अपने विवाहित जीवन के साथ वर्षों के दौरान कभी नहीं रही थी। सच पूछो तो न उन्होंने ही मुझे और न मैंने ही उन्हें कभी ठीक से देखा था। ठीक से तब ही देख पायी थी, जब उनका शव सामने पड़ा था। साथ के सब लोग अंत्येष्टि की तैयारियां करने निकल गये थे। मैं भरसक प्रयास कर रही थी कि शव पर कुछ आंसू टपका दूं। मगर आंसुओं के लिए भगवान ने जितना जल मेरी आंखों में छिपाकर रखा था, वह तो वर्षों पहले ही छलक-छलक कर खत्म हो चुका था..."

ज्योतिर्मयी स्तब्ध हो गयीं। उन्हें अपनी प्यारी छोटी भाभी के दुखों का अनुमान तो था, मगर इस मौके पर वह दुख इस हद तक फफककर निकल पड़ेगा, ऐसी उन्हें कतई अपेक्षा नहीं थी। ज्यादा बात करने का अवसर ही नहीं रहा था। चुपचाप उठकर चली आयीं। विभावती ने भी उन्हें रुकने के लिए नहीं कहा।

वहां से उठकर वे अपनी हवेली जाने के बजाय सबसे बड़े भाई रणेन्द्र नारायण की विधवा सरयूबाला को संन्यासी बाबा के बारे में बताने के लिए चली गयीं।

संन्यासी बाबा ने जहां अपना आसन जमाया था, उस रास्ते से ढाका के सब-जज माननीय देवव्रत मुखोपाध्याय भी अदालत से लौटते हुए गुजरा करते थे। उनका निवास वहां से दूर नहीं था। वायुसेवन के लिए भी वे बांध तक की सैर कर आते थे। रह-रहकर उनकी नजर संन्यासी पर पड़ती थी। तपस्या की मुद्रा में वह हमेशा निश्चल भाव से विराजमान रहता था। उसका व्यक्तित्व भी सौम्य, सुदर्शन था, मौसम कैसा भी उपद्रवी हो, संन्यासी रंच मात्र भी विचलित नहीं होता था। एक दिन



बाबा ने निर्विकार भाव से कहा, "जब से इस अकिंचन ने यहां आसन जमाया है, तब से अनन्त भक्तों ने यही प्रश्न किया है। संन्यासी को आत्मपरिचय देने की अनुमति नहीं होती। कुछ लोगों को भ्रम हो गया है कि मैं यहां के किसी राज्य का राजपुत्र हूं। इस संसार में भ्रम भरे पड़े हैं।"

मुखोपाध्याय महोदय को प्रेरणा हुई कि रात के समय वे संन्यासी को देखने जायें। क्या रात में भी मुद्रा नहीं बदलती? और उस रात संयोग से हल्की-हल्की वर्षा होने लगी। तेज हवाएं घर से बाहर निकले लोगों की पिटाई करती जा रही थीं। सर्दी का प्रकोप खूब बढ़ गया था। आधी रात बीत चुकी थी। माननीय मुखोपाध्याय ने अपने कपड़ों पर वर्षा से बचने के लिए रेन-कोट चढ़ाया। छतरी भी उठायी और आ पहुंचे संन्यासी के ठिकाने पर। देखा तो हैरान रह गये। संन्यासी पर उपद्रवी मौसम का कोई असर नहीं हो रहा था। उसी शांत मुद्रा में, जिसमें वे उन्हें दिन में देख गये थे, निर्विकार, ध्यानमग्न बैठे थे। सामने धूनी सुलग रही थी। वर्षा से बचाने के लिए धूनी पर उन्होंने कमण्डल को उलट करके चिमटे के सहारे टिका दिया था।

मुखोपाध्याय बाबू का पूर्वाग्रह धूनी के धुएं में उड़ गया। उस समय संन्यासी की तपस्या में विघ्न न डालने का इरादा करके वे चुपचाप वापस चले गये और अगले दिन दोबारा आये, "बाबा! आपका परिचय पाने की उत्कट इच्छा हो गयी है। अनुग्रहीत करेंगे?"

बाबा ने निर्विकार भाव से कहा, "जब से इस अकिंचन ने यहां आसन जमाया है, तब से अनन्त भक्तों ने यही प्रश्न किया है। संन्यासी को आत्म-परिचय देने की अनुमति नहीं होती। कुछ लोगों को भ्रम हो गया है कि मैं यहां के किसी राज्य का राजपुत्र हूं। इस संसार में भ्रम भरे पड़े हैं।"

मुखोपाध्याय महोदय का ध्यान गया—संन्यासी की बायीं बांह पर उर्दू में गोदना गोदा हुआ था, 'बाबा धर्मदास दाचेला नागा'।

राजकुमारी ज्योतिर्मयी ने अपनी दोनों बहनों, तीनों भाइयों की विधवाओं और दादी मां को संन्यासी के बारे में विस्तार से बता दिया था और शंका व्यक्त की थी कि 'भइया रमेन्द्र मरा नहीं था, गायब हो गया था। अब उसे मोह-माया वापस खींच लायी है।'

दादी मां ने निश्चय किया कि संन्यासी बाबा को हवेली में आमंत्रित करके गौर से देखा-पहचाना जाये। उन्होंने मुनीम को बुलवाकर वर्धमान के महाराजा साहब को पत्र लिखवाया। वर्धमान महाराज उन दिनों दार्जिलिंग में उसी बंगले 'स्टेपएसाइड' के समीप रहते थे, जिसको रमेन्द्र के इलाज के लिए किराये पर लिया गया था। पत्र—३ सितम्बर १९१७

जयदेवपुर राजबाड़ी, भवाल, ढाका

१८ भाद्र १३२४ विक्रमी

माननीय वर्धमान महाराज,

यथोचित सम्मानपूर्वक निवेदन है कि हम दोनों राजघरानों में पत्र-व्यवहार के अवसर नहीं आये। मगर हम एक-दूसरे को दीर्घ काल से अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं। मैं परलोकवासी राजा कालीनारायण राय की विधवा हूं और स्वर्गवासी राजेन्द्र नारायण राय की माता हूं। मेरे तीन पुत्र थे। अब वे भी नहीं हैं। उनकी विधवाएं हैं। संतान किसी के नहीं। मझला बेटा रमेन्द्र इलाज और जलवायु परिवर्तन के लिए दार्जिलिंग ले जाया गया था। वह आपके पड़ोस में ही ठहरा था। वहीं उसका निधन हो गया। शव-यात्रा में आप भी सम्मिलित हुए थे। उस समय की कई कहानियां सुनने में आती रहीं कि उसका दाह-संस्कार हो नहीं पाया था। आंधी तूफान के कारण शव-यात्रा में गये लोग किसी छाया में पहुंचने के लिए लपक गये। तूफान थमने के बाद जब वापस आये, तो शव वहां से गायब था। सच्चाई क्या है, हमें आज तक मालूम नहीं हो पायी। क्या आप सच्चाई पर प्रकाश डाल सकते हैं? शव पर गंगा जल और तुलसी-पत्र डालने की व्यवस्था आपने करायी थी। आपको जरूर कुछ रहस्य प्रकट होगा।

भवदीय : सत्यभामा देवी

कुछ ही दिनों में वर्धमान महाराज का उत्तर आ पहुंचा। संक्षेप में कहा यह गया था कि उन्हें भवाल के मझले राजकुमार की मौत के बारे में ज्यादा कुछ याद नहीं है। शाम के समय श्मशान की तरफ उन्होंने कुछ लोगों की भीड़ देखी थी। फिर सुना कि शव का यथारीति संस्कार किया गया। कौन से समय संस्कार किया गया, ठीक याद नहीं, शाम थी या सुबह।

इस पत्र-व्यवहार के दौरान ज्योतिर्मयी ने अपने छोटे भाई रमेन्द्र नारायण के मित्र कासिमपुर के जमींदार को सूचना भेजी कि वे संन्यासी बाबा को अपनी हवेली में आमंत्रित करके पता लगाने की कोशिश करें कि ये रमेन्द्र ही हैं या नहीं।

कासिमपुर तक संन्यासी की खबर पहले ही पहुंच चुकी थी। जमींदार अतुल बाबू एक बार उन्हें देख भी चुके थे। इसलिए संन्यासीजी को आदर

सहित निमंत्रित किया और उन्हें लाने के लिए अपनी फिटन गाड़ी भेज दी। संन्यासी बाबा इस तरह बढ़ते स्वागत से थोड़े विचलित हो गये। कहीं वे किसी मुसीबत में न फंस जाएं, दूसरी तरफ उन्हें खुशी भी हो रही थी कि उनकी ख्याति बढ़ रही थी। राजघरानों और जमींदारों के यहां से निमंत्रण आ रहे थे। लाने-ले जाने के लिए गाड़ियां भेजी जा रही थीं। जिज्ञासा जाग उठी थी कि देखें तो भविष्य के गर्भ में उनके लिए क्या छिपाकर रखा हुआ है।

कासिमपुर जाने से पहले उन्होंने सावधान रहना जरूरी समझा। वहां पर तरह-तरह के सवाल पूछे जायेंगे। कोई भी जल्दी में दिया गया जवाब परेशानी खड़ी कर सकता है। इसलिए उन्होंने निमंत्रण भेजनेवालों को लिखकर सूचना पहुंचायी कि उन्होंने मौन व्रत धारण कर लिया है। इसलिए उनसे कोई पूछताछ न की जाये। अब तक उन्हें यह सत्य पूरी तरह समझ में आ गया था कि राजपरिवार का कोई युवक, जिसका नाम रमेन्द्र था, बारह वर्ष से गायब है और उसकी शक्ल-सूरत उनसे मिलती है। संसार की मोह-माया छोड़कर वे दीर्घ काल से तपस्या करते चले आ रहे थे। अब यह कैसा संयोग आया कि उनकी तपस्या में व्यवधान का खतरा पैदा हो गया है। क्या करें, कौन-सा नीति-मार्ग अपनायें, ठीक से फैसला नहीं कर पा रहे थे।

वह कासिमपुर पहुंचे। खूब खातिर हुई और जैसा अपेक्षित था, उनसे यह जानने की कोशिश की गयी कि क्या वे रमेन्द्र नारायण हैं। उन्होंने सावधानी बरती। लिख कर बताया कि उनका मौन व्रत है, कोई जवाब नहीं देंगे। रमेन्द्र के अंतरंग मित्र ने उनकी आंखों में आंखें डालकर कहा, "मुंह से मत बोलिए, लिखकर तो जवाब दे सकते हैं। उन्होंने लिखकर जवाब देने से भी हाथ हिलाकर इनकार कर दिया। जमींदार महोदय ने एक बात यह नोट की कि संन्यासी बाबा ने लिखकर मौन व्रत की जो सूचना दी है, उसमें उनका हाथ स्वाभाविक रूप से हिन्दी लिख रहा था, जबकि रमेन्द्र से जब भी उनकी बातें हुआ करती थीं, वे बंगला में हुआ करती थीं। दूसरे नंबर पर उन्होंने यह नोट किया कि संन्यासी बाबा ने जब उन्हें फिटन से उतरकर पहली बार देखा, तो वे इस तरह देख रहे थे, जैसे किसी अजनबी को देख रहे हों। कितनी भी मोह-माया से मुंह मोड़ लिया हो, पहचाने हुए व्यक्ति को देखकर आंखें तो सब कुछ स्पष्ट कर ही देंगी। तीसरी बात यह नोट की कि रमेन्द्र तो उस हवेली में अनन्त बार आया-गया था। संन्यासी की नजर तो किसी भी जगह को नहीं पहचान रही थी। कार्निस पर रखा रमेन्द्र के साथ खींचा गया उनका फोटो भी संन्यासी बाबा को कुछ दिलाता नजर नहीं आया।

इतनी शंकाएं उठने पर जमींदार दोस्त अतुल के हृदय ने यह मानने से इनकार कर दिया कि सामने बैठा संन्यासी रमेन्द्र ही है। और जब उन्होंने संन्यासी बाबा से चुनौतीभरे शब्दों में कहा, "बारह वर्ष तो क्या, पचास वर्ष का अंतराल भी दांत काटी रोटी वाले साथी को भूल नहीं सकता।" तो संन्यासी बाबा एकदम चौंके नहीं, पूरी तरह शांत रहे और अपने व्यवहार को औचित्य देने के लिए लिखा, "मैं अपने अतीत को पूरी तरह भूल चुका हूं। इंद्रियों का दमन करते-करते स्मृति-दमन भी हो जाता है।"

यह घटना ५ अप्रैल १९२० की है। उस आतिथ्य में उनका पूरा सप्ताह वहीं गुजरा।

एक सप्ताह बाद उन्हें जयदेवपुर ले जाने के लिए हाथी भेजा गया। हौदे पर सवार उन्होंने तोराग नदी पार की। शाम होते-होते हाथी उन्हें जयदेवपुर ले आया। वहां के वैभव से प्रभावित उनकी आत्मा की आवाज आयी, 'समय के गर्भ में जरूर कुछ है'। महल परिसर के आंगन में माधव मंदिर के सामने हाथी से उतरकर कामिनी फूलों के एक वृक्ष की छाया में उन्होंने अपना आसन जमाया। हाथी का आना अपने आप में बहुत बड़ा प्रचार था। जयदेवपुर की समूची जनता उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी। जनता के लिए वे एक संन्यासी मात्र नहीं, खोये हुए राजकुमार थे। भीड़ का प्रत्येक व्यक्ति उनके अंग-अंग का मिलान राजकुमार रमेन्द्र से कर रहा था। जब नया शिशु जन्म लेता है, तो माता के पक्ष के तमाम लोग उस शिशु में माता की झलक देखते हैं। नाक, कान, आंख, सब कुछ मां से मिलता हुआ लगता है। फिर वही शिशु जब पिता के परिवार जनों के बीच पहुंचता है, तो हर किसी को उसमें पिता की ही झलक दिखाई पड़ती है। मनुष्य अपने मन से जो कुछ देखना चाहता है, उसकी आंखें उसे वही दिखा डालती हैं।

जनता-सत्कार के बाद उन्हें अंतःपुर ले जाने के लिए ज्योतिर्मयी का बेटा बुद्ध बाबू आया। मौनी बाबा सब कुछ देखते-सुनते महिलाओं के बीच पहुंच गये। उस समय दादी मां सत्यभामा देवी के साथ उनकी अपनी पुत्री भी थी। बड़ी बहन इंदुमयी, उनके तीनों बेटे और बहनोई गोविंद बाबू भी थे। ज्योतिर्मयी सबके नाम बताकर परिचय देती गयीं और देखती गयीं कि मौनी बाबा पर प्रत्येक परिचय की क्या प्रतिक्रिया होती रही। एक ग्रुप फोटोग्राफ को दिखाती हुई पूछने लगीं, "और इन्हें पहचानते हो बाबा? धाय मां अलका हैं। इन्होंने हम सबको बचपन में पालपोस कर बड़ा किया है। रमेन्द्र तो इन्हें ही मां समझा करता था।" फिर उन्होंने हवेली के प्रधान कक्ष में लटके आदमकद तैल-चित्रों को दिखा कर उनका परिचय दे डाला, "ये पितामह हैं राजा कालीनारायण। ये पिता श्री राजा राजेन्द्र नारायण। ये माताश्री विलासमणि...पर आप तो इन्हें पहचानकर भी अपरिचित ही बने हुए हैं। कब होगा आपका मौन व्रत समाप्त? तब दोबारा बुलवाऊंगी। कम से कम बातें तो हों।"

और उस दिन वह मुलाकात वहीं खत्म हो गयी। बाबा, मंदिर के सामने कामिनी पुष्प वृक्ष के नीचे पहुंच गये, यद्यपि उन्हें हवेली के अतिथि कक्ष में रहने का प्रबंध किया गया था। अगले दिन चैत्र संक्रांति का पर्व था। मौनी बाबा ने पहले ही बता दिया था कि इस संक्रांति पर वे अपना मौन व्रत तोड़ेंगे। उस दिन उत्तम प्रीतिभोज पर ज्योतिर्मयी ने संन्यासी बाबा को आदर के साथ आमंत्रित किया। बाबा के बदन पर भस्म लगी हुई थी। एक थाली उनके सामने रख हाथ धुलवाये गये। बाबा ने कटोरा उठाकर दूध-मलाई को समेट लिया। फलों की टोकरी पर हाथ रखकर बोले, "इसे प्रसाद बनाकर मंदिर में बंटवा दीजिए।"

वहां उपस्थित हर किसी को यह बात खटकी कि जब हर कोई वहां पर बंगला बोल रहा है, तो बाबा ने यह एक वाक्य हिन्दी में क्यों बोला। इसी बीच दादी मां सत्यभामा देवी को ऐन बाबा के सामने कुर्सी पर लाकर बैठाया गया, ताकि वे गौर से उन्हें देख सकें। बाबा स्वयं कालीन बिछे तख्त पर विराजमान थे। दादी मां को कुर्सी से उठवाकर अपने पास तख्त पर बैठाते हुए उन्हें और भी अपने पास सरकाते हुए बोले, "बूढ़ी दादी मां। बड़ी दुखियारी हो। न पति, न बेटा, न पोते।"

देखनेवालों को लगा, दादी मां के लिए उनके मन में श्रद्धाभक्ति जाग उठी है, यानी उन्हें जरूर पहचान लिया है। क्षणभर बाद ज्योतिर्मयी की दो बेटियों की ओर अपनी आंखें घुमाते हुए पूछा, "दोनों तुम्हारी बेटी हैं?" फिर बाबा ने बुद्ध की तरफ हाथ उठाकर पूछा, 'ये आज्ञाकारी तुम्हारा बेटा है?" फिर उसी क्रम में इंदुमयी के बेटों की तरफ देख कर बोले, 'ये तुम्हारी दीदी के चिरंजीव हैं? और ये कन्या कौन है? हाथ नंगे क्यों हैं?" जवाब में कोई कुछ नहीं बोला। वातावरण गंभीर हो गया। बाबा की आंखों से बरबस आंसू निकल पड़े, "इतनी छोटी उम्र में ही ऐसा दारुण दुख!"

ज्योतिर्मयी ने कहा, "आप तो संन्यासी हैं और इस बिटिया जैसी दुखियाएं तो संसार में भरी पड़ी हैं। इस हवेली को ही देखो, बस विधवाएं ही विधवाएं रह गयी हैं। संन्यासी को कैसी मोहमाया सता रही है?"

"यह मोहमाया दुखी व्यक्ति को देखकर बरबस उभर आती है। ये आंसू भगवान से प्रार्थना करते हैं—दुखियों के दुख दूर कर दो भगवान!"

एक बार फिर से थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा गया। आखिर ज्योतिर्मयी ने कहा, "बाबा, संन्यासी लोग त्रिकालदर्शी होते हैं। मेरे मझले भाई रमेन्द्र के बारे में बहुत-सी अफवाहें उड़ रही हैं। आपका ज्ञान कुछ प्रकाश डाल सके, तो हम बड़ी अनुग्रहीत होंगी।"

बाबा थोड़ी देर के लिए ध्यानमग्न

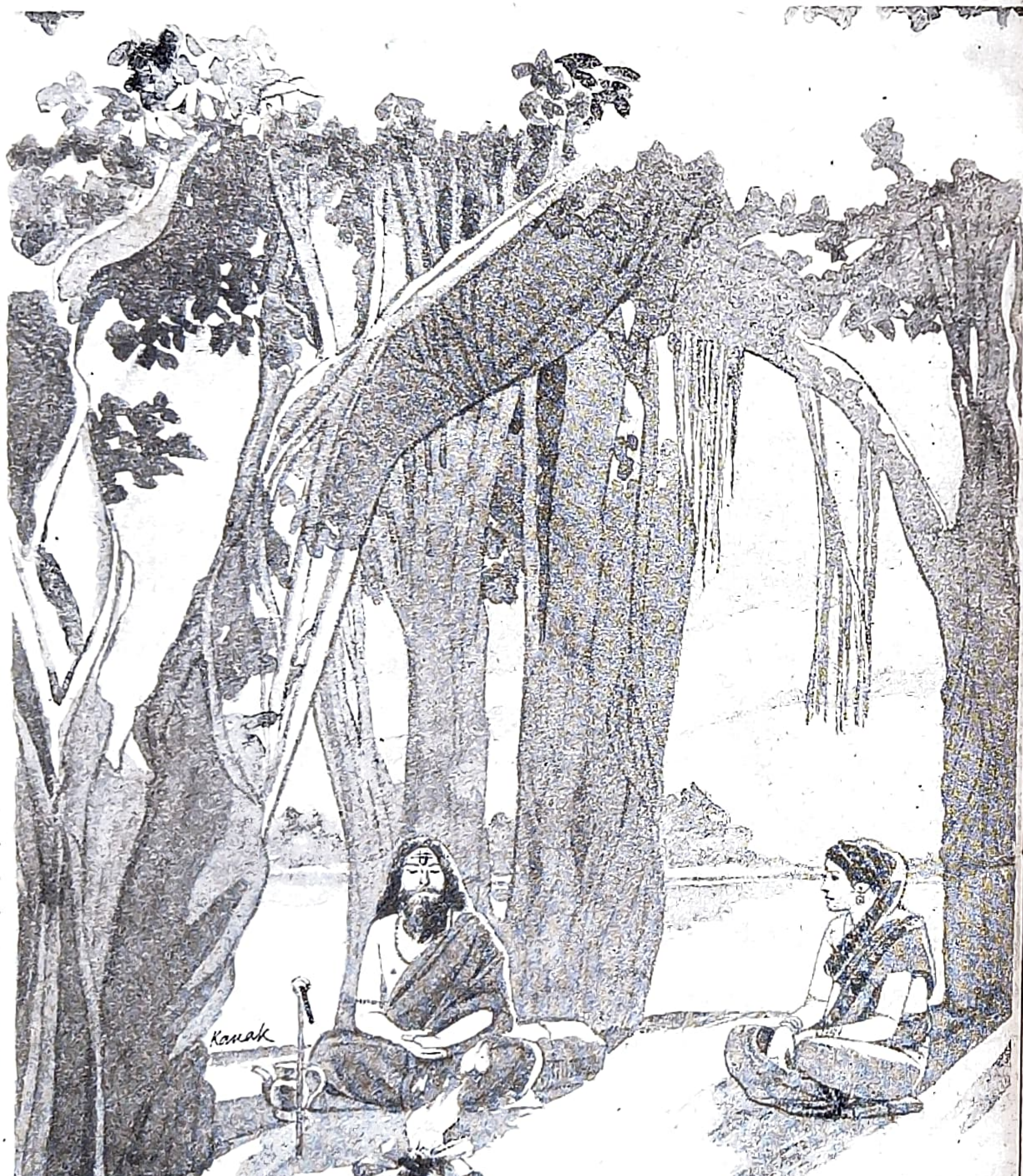
हो गये। भवाल राजपरिवार के लिए संन्यासी से हुई यह मुलाकात बिलकुल अंतरंग रूप ले चुकी थी। थोड़ी देर बाद बाबा ने आंखें खोलीं। ज्योतिर्मयी ने कहना शुरू किया, "मेरे मझले भाई अक्सर बीमार रहते थे। इलाज के लिए पहले तो उन्हें कलकत्ते ले जाया गया। कुछ हालत सुधरी तो उनके परम मित्र और हितैषी का रिश्ता गांठ लेनेवाले उनके साले भाई सत्येन्द्र ने उन्हें राय दी कि जलवायु-परिवर्तन के लिए दार्जिलिंग में जाकर रहा जाये। ऐसी राय देने में उनका स्वार्थ निहित था कि वे भी जीजा की सेवा के बहाने दार्जिलिंग की हवा खाएंगे। सत्येन्द्र मोशाय थे तो वकालत पास और शुरू में उनका प्रयास यही था कि जयदेवपुर परिवार की सिफारिश पर कोई अच्छी नौकरी पा जायेंगे। मगर हुआ यह कि नौकरी तो मिली नहीं, इसलिए वे जीजा की कमजोरियों में उनके मददगार बनकर परम हितैषी शुभचिंतक बन बैठे। इनके अलावा हमारे परिवार के वेतनभोगी डाक्टर आशुतोष दासगुप्ता भी उनके साथ गये थे। नौकर, चाकर, रसोइया वगैरह का दल तो साथ रहता ही था।

"भाई रमेन्द्र की पत्नी भी साथ गयी थीं। यहां एक बात बताना भूल गयी कि सत्येन्द्र मोशाय हमारे मझले भाई के राजदां तो बन गये, मगर अपनी बहन के शुभचिंतक नहीं बन पाये। उनकी बहन विभावती और उनकी मां यही चाहती रहीं कि वे बहन की ससुराल में न रहें। यहां तक कि उनकी मां ने कलकत्ते में किराये का घर भी इसी उद्देश्य से लेकर रहना शुरू कर दिया था कि रमेन्द्र के पास न रहकर उनके पास रहें। मगर उनके चाहने से क्या होता। सत्येन्द्र तो योजना बनाकर स्वार्थ सिद्ध करनेवाला व्यक्ति था।"

(ज्योतिर्मयी ने यह नहीं बताया कि वह अपनी बहन के सुहाग को उजाड़ने के लिए हमेशा औरतों को जीजा के लिए बुलाने का काम करता रहा। जाहिर है, खुद भी उसे इसी बहाने मौज करने को मिलता था। उन्होंने संन्यासी को यह भी नहीं बताया कि रमेन्द्र को बीमारी क्या थी।)

"दार्जिलिंग में उपयुक्त निवास का प्रबंध करने के लिए सत्येन्द्र खुद मझले भाई के व्यक्तिगत नौकर मुकुन्द गुई को साथ लेकर गया था। ख़र्चा हमारे भाई ने ही दिया। दार्जिलिंग में 'स्टेप एसाइड' नामक ऐतिहासिक, शानदार बंगला किराये पर ले लिया, जिसमें कभी देशभक्त चितरंजन दास रहे थे। १८ अप्रैल १९०९ को वह पूरा दल, जिसका जिक्र ऊपर हो चुका है, रमेन्द्र को लेकर 'स्टेप एसाइड' में जा उतरा। पहले तो यह सुना कि भाई की हालत में अच्छा सुधार हुआ है। वे शिकार खेलने के लिए भी तैयार होकर जाने लगे थे। एक टाइगर मारा भी था। उसके साथ फोटो भी खिंचवाया था। मगर उसके बाद अचानक उनकी हालत बिगड़ गयी।

डा० आशुतोष दासगुप्ता के हाथ-पांव फूल गये, तो वहां के ख्यातिप्राप्त सिविल सर्जन अंग्रेज डाक्टर कर्नल केलवर्ट को बुलवाया गया। उनका इलाज चला। भाई के पेट में भयंकर पीड़ा थी, जिसे 'विलियरी कालिक पेन' कहा जाता है। उधर उनकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। फिर भी हम सबको तार भेजकर यही बताया जाता रहा कि सुधार हो रहा है और सत्येन्द्र के आग्रह पर रमेन्द्र की पत्नी विभावती पर भी प्रतिबंध लगा दिया कि रोगी के पास न जाये। संक्रमण का भयंकर भय है। विभावती के कमरे से हटाकर रोगी को दूसरे कमरे में स्थानांतरित कर दिया गया, जहां पलंग के बजाय उनका बिस्तर फ़र्श पर ही बिछाया गया था। डाक्टर केलवर्ट के अलावा डा० निवारण सेन और डा० बी०बी० सरकार को भी बुलाया गया था। रोग पर काबू नहीं पाया जा रहा था और ८ मई १९०९



की दोपहर को उनका निधन हो गया। विभावती ने बताया कि दाहसंस्कार के लिए शाम को ले जाया गया था और कुछ घंटों के अंदर ही शवयात्रा पर गये लोग वापस आ गये थे।"

संन्यासी ने विचलित होकर पूछा, "आपने अपने परिवार के सभी सदस्यों का परिचय कराया था, उनमें विभावती तो नहीं थी?"

"हां, वह नहीं आयी, वे किसी से मिलती-जुलती भी नहीं। पति की मृत्यु के बाद से तो वह अपने भाई सत्येन्द्र से भी मिलना नहीं चाहती। पता नहीं क्या कारण है। वह शायद अपने पति की मृत्यु के दोषियों में अपने भाई को भी भागीदार मानती है।"

"वे किसी से न मिलें, मगर संन्यासियों से मिलने में परहेज नहीं करना चाहिए। मैं उनके दर्शन करना चाहूंगा।"

"विभा से आपको मिलवा दूंगी, मगर मेरी बात अभी पूरी नहीं हुई, बाबा। भाई की मृत्यु के बारे में कई अफवाहें हैं। एक तो यह कि शवयात्रा दिन में नहीं, रात में हुई। उनके वर्णन के अनुसार, शवयात्रा देर रात में हुई थी। और जब अर्थी पर शव को लेटाया गया, तो बारिश और तूफान आ गया। ठण्ड और बारिश से बचने के लिए लोग सुरक्षित छाया के नीचे चले गये। बाद में जब बाकी बचे शव-दाह कार्य के लिए आये, तो शव ही वहां से गायब हो गया था। तो बाबा, यह बताने का कष्ट करें कि सही बात क्या है? मेरे भाई की अन्त्येष्टि हुई या अभी वे कहीं पर जीवित हैं?"

बाबा ने आंखें बंद करके थोड़ी देर सोचा। फिर बोले, "जवाब मैं मनन करके दूंगा।" इसी बीच ज्योतिर्मयी ने इंदुमयी के बेटे के हाथ से रमेन्द्र का एक बड़ा-सा फ़ोटो लेकर बाबा को दिखाया, "हमारा अनुमान है कि यह फोटो और आपका चेहरा-मोहरा एकदम मिलते हैं। इसलिए मनन करके बताने की बात छोड़िए। स्पष्ट स्वीकार कर लीजिए कि आप ही मेरे खोये हुए भाई हैं।"

यह सुनकर बाबा एकदम विचलित होकर बोले, "नहीं, बिलकुल नहीं, मुझे भी संदेह हो रहा था कि तुम लोग किसी भ्रम में हो। इसलिए मुझे बार-बार अंतःपुर में बुलाकर जांचने-परखने में लगे हो। मैं तुम्हारा कोई नहीं हूं।" ऐसा कहकर वे उठ खड़े हुए। जैसे तमाम रिश्ते-परिचय झाड़कर जा रहे हों, "संन्यासी को मोहमाया में मत घसीटो। अब मैं यहां नहीं आऊंगा।" हवेली के सभी सदस्य हक्के-बक्के रह गये। उस क्षण किसी ने भी संन्यासी को नहीं छेड़ा और ज्योतिर्मयी उन्हें आदर सहित विदा करने दरवाजे तक साथ-साथ गयीं।



विभावती भी अपने भाई को भवाल हवेली में आने से रोकने के लिए मां के पास ही रहने लगी थी। मगर ऐसी तमाम कोशिशों पर सत्येन्द्र नाथ निरंतर पानी फेरता आया था। रमेन्द्र नारायण की मृत्यु के बाद विभावती को भवाल हवेली में लाया गया, तो सत्येन्द्र बहन के आंसू पोंछने के बहाने उनके कमरे में गया।

उनकी शंका किसी भी करवट नहीं बैठ पायी। ये संन्यासी रमेन्द्र नहीं है, यह भी वे दृढ़ निश्चय से नहीं कह पायीं और यह भी नहीं कह पायीं कि यही रमेन्द्र है। रह-रहकर उन्हें संन्यासी का वह वाक्य रिकार्ड-ग्रामोफोन पर अटकी हुई सुई की तरह दोहराता रहा, "मैं तुम्हारा कोई नहीं हूं...संन्यासी को मोहमाया में मत घसीटो।" अगर वे वास्तव में कोई नहीं है, तो उन्हें यह कहने की क्या जरूरत थी? अगर मोहमाया नहीं जागी है, तो यह अनुभूति कैसे हुई कि मोहमाया में घसीटे जा रहे हैं?

यह बात भी सही थी कि समूचे भवाल परिवार में ज्योतिर्मयी ही संन्यासी को देखकर सबसे ज्यादा उत्साहित हुई थीं। उसके पीछे एक और भावना भी काम कर रही थी। भवाल परिवार लुप्त होने को था। कोई भी पुरुष नजर के सामने नहीं था, जो भविष्य में कभी इस परिवार को लुप्त होने से बचा सकता। कोर्ट आफ वार्ड्स के अधीन तो विलीन होने की प्रक्रिया और भी समीप खिसकती आ रही थी। छोटी बहू आनन्दमयी ने एक लड़के रामनारायण राय को गोद लिया था। मगर भवाल वंश के नियमानुसार वह समूचे परिवार का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। धर्मपुत्र धर्म पिता-माता का ही प्रतिनिधि माना जा सकता था।

विभावती का भाई सत्येन्द्र नाथ बनर्जी बिनबुलाये मेहमान की तरह हस्तक्षेप करके हर किसी पर हावी होता चला जा रहा था। उसे रोकने की कोई युक्ति किसी की समझ में नहीं आ रही थी। भाइयों में सबसे बड़े रणेन्द्र की विधवा सरयूबाला ने अपने आपको दुनियादारी की बातों से समेट कर अलग कर लिया। विभावती खुद नहीं चाहती थीं कि उसका भाई खानदान भर की आंख की किरकरी बनकर बेशर्मी से अपने आपको सर्वेसर्वा बनाता चला जाये। विभावती अपनी मां से अपने मन की बात कहती थी। मां भी उससे पूरी तरह सहमत थी। वह हरगिज नहीं चाहती थी कि उसका पढ़ा-लिखा बेटा बहन की सम्पति पर नजर रखकर वहीं जमने की कोशिश करता रहे। उसे रोकने और अपने पैरों पर खड़ा करने की कोशिश में ही मां ने उत्तरपाड़ा में एक घर किराये पर लेकर रहना शुरू कर दिया था।

खुद विभावती भी अपने भाई को भवाल हवेली में आने से रोकने के लिए मां के पास ही रहने लगी थी। मगर ऐसी तमाम कोशिशों पर सत्येन्द्र नाथ निरंतर पानी फेरता आया था। रमेन्द्र नारायण की मृत्यु के बाद विभावती को भवाल हवेली में लाया गया, तो सत्येन्द्र बहन के आंसू पोंछने के बहाने उनके कमरे में गया। विभावती ने भाई की तरफ से मुंह फेर लिया और व्यंग्यबाण छोड़ा, "तुमने ही मुझे रानी बनाने के लिए ताने-बाने बुने और अब तुमने ही मुझे भिखारिन बना दिया है।'

रमेन्द्र के जीवनकाल में ही उसे भरमाकर सत्येन्द्र ने सम्पत्ति का प्रबन्ध करने के लिए पावर-आफ-एटार्नी अपने नाम तैयार करवा ली थी। और रमेन्द्र की मृत्यु के बाद उसके बीमे की रकम हथिया कर अपनी जेब के हवाले कर ली थी। रकम शायद ३६ हजार रुपये थी। विभावती को पता चला तो वह अपने भाग्य को कोस कर रोती रही थी। पहले पति के तमाम दोष चुपचाप सहकर अपने आपको निर्विकार बना चुकी थी। अब भाई के अन्याय भी उसी तरह खामोश रहकर सहने के लिए मजबूर हो रही थी। रमेन्द्र के हिस्से में सालाना एक लाख रुपये की रकम आती थी। वही रकम अय्याशी में उड़ती रही थी। सत्येन्द्र को मालूम था कि वही रकम अब बहन के हिस्से में आ गयी है। उसकी नजर इस रकम पर टिक गयी थी।

सत्येन्द्र नाथ की नीयत परिवार के सबसे बड़े भाई रणेन्द्र को भी पता लग चुकी थी। मगर मझले भाई के साले के प्रति कुछ कह डालने में वे हिचकते रहे थे। जब उन्हें रमेन्द्र की मृत्यु का तार मिला, तो उन्हें डर हुआ कि विभावती निढाल हो गयी होगी और ऐसी परिस्थिति का लाभ उसका भाई जरूर उठाना चाहेगा। हो सकता था, वह अपनी बहन को बहला-फुसलाकर अपने साथ अपनी मां के पास ले जाये और कोई कानूनी दांव-पेच खेलने की कोशिश करे। आखिर सत्येन्द्र वकालत पास था। उसने ढाका के बालाटोला मुहल्ले में एक मकान खरीद कर पहले ही सुरक्षित कर लिया था।

इसलिए रणेन्द्र ने सावधानी का कदम उठाया था। भाई की मृत्यु के बाद विभावती को सीधे हवेली में ले आने के लिए दासियों के साथ अपने आदमी भेजे और विभावती को अपने परिवार के संरक्षण में रखने के लिए सहानुभूति का व्यवहार करना शुरू कर दिया। सत्येन्द्र अपनी बहन को निश्चित रूप से मोहरा बनाने की

योजनाएं बना चुका था। उसे यह बिल्कुल पसंद नहीं था कि विभावती को अपने ज्येष्ठजी से कोई सहानुभूति हो। वह अपनी डायरी लिखा करता था।

उसने उन दिनों अपनी डायरी में लिखा, "बहन अभी भी दूसरी पार्टी के पक्ष में ज्यादा झुकी हुई है।" उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बहन को अपनी ओर कैसे खींचे। वह न खिंची तो सारा किया-धरा मिट्टी में मिल जायेगा।

सत्येन्द्र बहन को अपने काबू में रखने के लिए चाहता था कि वह हवेली छोड़कर मां के पास रहने आ जाये। वह बार-बार यही वाक्य दोहराया करता था कि विधवा बनने के बाद वह अब हवेली में विभा के लिए क्या आकर्षण रह गया है। इसी बीच उसे नीलागोला क्षेत्र में अच्छा घर मिल गया, तो मां के साथ अपनी पत्नी को भी ले आया और कहने लगा, "हवेली के मनहूस वातावरण से निकलकर विभा को नीलागोला में रहना चाहिए। मां और भाभी उसका जी बहलाने का काम आसानी से कर सकती हैं।"

विभावती अक्सर अपनी मां से मिलने जाती, मगर वह ठहरती नहीं थी। कुछ समय बाद वापस लौट आती थी। ज्येष्ठजी हमेशा छोटे भाई की विधवा का पूरा ध्यान रखते। वह जब भी मां से मिलने जाती, तो दास-दासियां साथ में जातीं। अक्सर ज्येष्ठजी खुद ही उसे मैके (मां के पास) छोड़ने आते और वापस लेने भी पहुंच जाते। इस सब आदर-सत्कार से सत्येन्द्र को बड़ी चिढ़ होती थी। विभा के साथ आयी दासियों को वह जासूस कहा करता था। विभा पूछती थी, "हमारे पास ऐसा क्या है, जिसके लिए जासूसों को लगाना पड़े?"

सत्येन्द्र को एक बार मौका मिला, तो बहन की जेठानी सरयूबाला के कान भर दिये, "यह क्या बड़े राजकुमार और विभा के ज्येष्ठ को शोभा देता है कि छोटे भाई की पत्नी को अपने आप मां के पास छोड़ने जायें और फिर लेने भी जायें? सरयूबाला को क्या इतनी समझ भी नहीं है कि विभावती अपेक्षाकृत उससे ज्यादा जवान और ज्यादा खूबसूरत है। और राजकुमार रणेन्द्र के चरित्र को कौन नहीं जानता। रूपसियों का तो वह भंवरा है। वह क्यों अपने पांवों में कुल्हाड़ी मारने के लिए तैयार बैठी रहती है।"

ऐसी चिंगारियां छोड़ने का असर यह हुआ कि सरयूबाला और विभावती में तनातनी रहने लगी। सत्येन्द्र यही चाहता था। वह बहुत खुश हुआ और अपनी डायरी में लिखा-"शुभ लक्षण।"

फल यह हुआ कि विभावती अपनी मां और भाभी, भाई के पास जाकर रहने लगी। और भाई के पक्ष में मुख्तारनामा भी लिख कर दे दिया कि सम्पत्ति संबंधी तमाम काम उसके भाई सत्येन्द्र बनर्जी ही देखेंगे। विभावती को प्रति मास खर्च के लिए एक हजार एक सौ रुपए मिलने का प्रावधान था। सत्येन्द्र की खटपट करने का असर यह हुआ कि उसे सात हजार रुपए प्रतिमास मिलने लगे। इससे भाई का सिक्का जम गया।

उधर प्रारब्ध भी उसी के पक्ष में फैसले करता जा रहा था। बड़े राजकुमार रणेन्द्र भी बीमार रहने लगे और १८ सितम्बर १९१० को उनकी मृत्यु हो गयी। रियासत के नये मैनेजर नियुक्त हुए थे मिस्टर निडहम। सत्येन्द्र ने उससे भी घनिष्ठता बढ़ा ली थी। अनपढ़ रणेन्द्र की अपेक्षा अंग्रेजी बोलने-पढ़नेवाला वकील उसे आसानी से प्रभावित करता रहा था। सबसे छोटे भाई रवीन्द्र यूं ही अस्तित्वहीन-सा रहा करता था और बड़े भाई की मृत्यु के साल भर बाद उसकी भी मृत्यु हो गयी।

दोनों भाइयों की मृत्यु के बाद सत्येन्द्र के दोनों हाथों में लड्डू आ गये। प्रतिरोध करनेवाला कोई रहा ही नहीं था। ज्योतिर्मयी ऐसी परिस्थिति से विचलित रहा करती थीं। ऐसी अवस्था से बचने की एक मात्र उम्मीद उन्हें इस चमत्कार में दिखाई देने लगी थी कि उनका मझला भाई रमेन्द्र बारह वर्ष के अज्ञातवास के बाद भवाल वापस आ गया था। संन्यासी के स्पष्ट इनकार के बाद भी उनकी आशा छिन्न-भिन्न नहीं हुई थी।

हवेली से चले जाने के बाद उम्मीद थी कि संन्यासी अब शायद अड़ोस-पड़ोस में भी दिखाई नहीं देंगे। मगर वे वाकलैंड बांध के समीप अपने पुराने ठौर-ठिकाने पर आत्मचिंतन करते हुए विराजमान दिखाई देते रहे। आत्मचिंतन में वे इस दुविधा से लड़ते रहे कि उनके प्रति भवाल के लोगों में जो परस्पर विरोधी धारणाएं जम गयी थीं, उनमें किसी को मानें या नहीं। बार-बार उनकी अंतरात्मा उन्हें वहां से चल देने और कभी भी वापस न आने की प्रेरणा देती, परंतु दूसरे ही क्षण जिज्ञासा जाग उठती कि अपने आप ही जो प्रारब्ध गढ़ा गया है, उसको अपनी चरम सीमा तक पहुंचने दें। देखें कि भविष्य के गर्भ में क्या-क्या छिपा हुआ है। संन्यास का मार्ग तो उनके लिए हमेशा ही खुला रहेगा। अपने आपको निर्लिप्त रहने का औचित्य भी उनके पास हमेशा रहेगा। सभी तर्क उनके पक्ष में दिखाई देते रहे।

इसी बीच ज्योतिर्मयी ने उनसे एक भेंट और की। दर्शक भक्तों का मेला संन्यासी के सामने लगा ही रहता था। ज्योतिर्मयी अपने साथ दादी मां को भी ले गयी थीं, जिनके प्रथम दर्शन के बाद संन्यासी बाबा संवेदनशील हो गये थे। वे उनके सामने बैठती हुई बोलीं, "बाबा, आपने कहा था कि घर के सभी सदस्यों से आपका परिचय नहीं कराया गया। अभी विभावती भी आपके सामने नहीं आयी है। आप तो जनता का कल्याण करने के लिए अपने जीवन के सुखों की आहुति दे चुके हैं। संन्यासी के लिए यह तो जरूरी नहीं कि वह जंगलों में भटकता फिरे। जनकल्याण तो संन्यासी तभी कुछ कर पायेगा, जब वह लोगों के बीच रहे। इसलिए हमारा अनुरोध है कि आप हवेली के अतिथि कक्ष में रहें। आप की स्वतंत्रता पर कोई बंधन नहीं लगाया जायेगा। जो लोग आपके दर्शन करने या अपनी समस्याओं का समाधान कराने आपके पास आते हैं, वे हमारी ही प्रजा हैं। उन्हें आप तक पहुंचने में कोई रोक नहीं लगायेगा। पुनः भ्रमण करने के लिए आप जब भी जाना चाहेंगे, तो उस पर भी कोई रोकथाम नहीं होगी। वापस जब आना चाहें, द्वार हमेशा आपके लिए खुले रहेंगे।"

इस भेंट में संन्यासी का व्यवहार बदला हुआ नजर आया। उन्होंने अपने नेत्र बंद करके पहली बार बंगला भाषा में कहा, "जेटा ठाकुरेर इच्छा।" (जैसी प्रभु की इच्छा) इन शब्दों को सुनकर ज्योतिर्मयी की आंखें चमक उठीं।

राजघराने की महिलाओं को देखकर वहां की भीड़ और भी बड़ी हो गयी थी। किसी ने कहा, "बाबा, जब हम सब आपको ठीक-ठीक पहचान गये हैं, तो पूर्वाग्रह को अब क्यों समेटे हुए हैं?"

संन्यासी ने धीर-गंभीर स्वर में कहा, "शायद भगवान की यही इच्छा है। इसी लिए जब मैं भ्रमण करता हुआ यहां ढाका रेलवे स्टेशन पर उतरा, तो मुझे लगा था कि यह जगह शायद देखी हुई है। और मेरे कदम खुद-ब-खुद चलकर यहां ले आये थे।" उनकी भाषा का तर्ज उर्दू था। उच्चारण स्पष्ट थे। ज्योतिर्मयी उन उच्चारणों के प्रति अपने आप ही तर्क संतुष्ट कर चुकी थीं कि बारह वर्ष के लंबे अंतराल और संन्यासियों-तपस्वियों के लगातार संपर्क से उनकी भाषा ऐसी परायी हो गयी।

अब तक के रवैये से उनका यह नया रवैया बिलकुल बदला हुआ था। अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने स्वीकार कर लिया था कि कोई दैवी शक्ति उन्हें वहां खींच लायी थी और पुरानी याद को ताजा करा रही थी।

प्रश्नकर्ता ने उनसे पुनः पूछा, "अगर आपको याद आ रहा है, तो बताइये कि आप ही हमारे बिचले राजकुमार हैं। अगर नहीं हैं, तो स्पष्ट कीजिए। दार्जिलिंग में उनकी मृत्यु के बारे में जो अलग-अलग कहानियां कही गयी हैं, उनमें सही क्या है?"

"मुझे उस हादसे के बारे में कुछ भी स्पष्ट नहीं है। शायद किसी कारण सब कुछ विस्मृत हो गया है। कुछ नागा संन्यासियों ने मुझे बेहोशी की हालत में कहीं से उठाया और अपनी औषधियों और दैवी शक्ति की सहायता से होश में लाये। मगर मैं वहां जैसी हालत में मिला, उसके बारे में कुछ भी याद नहीं है।

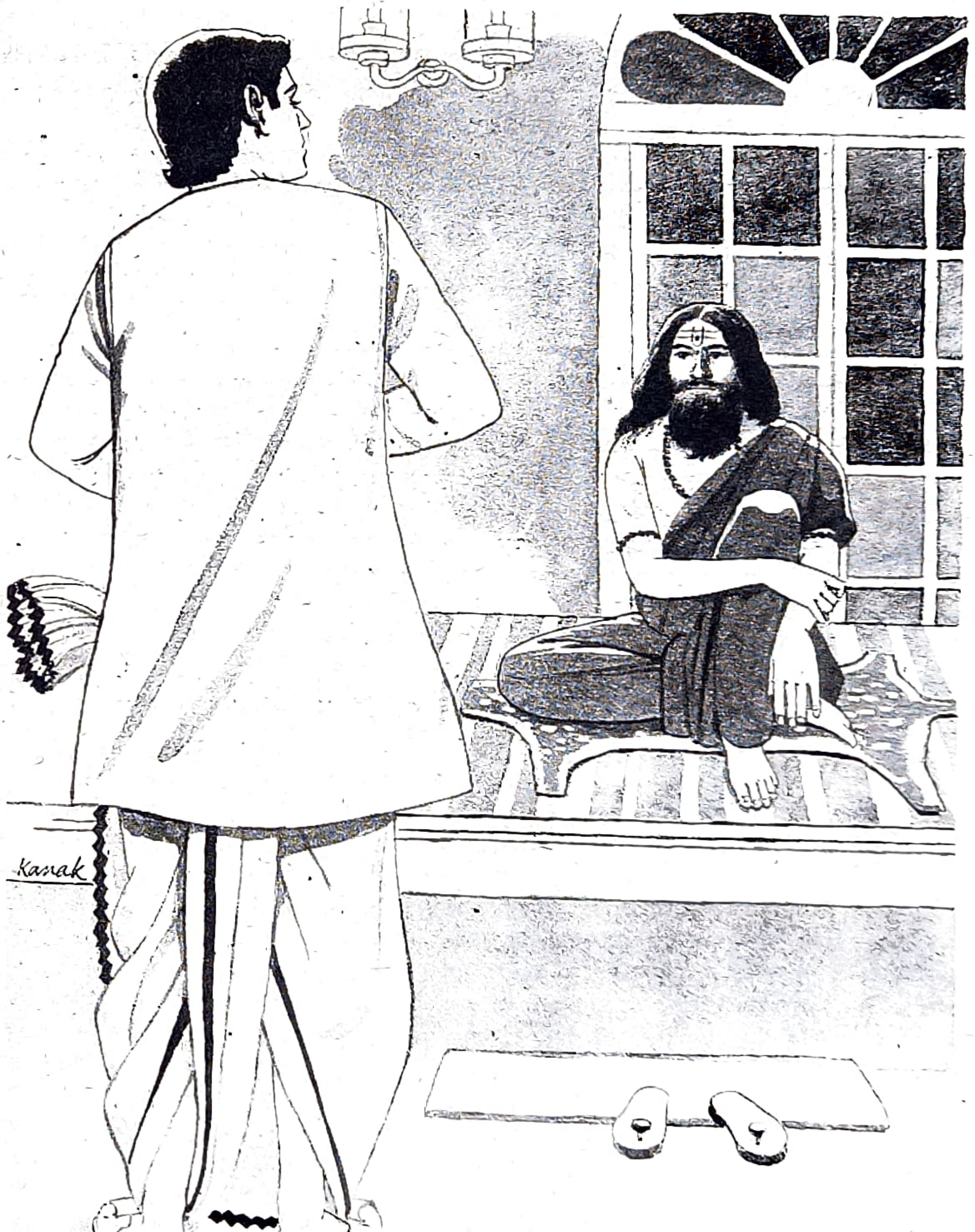
"संन्यासियों ने कहा था, 'समय पर सब कुछ याद आ जायेगा। इसके लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है।' मुझे यह भी पता नहीं कि मैं उन नागाओं में से कोई हूं, या वह हूं, जिसे आप लोग ढूंढ़ रहे हैं। मुझे यह भी याद नहीं कि मेरे हाथ पर जो गुरु का नाम

गोदा गया है, वह कब और कहां गोदा गया और क्यों गोदा गया। अन्य अनेक संन्यासी देखे हैं। उनमें से हर किसी के शरीर पर नाम गोदे हुए नहीं थे। इन गुरु से मिलने के लिए भी मैंने काफी भ्रमण किया है, जिनका नाम यहां गोदा गया है। मगर दुर्भाग्य से मुझे उनके दर्शन नहीं हो पाये। कोई भी भक्त मुझे गुरु के चरणों में नहीं पहुंचा पाया, जिससे मैं अपने अस्तित्व को पहचान पाता।

"यहां आने और आप लोगों से मिलने पर कुहासा कुछ-कुछ छंटता नजर आ रहा है। मुझसे अनजाने में कोई धृष्टता हो गयी हो, मैं अपने आपको किसी व्यक्ति से जोड़ने लगूं और बाद में पता चले कि वह जोड़-तोड़ गलत है, तो क्षमाप्रार्थी रहूंगा और भूल सुधारने के लिए हमेशा ही तैयार रहूंगा।"

संन्यासी का यह स्वागत-भाषण जैसा वक्तव्य सारगर्भित था। वहां जमा हुई भीड़ ने बीच-बीच में कई बार बाबा के नाम जय-जयकार किया। कई बार मझले कुमार के नाम जय-जयकार किया। ज्योतिर्मयी ने आग्रह किया कि वे उनके साथ गाड़ी में बैठकर चलें और हवेली का आतिथ्य स्वीकार करें।

उन्होंने कहा, "संन्यासी पैदल ही चलेगा और हवेली में पहुंचने के बाद भी राजसी सुविधाओं का उपयोग नहीं करेगा।" यह कहकर उन्होंने अपने बायें कच्ची मिट्टी में गाड़कर खड़े किये हुए चिमटे को खींचकर अपने हाथ में ले लिया। दूसरे हाथ में कमंडल उठाया और चल पड़े। ज्योतिर्मयी और साथ में आये सदस्यों ने भी उनके पीछे-पीछे पैदल ही चलना शुरू कर दिया। कोचवान गाड़ी को धीरे-धीरे चलाता हुआ सबसे पीछे चला। जय-जयकार के नारे लगते रहे। काफिला आगे बढ़ता रहा।



मार्ग में वह भवन आया, जहां विभावती अपनी मां के साथ आकर रहने लगी थीं। जय-जयकार के नारे सुनकर वह भी पहली मंजिल की खिड़की खोलकर झांकने लगी। ज्योतिर्मयी लपककर संन्यासी के समीप आयीं और कहा, "वह देखिए, हमारे परिवार की मझली बहू विभावती।" संन्यासी ने नजरें उठाकर उन्हें गौर से देखा, मगर अपनी चाल की गति में कोई फर्क नहीं आने दिया।

संन्यासी के जयदेवपुर में आने के दिन से ही सत्येन्द्र बनर्जी को सूचनाएं मिलती रही थीं और जब उसने सुना कि लोग उन्हें रमेन्द्र के रूप में पहचान रहे हैं, तो उसे आश्चर्य के साथ परेशानी भी हुई। रमेन्द्र की अंत्येष्टि के समय वह वहीं था। अंत्येष्टि के समय की जो तरह-तरह की कहानियां अफवाह बनी थीं, उनके रचयिताओं में वह भी एक था। और जब लोग संन्यासी से पूछते कि अंत्येष्टि के रहस्य को खोलकर स्पष्ट कर दें, तो उसे घबराहट होती थी।

हालांकि उसे संन्यासियों के ऐसे दिव्य ज्ञान में कतई विश्वास नहीं था कि वह रहस्योद्घाटन कर सकेंगे। मगर उसे डर यह था कि उसकी बहन विभावती को समूचे रहस्य के बारे में मालूम है। अगर वह संन्यासी के प्रभाव में आ गयी, तो बंटाधार हो जायेगा। विभावती अस्पष्ट शब्दों में कई बार भाई को अपने पति की मृत्यु को लेकर अपराधी के कठघरे में खड़ा कर चुकी थी। अब क्योंकि पति नहीं बचा था, इसलिए भाई से भी बिगाड़ना नहीं चाहती थी। परंतु सत्येन्द्र को लगातार यह भय बना ही हुआ था कि परिस्थिति कभी भी बदल सकती थी और ये संन्यासी परिस्थिति बदलने के आसार तैयार कर सकता

था।

और परिस्थिति बदल रही थी। संन्यासी को हवेली में ही ठहराने की व्यवस्था कर दी गयी थी। सत्येन्द्र की घबराहट बढ़ने लगी। उसने आम जनता में यह विश्वास फैलाने की कोशिश की कि यह संन्यासी ढोंगी है। रमेन्द्र की मृत्यु के समय मेरे अलावा डाक्टर आशु, नौकर मुकुन्द, हिसाब-किताब रखने के लिए क्लर्क वीरेन वंद्योपाध्याय, एक दर्जी, आफिस कार्यालय से सी०जे० फ्रेबल, एंटोनी मोरेल, खानसामों के दल में जलधर, यामिनी, अखिल, प्रसन्न, विपिन, अर्दली शरीफ खां, गोरखा गार्ड धनमन सिंह, जीतलाल, झगरी बैरा भी मौजूद थे। सबके सामने मझले कुमार का दाह-संस्कार किया गया था। मरनेवाला व्यक्ति कोई कुबड़ा या मजदूर श्रेणी का व्यक्ति नहीं था कि उसे अर्थी पर लेटाकर इतने सारे लोग इसलिए भाग खड़े हुए कि वहां बारिश और तूफान आ गया था।

वे सब के सब बीमार पड़कर भले ही मर जाते, मगर शव को लावारिस छोड़कर भाग नहीं सकते थे। इसलिए ये सब झूठी कहानियां हैं कि शव गायब हो गया था। उस समय न तो वर्षा हुई थी, न आंधी आयी थी। चिता की भस्म और अस्थियां भी एकत्र करके शेष संस्कारों के लिए जयदेवपुर हवेली में लायी गयी थीं। और अब यह संन्यासी धोखे का जाल फैलाकर खुद को मझला कुमार कहता फिर रहा है। कौन नहीं जानता कि भवाल परिवार में कोई पुरुष सदस्य जिंदा नहीं बचा है और रियासत की अपार संपत्ति कोर्ट आफ वार्ड्स के हाथों संभाली जा रही है। ऐसे में कोई ऐरा-गैरा नत्थू खैरा आकर अपना उल्टा-सीधा हक जमाने लगे, तो मान लिया जायेगा? परलोकवासी रमेन्द्र की पत्नी मौजूद है। वह तक उस छद्मवेशी को पहचानने से इनकार कर चुकी है और जनता इतनी पागल हो गयी है कि सबके बहिष्कार के बावजूद कहे जा रही है कि यह व्यक्ति ही रमेन्द्र है। ज्योतिर्मयी ही अकेली हैं, जो अपने भाई को पहचान रही हैं।

ऐसे संदेह के वातावरण में लोगों के खयाल बदलने में देर नहीं लगती। हवेली में संन्यासी बाबा के आ जाने के बाद से भरपूर भीड़ उनको देखने के लिए जमा हो गयी। एक व्यक्ति ने कहा, "आपको दार्जिलिंग में जहां रखा गया था, उस जगह का जरा नक्शा बतायेंगे?"

"देखो भाई," संन्यासी ने शांति से कहा, "अगर आपको कोई संदेह है, तो उसका निवारण मुझसे ही मत कराइये, क्योंकि अगर मैं झूठा हूं, तो बोलकर अपने आपको सही सिद्ध करने की कोशिश करूंगा। मैं सबके सामने खुले आम कह चुका हूं कि मुझे न दार्जिलिंग के समय की याद है, न मझले कुमार के अंतिम क्षणों की। मुझे कुछ नागाओं ने बेहोशी से होश में लाकर नया जीवन दिया था। उससे पहले का मुझे कुछ भी याद नहीं है। स्मृति विलुप्त हो जाना कोई नई बात नहीं है। अतीत में बहुत से लोगों के साथ ऐसा हो चुका है।"

"तो जब सब कुछ विस्मृत हो गया, तो भवाल परिवार के लोगों को कैसे पहचानने लगे?"

"याद कराया तो याद आने लगा।"

"आपको अपने माता-पिता के नाम याद हैं?"

"माता रानी विलासमणि और पिता राजा राजेन्द्र नारायण राय।"

"ये तो खैर आप जब से यहां आये हैं, अनेक लोगों से सुन चुके होंगे। भवाल परिवार की धाय मां का नाम बताइये, जो सब भाई-बहनों को पाल चुकी हैं।"

"धाय मां का नाम अलका।"

यह सुनना था कि वहां मौजूद भीड़ ने एक स्वर में 'मझले कुमार की जय' का नारा लगा दिया। प्रश्नकर्ता की अब हिम्मत नहीं हुई कि कुछ और पूछ सकता।

अगले दिन ज्योतिर्मयी ने अतिथि कक्ष में आकर कहा, "स्वामी जी, मेरे सामने छोटी-सी दुविधा खड़ी हो गयी है कि अब मैं आपको भइया रमेन्द्र के नाम से पुकारूं, जैसे पहले पुकारा करती थी, या स्वामीजी ही कहती रहूं, जैसे अब तक कहती रही हूं।"

"हमारा नाम हमसे ही पूछ रही हो? तुमने सबसे बड़ा काम तो यह किया कि घर के सब सदस्यों का परिचय पहले ही करा दिया था, वरना न जाने मैं कहां-कहां गड़बड़ा जाता तथा लोगों का संदेह और भी गहरा हो जाता। मुझे अपने आपको पुराने सांचे में ढालने में समय लगेगा। इसलिए बार-बार गलती करता जाऊंगा कि तुम सबको कैसे पुकारूं। मगर तुम तो आजाद हो, जैसे चाहो, पुकारो। मैं अपने कानों को वैसा ही सुनने का अभ्यस्त बनाने की कोशिश करूंगा। बंगला बोलने की आदत छूट चुकी है। उसका अभ्यास करने में भी देर लगेगी। उस देरी को सहने का तुम्हें भी अभ्यास करना पड़ेगा।"

"मैं तो बंगला का अभ्यास कराने में भी मदद करती रहूंगी। अब एक और प्रार्थना है, जब पुराने सांचे में ढलने की बात आयी है, तो कृपया स्नान के बाद भस्म लगाना भी छोड़कर देखिये।" ज्योतिर्मयी ने कहा, तो स्वामी जी के होठों पर मुस्कराहट खेल गयी, "यानी मेरे बदन पर उन चिह्नों को पहचानना चाहती हो, जो रमेन्द्र के बदन पर थे।"

ज्योतिर्मयी आश्चर्य से हंसकर रह गयीं, "आप तो अंतर्यामी हो। सचमुच मेरे मन की बात पढ़ ली।"

आखिर भभूत स्नान की दैनिक क्रिया स्थगित हो गयी और स्वामीजी के दर्शन करने के बहाने सत्येन्द्र भी हवेली में पधारे और ज्योतिर्मयी से कहा, "मैंने बहुत प्रयास किया कि बिभा आये, जब आप सब पूर्ण रूपेण आश्वस्त हो गयीं, तो वह भी हो ले। मगर वह राजी नहीं हुई। एक तरफ एक संन्यासी गृहस्थी में लौटने लगा है, तो दूसरी तरफ एक गृहस्थिन संन्यास में पहुंचती जा रही है।"

सत्येन्द्र का हवेली में आना किसी को भी अच्छा नहीं लगा। जब वह अतिथि कक्ष में गया, तो महिलाएं परम्परागत शैली में चिक के पीछे ही रहीं। मगर कान उधर ही लगाये रहीं कि स्वामी और सत्येन्द्र में बातें क्या होती हैं। सत्येन्द्र ने लोक-दिखावे के लिए स्वामी को प्रणाम किया और पास बैठते हुए कहा, "तो आखिर आपने फैसला कर ही लिया और आपने हवेली की महिलाओं को भी पहचान लिया। मगर आपका परम मित्र अतुल, जिससे आपका कुछ भी गोपनीय नहीं था, वह न तो आपको पहचान पाया, न आप उसे पहचान पाये। ये कैसे हो गया?"

"मित्र और संबंधी सही मायने में वह याद रखा जाता है, जो हृदय से शुभाकांक्षी हो। स्वार्थी और ऐबों में घसीटनेवाले मित्र को भुला ही दिया जाता है।"

"आप सच्चाई पर परदा डाल रहे हैं।"

"हम नंगी सच्चाई को खोलकर कहेंगे, तो," स्वामी ने बिलकुल शांत स्वर में कहा, "बहुतों को बहुत-सा कष्ट होगा।" यह कहते हुए सत्येन्द्र की आंखों में अपनी आंखें इस तरह डाल दीं कि वह घबरा गया। फिर वे अपनी आवाज को बिलकुल हल्की करके बोले, "डाक्टर आशुतोष और आपको भी अपने आपको पहचान लेना चाहिए।"

सत्येन्द्र समझ गया कि संन्यासी तीक्ष्ण बुद्धिवाला व्यक्ति है और उसने बहुत-सी जानकारियां इकट्ठी कर ली हैं। उससे उलझना आसान नहीं है। इसलिए वहां से उठ तो आया, मगर गहन विचार में डूबा रहा कि इस भयंकर खतरे से कैसे जूझा जाये। उस रात उसे नींद भी नहीं आयी। परेशानी में करवटें बदलता रहा।

भवाल परिवार में जो कुछ हो रहा था, या होता रहा है, उसकी तमाम सूचनाएं सत्येन्द्र को मिलती रहती थीं। उसे सूचना मिली कि संन्यासी को उत्तम उबटनों से स्नान कराया गया और जब अंगवस्त्र को बिना ओढ़े ही बाहर आये, तो बुद्धू ने उनके संपूर्ण अंगों पर निरीक्षकों जैसी नजर घुमाकर मां ज्योतिर्मयी को बताया कि उनकी टांगों पर एक-दो नहीं, असंख्य निशान हैं। कई जगह चोटें लगीं हैं। कई जगह जीव-जन्तुओं के काटने के बाद उपचार के निशान हैं।

जब स्वामी जी को भोजन कराने का समय आया, तो रसोई घर की ब्राह्मणी थाली लगाकर लायी। ज्योतिर्मयी ने उसके हाथ से थाली लेकर खुद स्वामी के सामने रखी और धीरे से बोलीं, "स्वामी भइया, आपने कैसा कष्टमय जीवन बिताया है, उसका अनुमान तन पर पड़े निशानों से लगाया जा सकता है। कितनी जगह त्वचा कट-फटकर जुड़ी है। कितनी जगह कांटों ने छीला है। कितनी जगह कीड़ों-मकोड़ों ने काटा है। उन सब जख्मों के निशान में वह निशान भी खो-सा गया है, जो गाड़ी का पहिया टांग पर उतर जाने से लग गया था। भला क्या मिला अपने शरीर को

इतना कष्ट देकर? कौन सा जन-कल्याण सम्पन्न हो गया उन कष्टों को उठाने से? क्या मिला अपने आपसे भागकर?"

स्वामी खामोश रहे। थाली पर जल-परिक्रमा करके भगवान को स्मरण किया और इस तरह बोले, जैसे अपने आप से ही कुछ कह रहे हों, "कष्ट सहकर ही संन्यास में निखार आता है। ये निशान हमारी तपस्या के तमगे हैं। उस जीवन में जो कष्ट हुए, वो तो हमें महसूस भी नहीं हुए। कष्ट तो अब इस संसारी जीवन में उससे कहीं गम्भीर होंगे।"

रियासत भर में यह खबर तो पहले ही हर किसी को हो चुकी थी कि बांध के पास धूनी लगानेवाला संन्यासी वर्षों पहले खोया हुआ कुमार रमेन्द्र ही है। अब जब संन्यासी का निवास ही राजपरिसर में हो गया, तो हर किसी को पूर्ण विश्वास हो गया कि कुमार ने अपना संन्यासी चोला उतारकर परिवार के साथ रहना स्वीकार कर लिया है। उस समय की भोली जनता अपने राजा और राजपरिवार को भगवान की तरह मानती और पूजती थी। उन्हें खुशी थी कि बरबाद हुआ परिवार अब संभल-संवर जायेगा। कोर्ट आफ वार्ड्स जैसे पराये हाथों में निकल गयी समूची रियासत परिवार के हाथों में पहुंच जायेगी। इसलिए दूर-दराज से लोगों ने संन्यासी बने मझले कुमार के दर्शनों के लिए पूरे जोश के साथ आना शुरू कर दिया। रियासत भर में जो संस्थाएं राज्य शुल्क से चलायी जा रही थीं, उनमें सभाएं हुई और लोगों ने अपने आप ही ऐसे फैसले कर डाले कि अब चुंगी-महसूल, घरों के किराये, सब मझले कुमार को देने चाहिए, न कि कोर्ट आफ वार्ड्स को। सिर्फ चुंगी-महसूल ही नहीं, उन्होंने अपनी ओर से भी अतिरिक्त चंदे इकट्ठे करने शुरू कर दिये, ताकि मझले कुमार रियासत के खस्ता हाल को सुधारने के लिए भी कुछ कर सकें। इस तरह चंदा इकट्ठा करना विचित्र था। मगर उसमें अपने राजा के प्रति सहानुभूति और श्रद्धा समायी हुई दृष्टिगोचर होती थी।

परिवार के सदस्यों और मुंशी कारकुनों वगैरह ने राय करके प्रजा की भेंट स्वीकार करना शुरू कर दिया। रसीदें भी देनी शुरू कर दीं।

सत्येन्द्र बनर्जी को सब कुछ अपने हाथ से खिसकता नजर आने लगा। सम्पत्ति के मैनेजर निडहम और अन्य अधिकारियों से मेलजोल बढ़ाने का काम वह करता ही आ रहा था। अब उनके कान भरने शुरू कर दिये। उन्होंने भी तत्काल इस नई हलचल को रोकने के लिए ढोल-ढपली पिटवाकर मुनादी करवा दी कि भवाल रियासत के तमाम किरायेदारों को सूचित किया जाता है कि टैक्स, चुंगी, किराया वसूल



जब संन्यासी का निवास ही राजपरिसर में हो गया, तो हर किसी को पूर्ण विश्वास हो गया कि कुमार ने अपना संन्यासी चोला उतारकर परिवार के साथ रहना स्वीकार कर लिया है।

करनेवाले अधिकारियों को सबूतों के आधार पर पूरा विश्वास हो गया है कि भवाल के मझले कुमार की बारह वर्ष पहले मृत्यु हो चुकी है। उनके पार्थिव शरीर को दार्जिलिंग में अग्नि को समर्पित कर दिया गया था। इसलिए अब जो व्यक्ति अपने को मझला कुमार रमेन्द्र नारायण बता रहा है, वह छद्मवेशी धोखेबाज है। जो कोई भी उस व्यक्ति को सरकारी चुंगी, किराया इत्यादि की रकम देगा, उसका जिम्मेदार वह खुद रहेगा। सरकार उसे स्वीकार नहीं करेगी।

बोर्ड आफ रेवेन्यू के आदेशानुसार
जे०एच० लिंडसे
(कलेक्टर ढाका) तारीख
३/६/१६२१

इन्हीं वाक्यों की नोटिस समाचार-पत्रों में भी छपवाया गया। खूब हंगामा हुआ। स्थिति की स्पष्ट तस्वीर देखने के लिए लोग बड़े-बड़े दल बनाकर भवाल हवेली में पहुंचने लगे और अपने लिए मार्गदर्शन मांगने लगे। कहीं उनको डबल चपत तो नहीं पड़ेगी। परिवार के सदस्यों का मुख्य प्रवक्ता बुद्धू था। उसके माध्यम से लोगों की शंका का समाधान करने की कोशिश की गयी कि धनराशि लाने और यहां जमा कराने का निर्णय प्रजा ने स्वयं किया था, इसलिए उन्हें घबराने की कोई जरूरत नहीं है। अगर लिंडसे कोई फरमान जारी करता है, तो तमाम रकम सरकारी खजाने में जमा कर दी जायेगी, उन्हीं के नाम से, जिन्होंने दी है, ताकि उन्हें दोबारा से भरपायी न करनी पड़े। भवाल परिवार प्रजा के साथ है। उन्हें कोई कष्ट नहीं उठाने दिया जायेगा।

ढिंढोरा पिटवाने और नोटिस प्रकाशित करवाने से ही लिंडसे को तसल्ली नहीं हुई। कुछ सरकारी अधिकारियों को संन्यासी बनाम रमेन्द्र नारायण से मिलने भेजा कि छानबीन करके उसे छद्मवेशी साबित करें।

तीन अधिकारियों का दल संन्यासी से मिलने पहुंचा, जिसमें एक पुलिस इंसपेक्टर भी था। सत्येन्द्र बनर्जी ने उन्हें ऐसे सवाल तैयार करके दिये, जिनका जवाब ऐसा कोई भी आदमी नहीं दे सकता था, जो रमेन्द्र के अंतकाल में वहां मौजूद नहीं रहा हो। सरकारी अधिकारियों को आया देखकर वहां खासी भीड़ लग गयी कि उन्हें जो कुछ भी पूछना हो, तमाम जनता के सामने पूछें। अधिकारी इस बात के लिए भी तैयार हो गये।

दल के वरिष्ठतम अधिकारी ने संन्यासी से पूछा, "जिन दिनों दार्जिलिंग में आप बीमार हो कर पहुंचे थे, तब नगर की कुछ खास-खास जगहों की सैर भी की होगी। सड़कों और भवनों को देखा होगा। उनके बारे में बताइये।"

संन्यासी सावधान होकर बैठ गये। शांत मुद्रा में बोले, "देश के जितने पहाड़ी पर्यटन स्थल हैं, शिमला, मसूरी, मनाली, उन जैसा ही दार्जिलिंग था। खास अलग से बताने के लिए कंचनजंगा की सुनहरी चोटियां थीं।"

"ये तो भूगोल के छठी कक्षा के छात्र जैसा जवाब हुआ। स्टेप एसाइड भवन के बारे में बतायें।"

"अगर मुझे अंदाज होता कि कभी मुझे इस तरह के सवालों के जवाब देने होंगे, तो मैं पहले से ही हर चीज को खूब ध्यान से देखकर याद कर लेता। खिड़की-दरवाजे कितने थे, कितनी सीढ़ियां चढ़कर भवन में प्रवेश किया जाता था, वगैरह-वगैरह।"

"अच्छा, सुनने में आया है कि जब कुमार रमेन्द्र की तबीयत ज्यादा खराब हुई, तो वहां भवन के कार्निस पर एक अशुभ पक्षी आ बैठा था। उसकी आवाज ने वातावरण को भयानक बना दिया, तो उसे वहां से हटाने के लिए किसी ने बंदूक से उसे मार डाला था। वह गोली किसने चलायी थी?"

"जाहिर है कि मेरे अंगरक्षक हरि सिंह ने चलायी थी।" संन्यासी को ज्योतिर्मयी का बताया विवरण याद था।

"गलत, यहीं आपकी असलियत का पता चल गया। गोली वीरेन्द्र बनर्जी ने चलायी थी। हमें ऐसा बताया गया है। कहिए तो हम उन्हें ही बुलवाये लेते हैं।"

"अब इस बात का सबूत कौन पेश करेगा कि वे जो कहेंगे, सही होगा। आपके सिखाये, पट्टी पढ़ाये भी हो सकते हैं।"

"किसी को सिखाने और पट्टी पढ़ाने से सरकार को लाभ नहीं होगा। हम सिर्फ सच्चाई का पता लगाने आये हैं।" कहकर उन्होंने तत्काल डा० आशुतोष दासगुप्ता, सत्येन्द्र बनर्जी और वीरेन्द्र को बुलवा भेजा। वीरेन्द्र ने स्पष्ट कह दिया, "मुझे तो बंदूक पकड़नी भी नहीं आती। गोली वाकई हरि सिंह ने ही चलायी थी।"

सरकारी अधिकारियों की इस अप्रत्याशित भेंट से मामला एकदम गंभीर हो गया। स्पष्ट हो गया कि वे लोग और भी बखेड़ा खड़ा करेंगे। इसलिए भवाल परिवार के उन

सदस्यों में मंत्रणा हुई, जो सौ प्रतिशत यह मान चुके थे कि स्वामी भइया ही रमेन्द्र नारायण हैं। ज्योतिर्मयी ही अब तक के नाटक की सूत्रधार रही थीं। एकमत राय हुई कि कलेक्टर लिंडसे महोदय से तत्काल मुलाकात की जाये। उन्हें बताया जाये कि जनता का व्यापक समर्थन उन्हें मिल चुका है। इसलिए वे भी मान्यता प्रदान कर दें।

स्वामी भइया ने भी दृढ़ता से कहा कि अब उनके कदम जिस दिशा में बढ़ गये हैं, वहां से वापस नहीं लौटेंगे। जंग छिड़ गयी है, तो जीत कर ही दिखाना है।

वे अपनी कमर कस कर कलेक्टर से मिलने गये। अकेले नहीं, उनके साथ भवाल रियासत के पुराने कर्मचारी और कानूनी सलाहकार भी गये, जिन्हें दुभाषिये का काम भी करना था।

कलेक्टर लिंडसे के सामने मझले कुमार रमेन्द्र का एक फोटो रखकर स्वामी भइया ने कहा, "साधारण जनता भी हमसे बगैर जिरह किये मान चुकी है कि कुमार का यह फोटो मेरा ही है, जो कोई पन्द्रह-सोलह वर्ष पुराना है। मुझमें और इस फोटो में फर्क देखनेवाले मात्र आप अकेले हो सकते हैं, जबकि संपूर्ण जनता को कोई फर्क दिखायी नहीं पड़ता। इसलिए आप अपनी नोटिस वापस लीजिए, जिसे समाचार-पत्रों में छपवाया गया है। और हमें मान्यता प्रदान कीजिए कि हम ही कुमार रमेन्द्र नारायण राय हैं।"

"यह सरासर झूठ है", कलेक्टर ने कहा, "रियासत के मैनेजर ने हमको पहले ही रिपोर्ट भेज दी है। आप राजकुमार का ढोंग रच रहे हैं। हमारे पास और भी ढेर सारे सबूत हैं। आपका दावा बिलकुल झूठा है। सरकारी अफसर भी आपसे मिल चुके हैं।"

"आप जिस मैनेजर की रिपोर्ट का हवाला दे रहे हैं, वह पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। मुझे पहचानने के लिए सरकारी अफसरों का दल भी आया था। उन्हें ऐसे सवालों से लैस करके भेजा गया था, जिनका जवाब मात्र रमेन्द्र ही दे सकता था, क्योंकि वे बातें सिर्फ उसे ही मालूम थीं। सवाल-जवाब जनसमूह के सामने हुए थे। एक अफसर ने पूछा, "जब आप दार्जिलिंग में अस्वस्थ थे, तो एक अशुभ पक्षी ने 'स्टेप एसाइड' भवन के कार्निस पर बैठ कर हूकना शुरू कर दिया था। उससे उत्तेजित होकर उसे गोली मार दी गयी थी। वह गोली किसने मारी थी? मैंने पूरे विश्वास के साथ बताया था कि गोली अंगरक्षक हरि सिंह ने मारी थी। मुझ पर संदेह करनेवालों ने कहा कि यह गलत है। भवाल परिवार के डाक्टर आशुतोष उस समय वहां मौजूद थे। उन्होंने बताया था कि गोली वीरेन्द्र बनर्जी ने चलायी थी। जब वीरेन्द्र बनर्जी को बुलाया गया, तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उन्हें तो बंदूक पकड़ना भी नहीं आता, चलाना तो दूर की बात थी।"

"ऐसे सबूत में कोई दम नहीं होता। आपने सुन लिया होगा इस हादसे के बारे में, इसलिए बता दिया। मगर आप दार्जिलिंग और स्टेप एसाइड के बारे में कुछ भी नहीं बता सके थे कि वहां का नक्शा कैसा था, स्टेप एसाइड का आर्किटेक्चर कैसा था या दीवारें किस रंग की थीं?"

"इसका भी जवाब देकर मैं आपके भेजे अधिकारियों को चुप करा चुका हूं।"

"उन्हें चुप कराने से आप सही तो नहीं हो गये। दार्जिलिंग के अंग्रेज सिविल सर्जन ने कुमार रमेन्द्र की मृत्यु का प्रमाण-पत्र लिखकर दिया था, तो क्या हमारा अंग्रेज डाक्टर भी गलत था। आप जाइये, हमारा वक्त खराब मत कीजिए।" कहकर लिंडसे उठकर खड़ा हुआ था।

स्वामी भइया मुंह की खाकर लौट आये। उनके साथ गये लोगों ने सवाल पूछने वालों को साफ बता दिया कि कलेक्टर महोदय ने मान्यता नहीं दी।

—क्रमशः

(छाया : माडेलिंग। चित्रांकन चित्रकार की कल्पना से)

कोड़ा, घोड़ा और जोड़ा

कभी वर को दुर्लभ यानी कठिनता से मिलनेवाला कहा जाता था। 'दुर्लभ' शब्द से ही दूल्हा बना है। आज भी वर सरलता से नहीं मिलते, पर कभी वधू भी दुर्लभा थी। उसके लिए स्वयंवर में लाइन लगानी पड़ती थी। कन्या को आजादी थी, वह उनमें से जिसे चाहे, चुन ले। आज भी कहीं-कहीं पत्नी पाने के लिए उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। दाम न हों तो ससुर के घर 'लमसेना' या घर-जमाई बनकर काम करना पड़ता है।

ऐसी ही एक प्रथा वधू-दौड़ थी। किरगीज कबीले में बिना वधू-दौड़ के विवाह ही नहीं होता। इसे 'प्रेम-खदेड़' भी कहते थे। इस प्रथा में कन्या कोड़ा लेकर, एक घोड़े पर सवार हो जाती थी। शादी के उम्मीदवार भी घोड़े पर सवार होकर उसका पीछा करते थे। जो भी इच्छुक पीछा कर, कन्या को पकड़ लेता था, उससे उसका विवाह तय हो जाता था। उस सुन्दरी को यह अधिकार भी था कि वह अनचाहे को अपनी कोड़ों की मार से जरा दूर ही रखे। जो उसे पसन्द आ जाता था, उसके पास आते ही वह कोड़ा एक खास तरह से झुलाने लगती थी। इतना इशारा काफी रहता। वर महाशय घोड़े की लगाम खींचकर खामोशी से खड़े हो जाते थे। फिर विवाह की तैयारी चलने लगती थी।

यह प्रथा उत्तर-पूर्व एशिया के कोयांक कबीले में भी थी। कोयांक लोगों में यह दौड़, घोड़े पर न होकर एक खेमे में, घेरे में होती थी। बाधा-दौड़ के समान उस घेरे में कई घेरे बना दिये जाते थे। उन्हें 'पोलोग' कहा जाता था। हर बाधा-घेरे के पास सुन्दरियां कमाचियां या बेंत लेकर दौड़नेवालों पर वार करती थीं। वधू तो सीधे रास्ते दौड़ती थी। सारी बाधाएं बस दूल्हों के लिए ही रहतीं। उन्हें बाधाओं से होकर गुजरने के अलावा सुन्दरियों की कमाचियां भी सहनी पड़ती थीं। अब यह बात दूसरी है, जिसे कन्या पसन्द कर लेती, उसे अपने को छू लेने देती। —डा० शिवनंदन

हिन्दुस्तान के उत्तर भाग में स्थित बारामूला कंजलवन सामरिक दृष्टिकोण से अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। पाकिस्तान एवं चीन की सीमाएं यहां से सन्निकट हैं। तीनों देश के फौजी एक-दूसरे को आसानी से देखते रहते हैं। आकाश के सीने को भेदते शैल शिखर, बड़े-बड़े घने दरख्त, आंखों को पथरा देनेवाली संकरी दुर्गम घाटियां और साल में आठ महीने बर्फ से घिरे बारामूला की अपनी विशेषताएं हैं।

समुद्रतल से लगभग दस हजार फुट की ऊंचाई पर बसे बारामूला में ग्रीष्म ऋतु के दौरान सूरज की सीधी किरणें यहां के हिमशिखरों को छूती हैं, तो वे शीशे की भांति चमकने लगते हैं। 'बारामूला कंजलवन' में इसी मौसम में बरसात भी होती है। बादल बरसते हैं, फिर बर्फ जमती है, यह प्रक्रिया चलती रहती है। यहां दूर-दूर छोटे-छोटे गांव हैं। गांव में भी एक घर किसी पहाड़ी टीले पर है, तो दूसरा किसी दूसरे पर स्थित है। इसी का लाभ उठाकर पाकिस्तान की कुख्यात खुफिया एजेंसी आईएसआई ने कश्मीर की इस घाटी में आतंकवाद को बढ़ावा देने के लिए आतंकवादी प्रशिक्षण शिविर शुरू किये थे। स्थानीय युवकों को गुमराह करके इन प्रशिक्षण शिविरों में उन्हें उग्रवाद की विधिवत ट्रेनिंग दी जाती थी। प्रशिक्षण प्राप्त करके ये गुमराह नौजवान उस इलाके में न सिर्फ जबरन वसूली, हत्या, डकैती एवं कुकर्म सरीखे जघन्य अपराध करते थे, बल्कि मौका-बे-मौका गोलीबारी तथा बम-विस्फोट करके भारतीय सेना को चुनौती देते थे। इस क्षेत्र से आतंकवाद को नेस्तनाबूद करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी मेजर आशुतोष कुमार को। उनकी इस फौजी कार्रवाई को नाम दिया गया था—'ऑपरेशन थण्डरबॉल'।

मेजर आशुतोष कुमार इस सच से वाकिफ थे कि युद्ध जैसे माहौल में प्राण सुरक्षित नहीं है। उन्हें पता था कि सामने से लड़ाई लड़नेवालों से घात लगाकर वार करनेवाले ज्यादा खतरनाक होते हैं। उस वक्त तो और भी ज्यादा, जब वे आम आदमियों में घुले-मिले हों। आशुतोष को चिंता अपनी जान की नहीं, उस फर्ज की थी, जिसके निर्वाह के लिए उन्हें वहां नियुक्त किया गया था।

बहरहाल, 'ऑपरेशन थण्डरबॉल' का वह दस्ता मेजर आशुतोष कुमार के नेतृत्व में बर्फ के दरिया के बीच से होते हुए कदम बढ़ा रहा था। आशुतोष कुमार जांबाज अफसर थे। बर्फ पर चलने, दौड़ने और छापामार लड़ाई का तो उन्होंने विशेष प्रशिक्षण लिया ही था, साथ ही युद्ध-कौशल में भी उन्हें महारत हासिल थी। नाजुक घड़ी में शत्रुओं से कैसे निपटा जाता है, यह उन्हें बखूबी मालूम था।

पहाड़ी चट्टानों और खतरनाक घुमावदार घाटियों के मध्य से गुजरते हुए यह काफिला तकरीबन डेढ़-दो किलोमीटर का फासला तय करके एक वीरान स्थान पर पहुंचा, जहां ओवरब्रिज जैसी कच्ची सड़क थी। पुल के इस छोर पर खड़ा आदमी यह नहीं देख सकता था कि उस पार क्या हो रहा है, ठीक यही स्थिति दूसरी तरफ की थी।

ओवरब्रिज क्रॉस करके सैन्य दुकड़ी मुश्किल से दस गज चली थी, कि खण्डहर के एक ढांचे पर मेजर आशुतोष कुमार की नजर पड़ी। वहां पांच फुट ऊंची दीवार थी, जो जगह-जगह टूटी थी। देखने में यह सब किसी पहाड़ी गुफा के समान लगता था। वहां फौजी पलटन, मेजर के इशारे पर रुक गयी। आशुतोष कुमार स्थिति का जायजा लेने लगे। अपनी दुकड़ी से उन्होंने कहा, संभव है, आतंकवादी इसी में छुपे हों। उनकी यह आशंका क्षणभर में ही हकीकत में तब्दील हो गयी, जब दो-चार पदचिह्नों पर उनकी निगाह टिक गयी। पांव के निशान सीधे उस खंडहर तक जा रहे थे। मेजर कुमार को पक्का विश्वास हो गया कि इसी जगह वह आतंकवादी प्रशिक्षण शिविर है। अब अहम सवाल यह था कि उन्हें घेरा जाये कैसे? उनके पास मारक हथियारों का जखीरा होगा, यह सैनिकों को मालूम था। इसके अतिरिक्त खंडहर का बाहर से निरीक्षण करने के उपरान्त मेजर आशुतोष कुमार यह आसानी से समझ गये कि वहां से गोलीबारी करने से कोई लाभ नहीं है। आतंकवादियों से जूझना है तो खंडहर के अंदर प्रवेश करना ही होगा।

मेजर आशुतोष कुमार ने भीतर घुसने की रणनीति तैयार करके अपने साथियों को निर्देश दिया कि उनमें से कुछ लोग दीवार के नजदीक पोजीशन ले लें। दो-चार जवान दरख्त की ओट में मोर्चा संभालें, और बाकी उनके साथ खंडहर पर हमला बोल दें।

आशुतोष कुमार को सबसे आगे ताबड़तोड़ फायरिंग करते हुए खंडहर की दिशा में बढ़ना था, जबकि शेष फौजियों को दीवार एवं पेड़ की आड़ से गोली दागनी थी। इस पद्धति को सैन्य जगत में 'कवरिंग फायर' के नाम से जाना जाता है।

मेजर आशुतोष कुमार की दुकड़ी ने खंडहर में घात लगाकर बैठे आतंकवादी शिविर पर इसी पद्धति से हमला किया, मगर बाजी उनके पक्ष में नहीं रही। कवरिंग फायर के क्रम में अपनी रक्षा करते हुए जैसे ही आशुतोष कुमार ने कदम बढ़ाये, खंडहर के अंदर से जबरदस्त गोलीबारी होने लगी।

आशुतोष कुमार तत्काल मौके की नजाकत भांप गये। उन्हें कुछ होने का आभास था। उनके एक हाथ में वाकी-टाकी था, दूसरे में एके ५६ राइफल। वाकी-टाकी पर उन्होंने संदेश दिया, "बहादुर जवानों, अलर्ट। जो जहां है, पोजीशन ले ले। कोई भी उग्रवादी घेरे से निकलने न पाये।"

'नाइन जाट रेजीमेंट' के वीरों ने मोर्चा संभाल लिया। दोनों ओर से गोलियों की बौछारें होने लगीं। एके ४७, एके ५६, लांचर और मोर्टारों की ध्वनि से महसूस हुआ कि मानो आसमान फटकर धरती पर आ गिरा हो। इतना सब होने के बाद भी मेजर आशुतोष कुमार ने न हार मानी, न ही पीछे हटे। उनकी राइफल आग उगलती रही।

तकरीबन ढाई घंटे तक चली फायरिंग के पश्चात अचानक वहां खामोशी छा गयी। आशुतोष कुमार को लगा कि 'फारवर्ड वार टैक्ट्स' आतंकवादियों ने अपना रखी है। दरअसल, 'फारवर्ड वार टैक्ट्स' के अन्तर्गत शत्रु धोखा देने के उद्देश्य से गोलीबारी बंद करके अपने प्रतिद्वंद्वी को आगे आने का अवसर प्रदान करता है, और उसको अपनी तरफ बढ़ते देख पुनः उस पर बिजली की गति से टूट पड़ता है। लिहाजा, इसी बात को ध्यान में रखकर मेजर आशुतोष कुमार ने कुछ देर इंतजार किया। काफी समय व्यतीत होने के बावजूद गोलियां नहीं चलीं, तो आशुतोष कुमार समझे कि आतंकवादियों के पास का गोला-बारूद समाप्त हो गया है।

दुश्मन का गोला-बारूद खत्म होते ही उसे आत्मसमर्पण के लिए चेतावनी दी जाती है, ताकि वह निहत्था आगे आकर अपनी जान बचा सके। मेजर आशुतोष कुमार ने भी यही किया। आधा घंटा तक प्रतीक्षा करने के बाद उन्होंने छिपे आतंकवादियों को 'सरेंडर' करने को कहा, पर उग्रवादी खेमे से जवाब नहीं मिला। पुनः मेजर आशुतोष कुमार ने हवाई फायर करके चेतावनी दी, "तुम लोग हमारी रेंज में हो। बेहतर है, हथियार फेंककर अपने आपको हमारे हवाले कर दो। अंतिम दफा हम तुम्हें सावधान कर रहे हैं...।"

इस आखिरी चेतावनी पर भी आतंकवादियों ने चुप्पी नहीं तोड़ी। इसका नतीजा यह हुआ कि मेजर आशुतोष कुमार की वह सैन्य दुकड़ी पशोपेश में पड़ गयी। आशुतोष कुमार ने अपनी पलटन से विचार-विमर्श किया। तीन संभावनाएं सामने थीं—खंडहर में छिपे उग्रवादी आत्मघाती कदम उठा सकते थे, यानी साइनाइड कैपसूल खाकर अपनी इहलीला ही मिटा सकने को मजबूर थे, जबरदस्त हमला बोलने की फिराक में थे, अथवा वे बुरी तरह जख्मी हो गये थे। मेजर कुमार इन्हीं जद्दोजहद में पड़े हुए थे कि उन्हें खंडहर में थोड़ी-सी आहट सुनायी पड़ी। मेजर ने अंदाज लगाया कि खंडर में दुश्मन जीवित अवस्था में हैं। अतएव अपने साथियों को कवरिंग फायर का हुक्म देकर मेजर आशुतोष कुमार चीते-सी फुर्ती के साथ खंडहर के गुफानुमा द्वार तक पहुंचने में कामयाब हो गये। शिकार बिल्कुल सामने था। आशुतोष कुमार ने खंडहर के दरवाजे से एक हैण्ड ग्रेनेड भीतर फेंका। जोरदार धमाके के साथ वहां धुआं-ही-धुआं भर गया।

एक तो रात हो गयी थी, दूसरे उस अंधकार में धुआं फैल जाने से हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। सो दरवाजे से सटकर ही मेजर आशुतोष कुमार

स्थिति का आकलन करने लगे। धुआं छंटते ही कंदरा में जुगनूं की चमक ने उन्हें अति उत्साहित कर डाला। यही उनके लिए महंगा साबित हुआ। हुआ यह कि जुगनूं की तनिक-सी रोशनी में मेजर आशुतोष कुमार को तीन व्यक्ति दिखायी पड़े। वे तीनों खोह में गिरे हुए थे। बगल में ही उनके हथियार पड़े थे। आशुतोष कुमार ने उन्हें जीवित अवस्था में गिरफ्तार करने की ठान ली। लिहाजा, बगैर गोली दागे मेजर आशुतोष कुमार के पांव आगे बढ़ गये। ऐन उसी वक्त जख्मी आतंकवादियों में से एक ने अपनी चीनी असाल्ट राइफल से गोलियों की झड़ी लगा दी। आशुतोष कुमार पोजीशन लेना ही चाहते थे कि एक बुलेट उनके सीने में उतर गयी। वह अपनी राइफल थामे वहीं लुढ़क गये।

घाव घातक था। पलभर के लिए उनकी चेतना डूबी भी, परन्तु मौत को सामने देखकर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। क्षीण होती शक्ति बटोरकर मेजर आशुतोष कुमार ने आतंकवादियों की तरफ पुनः अपनी एके ५६ राइफल संभालकर धुआंधार फायरिंग खोल दी। मौत से लड़ते-भिड़ते मेजर ने एक उग्रवादी का जिस्म छलनी कर डाला। वह वहीं धराशायी हो गया। इससे आशुतोष कुमार में नये जोश का संचार हुआ। अंतिम सांसों के साथ आंखें बार-बार बंद हो रही थीं। बावजूद इसके किसी तरह वह उठे और तड़ातड़ गोलियां बरसाते हुए उस आतंकवादी के अन्य दो साथियों को भी मौत की नींद सुला दिया।

आशुतोष की छाती से रक्त-स्राव जारी था। उनके लिए अपने पैरों पर खड़े रह पाना संभव नहीं था। चंद ही मिनटों में भारत मां का यह सपूत शहीद होकर उसी धरती के सीने पर लुढ़क गया, जिसे आतंक से मुक्त करने का सपना लेकर उसने 'ऑपरेशन थण्डरबॉल' का भार अपने कंधों पर संभाला था। ऑपरेशन पूरा हो चुका था और मेजर आशुतोष कुमार के जीवन की कहानी भी।

इस मुठभेड़ में आशुतोष कुमार तो वीरगति को प्राप्त हुए ही, किंतु उन्होंने आतंकवादियों समेत उनके ठिकाने को भी ध्वस्त कर डाला। उन्होंने जिन तीन उग्रवादियों को मौत के घाट उतारा था, उनमें सूडान के अजमत अली एवं मोहम्मद अबू नसर तथा अफगानिस्तान के नूर कादर थे। इनके पास से २५ एके ४७ चीनी असाल्ट राइफल, दस यूनिवर्सल मशीन गन, पांच सेवरल राइफल, भारी मात्रा में गोला-बारूद और राकेट लांचर बरामद हुए।

'नाइन जाट रेजीमेंट' की उस टुकड़ी ने अस्त्र-शस्त्रों को देखकर अंदाज लगाया कि आतंकवादियों की संख्या तीन से ज्यादा रही होगी। यह अनुमान भी फौजियों ने किया कि ऑपरेशन के समय शेष आतंकवादी अपने इस ट्रेनिंग सेंटर से कहीं दूर होंगे, इसी लिए बच गये।



चंद ही मिनटों में भारत मां का यह सपूत शहीद होकर उसी धरती के सीने पर लुढ़क गया, जिसे आतंक से मुक्त करने का सपना लेकर उसने 'ऑपरेशन थण्डरबॉल' का भार अपने कंधों पर संभाला था।

बहरहाल, मेजर आशुतोष कुमार के प्राण-पखेरू उड़ते ही उनकी टुकड़ी में मातम छा गया। उनके हर साथी की आंखों में आंसू थे। फिर भी सबको इस बात पर गर्व था कि उनके कमांडर ने मौत को गले लगाकर भी हिन्दुस्तान के दुश्मनों को परास्त कर दिया था। सचमुच आशुतोष कुमार साहस एवं शौर्य की तमाम सीमाओं को पार कर गये थे।

मेजर आशुतोष कुमार की मृत्यु का समाचार वायरलेस से 'बारामूला कंजलवन' स्थित उनकी कंपनी-कैंप तथा ब्रिगेड हेड क्वार्टर, श्रीनगर को दिया गया। उस समय रात्रि के ग्यारह बजे थे।

इधर काली घनेरी रात के उस दूसरे पहर में जाट रेजीमेंट के जवान पहाड़ी, पथरीले मार्ग से अपने मेजर का शव कंधे पर डालकर शिविर लौट रहे थे, उधर कटिहार (बिहार) में आशुतोष कुमार के घर फोन की घंटी घनघना उठी। प्रोफेसर ठाकुर ने रिसीवर उठाया तो पता चला कि कश्मीर से कॉल थी। टेलीफोन पर ही मेजर जनरल जेएस वर्मा ने अपना परिचय देते हुए कहा, "आई वांट टू स्पीक प्रोफेसर विमलचंद्र ठाकुर?"

"हां, हां, मैं ठाकुर ही बोल रहा हूं।"

"आप मेजर आशुतोष के पिताजी हैं न?...आप कैसे हैं?"

"मैं सही-सलामत हूं। कोई खबर है क्या? आशुतोष कैसा है?"

"सॉरी सर, मेजर आशुतोष इज नो मोर...।"

"क्या!" प्रोफेसर ठाकुर को लगा, मानो किसी ने उनके कानों में पिघला शीशा उंड़ेल दिया हो। उनके पांव थरथराने लगे। टेलीफोन हाथ से छूट गया। वे दोनों हाथ से सिर थामकर सोफे पर ढह पड़े।

घर में कोहराम मच गया। आशुतोष की मां एवं पत्नी बेहोश हो गयीं। आशुतोष का अनुज फूट-फूट कर बच्चों की भांति विलाप करने लगा। ड्राइंगरूम में सामने रखे मेजर आशुतोष कुमार के चित्र की ओर प्रोफेसर ठाकुर की नजरें चली गयीं। फौजी की वर्दी में आशुतोष अपने भांजे को गोद में लिये मुस्करा रहा था। प्रोफेसर ठाकुर को अपने लाडले के कुछ शब्द याद आने लगे—'पापा, जब कभी मेरी कमी आपको महसूस हो तो मेरी तस्वीर देखियेगा...मैं आपके पास मौजूद रहूंगा...।' उन्होंने फोटो को उठाकर सीने से भींच लिया। फिर खड़े हो गये। तस्वीर को यथास्थान रखा और उसे सलामी दी।

सुबह होते ही दूरदर्शन ने भी अपने राष्ट्रीय प्रसारण में मेजर आशुतोष कुमार के वीरगति प्राप्त हो जाने का दुखद समाचार सुनाया। अखबारों में भी इस आतंकवादी मुठभेड़ की खबरें छपी थीं। सेना की विशेष गाड़ी से मेजर आशुतोष कुमार की लाश पहले श्रीनगर ले जायी गयी, वहां से हेलीकॉप्टर द्वारा दिल्ली। २३ अगस्त की रात नौ बजे 'भारतीय वायु सेना' के विशेष विमान से मेजर कुमार का पार्थिव शरीर पटना पहुंचा। श्रीनगर से उनके साथ सेकेंड लेफ्टिनेंट एमएन झा पटना आये थे। पटना हवाई अड्डे पर सैन्य छावनी दानापुर के जवानों ने मेजर आरके जत्ती के नेतृत्व में शव को 'गार्ड ऑफ ऑनर' प्रदान किया। उस वक्त वहां स्वर्गीय मेजर आशुतोष कुमार के छोटे भाई मंतोष कुमार एवं उनके स्वजन-परिजन भी उपस्थित थे।

रातभर इस अमर फौजी की लाश सैन्य छावनी दानापुर में ही रखी गयी। चौबीस तारीख की सुबह मिलिट्री-वैन से आशुतोष का शव कटिहार ले जाया गया। तिरंगे में लिपटा मेजर का पार्थिव शरीर ज्यों ही रात्रि के दस बजकर बीस मिनट पर विनोदपुर, कटिहार स्थित उनके पैतृक निवास लाया गया, उनके अंतिम दर्शन हेतु हजारों लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। पूरी रात श्रद्धांजलि देनेवालों का तांता लगा रहा।

आशुतोष की मां ने अपने बेटे का शव देखा तो आंखें बरस पड़ीं। आंखों में आंसू तो प्रोफेसर ठाकुर के भी थे, पर उन्होंने उसे छलकने नहीं दिया। अपने आपको संभालते हुए प्रोफेसर ठाकुर ने पत्नी को समझाया, "शहीदों के शव पर आंसू नहीं, फूल बरसाये जाते हैं। तुम्हें गर्व होना चाहिए कि पुत्र ने तुम्हारे दूध की लाज रखी है। अपने साथ-साथ हमारा नाम भी अमर कर गया। आशुतोष हमारा नहीं, इस देश का लाल था, देश के लिए शहीद हो गया।"

२५ अगस्त १९९६ की सुबह साढ़े नौ बजे मनिहारी घाट, कटिहार के तट पर सिरसा सैन्य छावनी के जवानों द्वारा इक्कीस तोपों की सलामी देने के बाद मेजर आशुतोष कुमार का अंतिम संस्कार कर दिया गया। अनुज मंतोष ने उन्हें मुखाग्नि दी थी।

अपने पराक्रम से भारतीय सेना एवं जाट रेजीमेंट का नाम रोशन करनेवाले आशुतोष कुमार का जन्म ११ जनवरी १९७० को दरभंगा में हुआ था। उनके पिता डा० विमलचंद्र ठाकुर डीएस कालेज, कटिहार में मैथिली के विभागाध्यक्ष थे। मां सुशीला ठाकुर गृहिणी थीं।

आशुतोष कुमार अपने भाई-बहनों के बीच दूसरे नंबर पर थे। उनका बचपन कटिहार में गुजरा था। आरंभ से ही उन्हें खतरों से खेलने का शौक था। कुछ असाधारण करने की तमन्ना उनके मन में हमेशा रहती थी। उनके घर के निकट ही लंबा-चौड़ा मैदान था। पौ फटते ही वहां भारतीय फौज के सैकड़ों जवानों के कदमताल से लोगों की नींद खुल जाती थी। परेड करने के उपरान्त अनुशासित सैनिक फायरिंग का रियाज करते थे।

इन तमाम दृश्यों को अपने फ्लैट की छत पर खड़े होकर आशुतोष घंटों निहारते थे। फौजियों के अनुशासित जीवन ने उन्हें आकर्षित किया। लिहाजा, सेना में भर्ती होने, फौजी बनने एवं हाथ में राइफल लेकर दुश्मनों के छक्के छुड़ाने की उनकी इच्छा बलवती होती गयी। बात-बात में वे अपनी मां से कहते भी थे, 'मम्मी, मैं पढ़-लिखकर फौज की नौकरी करूंगा...हिन्दुस्तान के शत्रुओं के दांत खट्टे कर दूंगा...अपने देश, अपने वतन का मस्तक विश्व में ऊंचा करूंगा।" बेटे के मुंह से यह सब सुनकर मां उसे सीने से चिपका लेती थी।

नौ साल की उम्र तक आशुतोष की शिक्षा कटिहार में अपने जमाने के विद्वान शिक्षक बलभद्र खां की देखरेख में हुई थी। बलभद्र खां के मार्गदर्शन में वर्ष १९८० में आशुतोष कुमार ने सैनिक स्कूल की दाखिला परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। डा० ठाकुर की प्रबल इच्छा थी कि उनका होनहार पुत्र आईपीएस बने। उन्होंने आशुतोष को समझाया, "बेटा, मेरी दिली ख्वाहिश है कि तुम एसपी, आईजी, डीजीपी सरीखे पदों को सुशोभित करो। मैं जिस दिन तुम्हें आईपीएस की वर्दी में देखूंगा, मेरी आयु दूनी हो जायेगी।"

"आईपीएस और मैं! नहीं पापा, मेरा जीवन तो इस मुल्क की सरहद की रक्षा के लिये ही समर्पित है। सैनिक स्कूल में अध्ययन करने के पश्चात फौज की सेवा में शामिल होने में मुझे सहूलियत होगी। मेरी मां...मेरी धरती मां...मेरी मातृभूमि मुझे पुकार रही है।"

प्रोफेसर ठाकुर की आंखें नम हो उठीं। उन्होंने भावावेश में आशुतोष को गले से लगा लिया और बोले, "बेटा, मुझे गर्व है कि मैं भारत मां को तुम्हारे जैसा सपूत दे रहा हूं।"

मार्च १९८० में आशुतोष कुमार का नामांकन सैनिक स्कूल झुमरीतिलैया में हो गया। उस वक्त छठी कक्षा के छात्र थे वे। दरअसल, इस विद्यालय में भर्ती सिर्फ छठे वर्ग में ही होती थी।

एक सैनिक के सारे गुण आशुतोष कुमार में बचपन से ही मौजूद थे। तभी तो उम्र के ग्यारहवें पड़ाव पर पहुंचते ही उन्होंने थ्री नॉट थ्री की राइफल से सौ मीटर के फासले पर स्थित पांच ब्लैक स्पॉटों को बेधकर 'ए सर्टिफिकेट' हासिल किया था। इतनी अल्पायु में 'ए सर्टिफिकेट' प्राप्त करना अपने आप में कीर्तिमान था। वह अपने स्कूल में बास्केट-बॉल एवं वॉलीबॉल टीम के कप्तान भी थे।

सन् १९८४ में आईसीएससी की परीक्षा फर्स्ट डिवीजन से आशुतोष कुमार ने पास की। उन्हें पांच विषयों में विशेष योग्यता मिली थी। वर्ष १९८६ में उसी स्कूल से उन्होंने पचासी फीसदी अंकों के साथ प्लस टू किया। इतने ज्यादा नंबर से उत्तीर्ण होनेवाले उस विद्यालय के पहले विद्यार्थी थे आशुतोष।

इंडियन आर्मी ज्वाइन करने के लिए आशुतोष कुमार ने नेशनल डिफेंस एकेडमी में भर्ती का फार्म भर दिया। लिखित और शारीरिक दोनों परीक्षा में सफल रहे वह। फलतः उनका चुनाव हो गया। वर्ष १९८७ में प्रशिक्षण के लिए आशुतोष कुमार राष्ट्रीय सुरक्षा अकादमी स्कूल, खड़गवासला, पूना चले गये।

जून १९९० में नेशनल डिफेंस एकेडमी खड़गवासला से 'एक्सिलेंट' सर्टिफिकेट के साथ आशुतोष कुमार ने पास आउट किया। तदुपरांत एक साल के लिए उन्हें इंडियन मिलिट्री एकेडमी, देहरादून जाना पड़ा। वहां आशुतोष कुमार ने सेना का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया।

सन् १९९१ के जून में आशुतोष को सेकेंड लेफ्टिनेंट के रूप में सेना का कमीशन मिला। उनकी प्रथम पोस्टिंग सिक्किम में हुई।

विभिन्न प्रशिक्षणों के पश्चात वर्ष १९९३ में आशुतोष कुमार को राजस्थान के श्रीगंगानगर में तैनात किया गया। वहां सेकेंड लेफ्टिनेंट आशुतोष कुमार अपनी यूनिट के 'एडजुटेंट' थे। एडजुटेंट का मतलब था कर्नल के सचिव। उन दिनों एके पाण्डेय 'नाइन जाट रेजीमेंट' के कर्नल थे। वहीं सन् १९९४ में आशुतोष कुमार की प्रोन्नति कैप्टन के पद पर कर दी गयी।

उसी बीच छुट्टी पर आशुतोष कटिहार आये। सभी मां को बेटे के सिर पर सेहरा देखने का अरमान होता है। सुशीला ठाकुर को भी था। उन्होंने आशुतोष से इस बाबत पूछा तो उनका उत्तर था, "अरे मम्मी, फौजियों की शादी उनकी यूनिट के साथ हुआ करती है। मेरी भी शादी यूनिट से हो चुकी है।"

"बेटा, लड़के को एक शादी अपने और अपने मां-बाप के लिए भी करनी होती है।" सुशीला ठाकुर ने कहा। लिहाजा, आशुतोष ने ब्याह हेतु हामी भर दी। मई १९९५ की इक्कीस तारीख को आशुतोष कुमार एवं सपना ठाकुर परिणय-सूत्र में बंध गये। सपना दरभंगा की निवासी थी। उसके पापा बीके झा वहां असिस्टेंट इंजीनियर थे।

बहरहाल, विवाह के बाद जैसे ही आशुतोष कुमार अपने कैंप लौटे, उन्हें मिलिट्री हेड-क्वार्टर के फरमान पर स्थिति का जायजा लेने के लिये कश्मीर भेजा गया। तकरीबन बीस दिनों तक वहां रहकर कैप्टन आशुतोष ने अपनी गोपनीय रिपोर्ट सेना मुख्यालय को सौंप दी। उसी रिपोर्ट के आधार पर आशुतोष को बारामूला में तैनात कर दिया गया।

वहीं जून १९९६ में आशुतोष कुमार कैप्टन से मेजर बनाये गये। और ३१ जुलाई १९९६ को उन्होंने बारामूला स्थित लोसर नाला में चार आतंकवादियों को मौत के घाट उतारकर 'नाइन जाट रेजीमेंट' की पताका फहरायी।

इसके ठीक चार दिन पहले आशुतोष कुमार ने एक अफगानी आतंकवादी को जिंदा गिरफ्तार किया था। उस अफगानी की जैकेट पुरस्कार स्वरूप कर्नल पाण्डेय ने मेजर आशुतोष को दी थी। जैकेट की विशेषता यह थी कि उस पर बर्फ-पानी आदि का असर नहीं पड़ता था। वह घास के रंग की थी। उसे टेंट की शक्ल में भी तब्दील किया जा सकता था, ताकि सैनिक उसमें छिप सके।

मेजर आशुतोष कुमार उग्रवादियों की नजर में चढ़े हुए थे। नतीजा यह हुआ कि आतंकवादियों के हाथों उन्हें परलोक जाना पड़ा। उनकी शहादत पर तत्कालीन थल सेनाध्यक्ष जनरल एस० राय चौधरी ने सपना ठाकुर को लिखा था कि आशुतोष जैसा मेजर बिरला ही पैदा होता है।

●

—छाया : भास्कर मुखर्जी

अनोखे बैंक खाते

स्विट्जरलैण्ड के बैंकों के गुप्त कूट क्रमांक की चर्चा होती रहती है। साधारण खातेदार तो बस एक संख्या पा जाते हैं। न्यू गिनी के पापुआ आदिवासियों में अद्भुत प्रथा है। वे संख्या या कूट-क्रमांक नहीं लेते। पोर्ट मोरसबी के बैंक में जब वे अपना धन जमा कराते हैं, तो बैंक उनकी इच्छा के अनुसार, संख्या के स्थान पर उन्हें मछली, चिड़िया, जानवर विशेष या अन्य प्राकृतिक वस्तुओं जैसे किसी वृक्ष की पत्तियां, फूल, पत्थर आदि की पहचान देता है। अब कोई खातेदार घड़ियाल भी हो सकता है, कोई हिरन अथवा चील भी हो सकता है। वे अपना प्रतीक गुप्त रखते हैं, वरना संभव है, कोई हिरन किसी घड़ियाल की रकम हजम कर जाये।

—डा० शिवनंदन कपूर

–जौहरी की नजर–

(पृष्ठ ३५ का शेष)

रतिराम सुनार और परथल दोनों ही असमंजस में पड़ गये। तभी पंडित चन्द्रमौलि ने यह निर्णय ले डाला कि वे मुदगल नगर में कुछ समय और रहेंगे। तत्पश्चात् परथल से बोले, "कौन-सा रत्न कौन-सी राशि में पहनना है, यह तुम जानती हो?"

परथल ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मैं तो पत्थर हथेली पर रखकर उसके पानी की झलक से बता सकती हूं कि वह किस जाति का है।"

पंडितजी बोले, "विद्या का आदान-प्रदान सरस्वती-साधना का दूसरा नाम है। तुम मुझे रत्न परखना सिखलाओ, मैं तुम्हें जन्मपत्री पढ़कर रत्न का निर्णय करना सिखलाऊंगा।"

पंडित चन्द्रमौलि शास्त्री मुदगल नगर में ही जम गये। अपनी पोटली खोलकर उन्होंने ज्योतिष की पुस्तकें निकालीं और परथल को ज्योतिष विद्या का ज्ञान कराया। परथल ने भी 'रत्नमाला' के सिद्धान्त और नजर पैनी करके बहुमूल्य पत्थरों की काट-छांट, चमक-दमक और पानी की पहचान करना सिखलाया।

विद्या के आदान-प्रदान का कार्यक्रम चल रहा था और परथल की पारखी दृष्टि की कहानी चारों ओर फैलती जा रही थी।

एक दिन सुबह होते ही घोड़े पर सवार कोई राज्यकारी उतरा। रतिराम के द्वारे आकर उसने सांकल खटखटाई। रतिराम ने दरवाजा खोलकर पूछा, "कौन हो भाई, इतने सबेरे कैसे आना हुआ?"

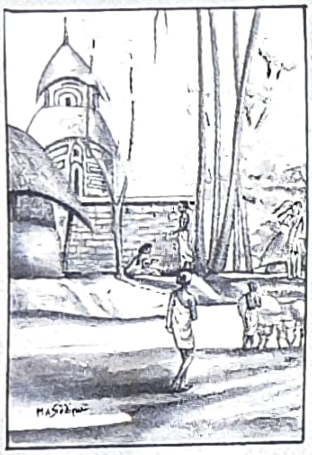
सवार ने सलाम किया और बोला, "क्या रतिराम सोनकार आप ही हैं?"

रतिराम जिज्ञासु होकर बोला, "हां, हां, मैं ही रतिराम हूं। आप कौन हैं, और कैसे आना हुआ?"

सवार ने अपनी पगड़ी से एक पोटली निकाली, जो उसमें खुसी हुई थी, और उसे खोलकर दिखाया। पोटली में एक हार था, जो हरे रत्न का था। सवार बोला, "आपकी बेटी की पारखी नजर के बारे में सुनकर ही मैं बड़ी दूर से आया हूं। क्या वे बतला सकेंगी कि यह कौन-से रत्न का हार है?"

रतिराम ने उसे अंदर बुलाया, चबेना और पानी पेश किया, फिर परथल और पंडित चन्द्रमौलि दोनों को ही बुलाया। सलाम-दुआ हुई। पंडितजी बोले, "आपके सलाम करने के ढंग से पता लगता है कि आप बहमनी सल्तनत के सिपाही हैं।"

सिपाही बोला, "आपने ठीक फरमाया, जनाब। मुझे सुल्तान फिरोज के बेटे शहजादा हसन ने भेजा है। ये पता लगाना है कि यह हार किस पत्थर का है।" और उसने हार



"विद्या का आदान-प्रदान सरस्वती-साधना का दूसरा नाम है। तुम मुझे रत्न परखना सिखलाओ, मैं तुम्हें जन्मपत्री पढ़कर रत्न का निर्णय करना सिखलाऊंगा।"

परथल के सामने रख दिया। परथल ने उसे उठाकर गौर से देखा। उसके एक दाने को अपने दांत से किरकिराकर भी देखा। फिर बोली, "वाह, वाह! कितनी अजीब बात है। किसी जौहरी ने सुलेमानी पत्थर को इस खूबी से काटा-चमकाया है कि यह पन्ने का हार दिखाई देता है।"

सिपाही चौंककर बोला, "बाईजी, तो यह पत्थर पन्ना नहीं है?"

परथल दृढ़ स्वर में बोली, "नहीं, यह पन्ना नहीं है, बल्कि अच्छी नस्ल का सुलेमानी है।"

सवार ने अपनी जेब से चांदी के ग्यारह रुपये निकालकर कहा, "बाई साहब, इन्हें कुबूल फरमाइयेगा। शहजादा हसन ने परख करने की भेंट यही दी है।"

परथल ने ग्यारह रुपये को छूकर कहा, "अपने शहजादे से कहना कि मैंने उनकी भेंट का मान रखा और इसे छू लिया है। मैं परख करने का मूल्य नहीं लेती, वरना यह विद्या मेरे हाथ से निकल जायेगी।"

रतिराम ने सिपाही को चलते वक्त बताशे का शर्बत पिलाया और सवार 'खुदा हाफिज' कहकर वापस चला गया

शहजादा हसन। महफिल की शमा जैसा रंग, झील जैसी नीली आंखें, छरहरा सुडौल शरीर, साक्षात कामदेव जैसा। उसे ही एक चतुर जौहरी सुलेमानी हार पन्नों का हार कहकर बेच रहा था। हसन ने परथल द्वारा परख करके उस हार की सही कीमत ही देकर फिर खरीदा था। वह मन-ही-मन दोहराने लगा–जो कुछ भी उसके सिपाही फजल बेग ने उससे कहा था, 'हुजूर, सावन की घटा में जैसे बिजली कड़कती दिखाई देती है, वैसा रंग है उस सुनार की बेटी का...और आंखें–सुबहान अल्लाह, जैसे कमल की कलियां हों। हुजूर, उसे देखकर तो आंखें चुंधियाने लगती हैं, जैसे तूर पर तजल्ली का दीदार नसीब हो रहा हो।'

हसन ने फिर फैसला कर ही लिया कि वह परथल का दीदार करेगा और मिलने का बहाना भी बना लिया–रत्न की परख।

उन्हीं दिनों हसन को ग्यारह रत्ती का हीरा भी सुखानंद जौहरी बेचना चाह रहा था। हसन ने हीरा रख लिया और सुखानंद से बोला, "परख के बाद इसकी सही कीमत अदा की जायेगी।"

परथल की पारखी निगाह की कहानी जौहरी भी सुन चुका था। लिहाजा घबराकर बोला, "इस हीरे को छोड़िए हुजूर, मैं इससे भी नायाब हीरा लाकर आपको पेश करूंगा–कुछ दिन ठहर जाइए।"

"नहीं, इसे ही रहने दीजिए, परखवाने में क्या हर्ज है।"

और दूसरे ही दिन वह महल से निकल पड़ा। दोआब उसी का क्षेत्र था और मुदगल, जहां परथल रहती थी, महल से कोई दस मील होगा। मुदगल पहुंचकर उसने रास्ते में गगरी भरकर आनेवाली कुछ युवतियों से पूछा, "क्या आप बतला सकेंगी कि रतिराम सुनार का घर किधर है?"

उन्होंने मुस्कराकर कहा, "क्या कोई कीमती पत्थर दिखलाना है।"

"हां।" हसन ने जवाब दिया।

उनमें से एक बोली, "वैसे परथल का घर तो चौराहे के बायीं ओर वाले बरगद के सामने है, पर इस वक्त तो वह बगीचे के पनघट पर शायद मिले।"

शहजादे ने 'शुक्रिया' कहा और बगीचे की ओर मुड़ लिया। पनघट पास ही में था। परथल उस वक्त बाल्टी से पानी कलशे में डाल रही थी। जैसे ही घोड़ा पास आया, दोनों ने एकसाथ एक-दूसरे को देखा और कुछ क्षण स्तब्ध रह गये। फिर हसन ने कहा, "क्या पीने को पानी मिलेगा?"

"क्यों नहीं," परथल बोली, "आप भी पीजिए और अपने इस घोड़े को भी हौदी से पिलाइए।"

पानी पीकर हसन बोला, "माफ कीजिए, गालिबन आप ही परथल हैं–दोआब की मशहूर जौहरी?"

परथल हंसी, "और आप शायद हमारे राज्य के शहजादे हैं?"

"आपका खयाल ठीक है।" हसन बोला।

"तो फिर कौन-सा पत्थर परखवाने आये हैं?" परथल ने पूछा।

हसन ने जेब से सुखानंद वाला हीरा निकालकर दे दिया। परथल ने हीरा अपनी गुलाबी हथेली पर रखा और फिर बड़े जोर से हंसी। शहजादा भौंचक देखता रहा। परथल ने उस हीरे को पानी से रगड़-रगड़कर धोया और फिर देखकर बोली, "हूं, अब टाटरी की परत उतर गयी है। लीजिए, अब इसे मुंह में डालकर चूसिए।"

हसन मुंह बाये देखता बोला, "पर हीरा तो जान ले सकता है। कहते हैं, इसे चाट लेने से या निगल लेने से इंसान मर जाता है।"

परथल हंसकर बोली, "तो हम इसे चूस लेते हैं।" और यह कहकर उसने उस हीरे को अपने मुंह में डाल लिया और चूस-चूसकर बोली, "क्या मिठास है, वाह वाह!"

फिर जब परथल ने उस हीरे को मुंह से निकाला तो वह आकार में छोटा भी हो गया था। हसन यह देखकर दंग रह गया।

परथल ने उस पत्थर को लौटाते वक्त हसन से कहा, "राजकुमार साहब, जिस कारीगर ने इस मिश्री की डली को काट-छांटकर इस पर टाटरी चढ़ाई है, उसकी दाद तो देनी पड़ेगी। वाह, वाह, क्या हाथ की सफाई है!"

हसन बोला, "तो क्या यह मिश्री की डली है, हीरा नहीं?"

परथल बोली, "जी जनाब, लाइए इसे मैं धो दूं, क्योंकि यह मेरा जूठा हो गया है, फिर आप भी इसे चूसकर देख लीजिए।"

हसन ने कहा, "जूठा हो गया है क्या मतलब! मैं इसे वैसे ही चूसकर देखता हूं। हां, अलबत्ता यह आपके मुंह से निकलकर और भी मीठा हो गया होगा।" हसन ने उसे अपने मुंह में डाल लिया और स्वाद लेते हुए बोला, "वाकई ये तो मिश्री ही है। अगर आपको नागवार नहीं गुजरे तो मैं रोज ही एक पत्थर परखवाने आ जाया करूंगा। मेरे पास ढेर सारे पत्थर हैं।"

परथल बोली, "आ जाया कीजिए, मुझे कोई एतराज नहीं।"

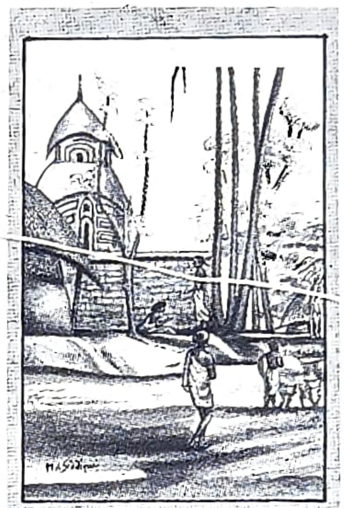
शहजादा बोला, "मेरे खयाल से इसी पनघट पर आ जाया करूंगा—दोपहर होने से पहले।" जवाब में परथल मुस्करा दी। हसन उसे सलाम करके वापस चला गया।

हसन और परथल के मिलन का सिलसिला इसी प्रकार हुआ था। जब कभी उन दोनों को एक साथ कुंए की जगत पर परथल की सहेलियां देखतीं, तो कह उठतीं, "कैसी गौरी-शंकर की जोड़ी है—दामिनीवर्ण गौरी और हिमवर्ण शंकर जैसे बैठे हों।"

और सिलसिला इतना बढ़ा कि यह नौबत भी आ गयी—

इश्क में जब गुफ्तगू होने लगी
'आप' से 'तुम', 'तुम' से 'तू' होने लगी।

तीन महीने बाद पंडित चन्द्रमौलि शास्त्री परथल और उसके नगर मुदगल को छोड़कर वापस विजयनगर पहुंचे। जब उन्होंने परथल के सौंदर्य एवं रत्न-पारखी विद्या का बखान किया, तब राजा देवराय सुनकर विचलित हो उठा। शास्त्री ने साफ-साफ देवराय से कहा था, "महाराज, परथल मेरी धर्मपुत्री है। उससे आपको वैदिक रीति से विवाह करना होगा। वह न तो आपकी उप-पत्नी बनेगी, न ही बाद में किसी



परथल ने दो टूक जवाब दे दिया कि वह दोआब क्षेत्र के राजकुमार हसन से प्रेम करती है और उनसे विवाह करने को वचनबद्ध है। शास्त्रीजी सुनकर अवाक रह गये, "तुम हिन्दू होकर एक मुसलमान से विवाह करोगी?"

शिवालय की देवदासी। आपको यह वचन मुझे देना होगा।"

देवराय प्रसन्नतापूर्वक यह मान गया। तब शास्त्रीजी को ही आभूषण, वस्त्र एवं एक बहुमूल्य हार देकर देवराय ने मुदगल भेजा था—परथल के साथ सगाई करने को।

मुदगल आकर प्रसन्नचित्त चन्द्रमौलि ने परथल को सगाई का हार पहनाना चाहा, तो परथल ने मना कर दिया।

शास्त्रीजी बोले, "यह क्या कह रही हो बेटी! तुम विजयनगर के राजा देवराय की पटरानी बनने जा रही हो—राज्य सिंहासन की अर्ध-अधिकारिणी।"

परथल ने दो टूक जवाब दे दिया कि वह दोआब क्षेत्र के राजकुमार हसन से प्रेम करती है और उनसे विवाह करने को वचनबद्ध है। शास्त्रीजी सुनकर अवाक रह गये, "तुम हिन्दू होकर एक मुसलमान से विवाह करोगी?"

परथल बोली, "प्रेम जात-पांत के बंधन को नहीं स्वीकारता। प्रेम तो ईश्वर का संदेश है, प्रभु का आदेश है, आशीर्वाद है।"

शास्त्रीजी सगाई की ठुकराई हुई सौगात को लेकर वापस विजयनगर लौट गये।

जब देवराय ने सब कथा सुनी तो वह क्रोध से पागल हो गया। उसे अब फिरोज बहमन पर दोआब क्षेत्र में आक्रमण करने का तीसरा बहाना भी मिल चुका था। दांत पीसकर बोला, "मैं दोआब के मुदगल नगर को मटियामेट करके उस घमण्डी सुनार की बेटी को बंदी बनाकर लाऊंगा और उसे अपनी रखैल बनाऊंगा।"

फिर देवराय एक बड़ी सेना लेकर दोआब की ओर लपका था। सेना के आगमन की खबर सुनकर शहजादा हसन मुदगल आया और परथल व रतिराम को अपनी राजधानी ले जाकर एक सुरक्षित स्थान पर ठहरा दिया।

उधर देवराय अपने पांच हजार छंटे घुड़सवारों को लेकर मुदगल नगर पर टूट पड़ा। नगर को लूटा, मगर परथल हाथ न आयी।

फिरोज बहमन भी सतर्क हो गया था। उसने अपने हिन्दू राजा मित्रों से मदद मांगी। वारंगल के हिन्दू राजा अनापोट बेलमा और कृष्णा तट के राजा रेड्डी ने फिरोज की सहायता की। देवराय की सेना की पूंछ पर फिरोज बहमन के सूबेदार फौलाद खां ने हमला कर दिया। 'दि केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया' भाग तीन में लिखा है, 'फौलाद खां ने चुपचाप आकर देवराय की गाफिल सेना को धर दबोचा, जिससे देवराय की करीब एक तिहाई सेना नष्ट हो गयी। पूर्ण रूप से पराजित होकर देवराय की सेना नदी पार करके किसी तरह लौट पायी। तब तक हिन्दू राजाओं की सहायता से फिरोज बहमन ने देवराय की राजधानी पर आक्रमण कर दिया। आसपास के क्षेत्र छीन लिये गये। फिरोज के सेनापति फजलुल्लाह खां ने आखिर देवराय को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया।'

देवराय को संधि करनी पड़ी, जो महंगी पड़ी। उसे दस लाख सोने की मोहरें, पचास हाथी, दो हजार गुलाम एवं अपनी पुत्री का हाथ फिरोज को सौंपना पड़ा।

राजधानी लौटकर जब विजयी फिरोज ने दरबार किया, तब उसमें परथल को हाजिर होने को कहा गया। दरबार में सुलतान फिरोज बोला था, "मैं देखना चाहता हूं कि ऐसा कौन-सा सुंदर मुखड़ा है, जिसके कारण दो हजार गर्दनें कट गयीं।"

जब परथल दरबार में आयी, तो उसे देखकर सुल्तान फिरोज एवं सारे दरबारी अवाक रह गये। फिरोज बोला, "लड़की, मैंने सुना है कि तूने देवराय की पटरानी बनने से मना कर दिया था, जिसकी वजह से यह जंग छिड़ी?"

परथल निर्भय होकर बोली, "जी हां सुल्तान, क्योंकि मैं किसी और से प्यार करती हूं, और वो यहीं आपके दरबार में मौजूद है।"

हैरत से फिरोज बोला, "यहीं मौजूद है? कौन है वह खुशनसीब, जिसने इस माहेरुख का दिल जीत लिया है।"

तभी हसन उठा और सिर झुकाकर बोला, "वो मैं हूं अब्बाजान।"

फिरोज सुनकर दंग रह गया। फिर उसने हसन और परथल की बड़ी धूमधाम से शादी की थी। परथल के कहने पर उसके माता-पिता को भी राजधानी में एक हवेली रहने को दे दी गयी थी।

●

प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार 'ऐडम वॉटसन' ने अपनी पुस्तक 'दि वार आफ दि गोल्डस्मिथ्स डॉटर' में यह सब ब्यौरा दिया है। उनके अनुसार परथल के विवाह के बाद उसका नाम 'नहल' रख दिया गया था, जिसका अर्थ फारसी भाषा में है—'पौधा'।

(चित्रांकन चित्रकार की कल्पना से)

बला उस रात की

—प्रशांत



सुरजीत सिंह :
हमेशा डराती हैं वे यादें

वह दिसंबर की एक सर्द रात थी। उत्तरी छोटा नागपुर का प्रमुख शहर हजारीबाग पूरे तौर पर कोहरे में डूब चुका था।। अंधेरे के चेहरे पर घरों में जल रही बत्तियों के छींटे पड़ने से रोशनी लहराने लगी थी। सांझ घिरते ही सड़कों पर आवाजाही रुक गयी थी। सुनसान हो चुकी सड़कों पर भारी वाहनों के गुजरने से शोर पैदा हो रहा था। संत कोलम्बस कालेज के भौतिकी विभाग के डिमोस्ट्रेटर सुरजीत सिंह अपने घर में बैठे-बैठे बोर हो रहे थे। तभी कैथोलिक चर्च के घड़ियाल ने एक-एककर आठ घंटे बजाये। सुरजीत को याद आया कि आज आफिसर्स क्लब में सभी मित्र ब्रिज खेलने के लिए एकत्र हुए होंगे। आफिसर क्लब की दूरी सुरजीत सिंह के घर से लगभग एक किलोमीटर थी।

सुरजीत सिंह क्लब जाने के लिए जल्दी-जल्दी तैयार होने लगे। अभी सिर पर पगड़ी बांध ही रहे थे, कि पत्नी दिलजीत कौर ने उन्हें तैयार होते देख पूछा, "इस समय कहां जाना है? बाहर काफी ठंड है।"

"क्लब जा रहा हूं। तुम खाना तैयार रखो, एक-डेढ़ घंटे में लौटकर आऊंगा," सुरजीत सिंह पगड़ी में पिन खोंसते हुए बोले, "बच्चों को खिलाकर सुला देना। और हां, बाहर वाली ग्रिल की एक चाभी मुझे दे दो। रात की ठंड में नाहक तुम्हें बाहर निकलने में परेशानी होगी।"

दिलजीत कौर ने चाभियों के गुच्छे से ग्रिल की एक चाभी निकालकर सुरजीत सिंह को दे दी। चाभी लेकर सुरजीत सिंह आफिसर्स क्लब की ओर तेजी से निकल पड़े।

लोग कहते हैं, हजारीबाग में आज भी रेणु रक्षित और उसके अधेड़ रिश्तेदार की आत्माएं भटक रही हैं

बाहर सिहरानेवाली ठंड थी। गेट से सुरजीत सिंह ने निकलते ही हाथों में दस्ताने पहन लिये और गले में मफलर भी लपेट लिया। कोहरे की बूंदें शबनम की तरह टपक रही थीं। बाहर निकलकर सुरजीत सिंह को एकबारगी मन में आया कि इस ठंड में क्लब जाने से बेहतर घर में ही आराम करना था, पर फिर इस खयाल को झटककर सुरजीत सिंह सीधे क्लब की ओर पैदल ही चल पड़े।

सुरजीत सिंह के घर व क्लब के बीच में हजारीबाग बस स्टैंड है। जब सुरजीत सिंह बस स्टैंड के पास पहुंचे, तो उन्हें महसूस हुआ कि कोई उनके पीछे सुबकते हुए चला आ रहा है। पीछे मुड़कर देखा, तो कोई नहीं था। उन्हें लगा कि भ्रम हुआ है। बस स्टैंड से आगे चर्च है और वहीं एक नीम का दरख्त है। नीम के पेड़ के बारे में लोगों का कहना है कि वह करीब दो सौ साल पुराना है। वे नीम के पास पहुंचे, तो किसी के जोर से रोने की आवाज सुनकर चौंक उठे। मुड़कर देखा तो लगभग १२ वर्ष की एक छोटी-सी लड़की ठंड से कांपती उनके पीछे खड़ी सुबक रही थी। उसे देखकर एक पल के लिए विस्मित रह गये सुरजीत। वह छोटी लड़की फ्राक पहने थी। सफेद रंग की उस फ्राक पर काले रंग से गुलाब का छाप पड़ा हुआ था। बाल की दो नन्ही चोटी गुंथी हुई आगे की ओर लटकी

थीं। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें आंसुओं से नम थी। बार-बार वह अपने हाथों से आंसू पोंछ रही थी। सुरजीत सिंह उस लड़की को रोते देख विचलित हो उठे। उन्होंने बड़े प्यार से पूछा, "बेटी, रो क्यों रही हो? घर जाना है?"

"जी अंकल।" उसने सुबकते हुए कहा।

"कहां से आ रही हो?" सुरजीत सिंह के इस प्रश्न पर वह लड़की संयत होती हुई बोली, "मैं गोड्डा से अकेली यहां आयी हूं। मुझे अपने घर पतरातू जाना है।"

उस लड़की की मिठासभरी बातों से सुरजीत सिंह को दया आयी। उन्हें लड़की के अभिभावकों पर क्रोध भी आया कि इतनी छोटी लड़की को अकेले घर से भला क्यों जाने दिया। वे कुछ कहते, उससे पहले ही लड़की ने कहना शुरू कर दिया, "मेरा नाम रेणु रक्षित है। मैं हज़ारीबाग-आबकारी नाका के पास के गांव पतरातू की रहनेवाली हूं। मेरे पिता गांव में ही खेती करते हैं। अभी मैं अपनी नानी के घर गोड्डा से आ रही हूं।"

रेणु रक्षित ने आगे बताया कि वह गांव के ही एक स्कूल में चौथी कक्षा की छात्रा थी। सुरजीत सिंह ध्यानपूर्वक उसकी बातों को सुन रहे थे। उन्होंने कुछ सोचकर रेणु को अपने साथ क्लब चलने को कहा, क्योंकि क्लब में कार की व्यवस्था हो सकती थी। वहां से क्लब की दूरी मात्र पचास कदम ही थी।

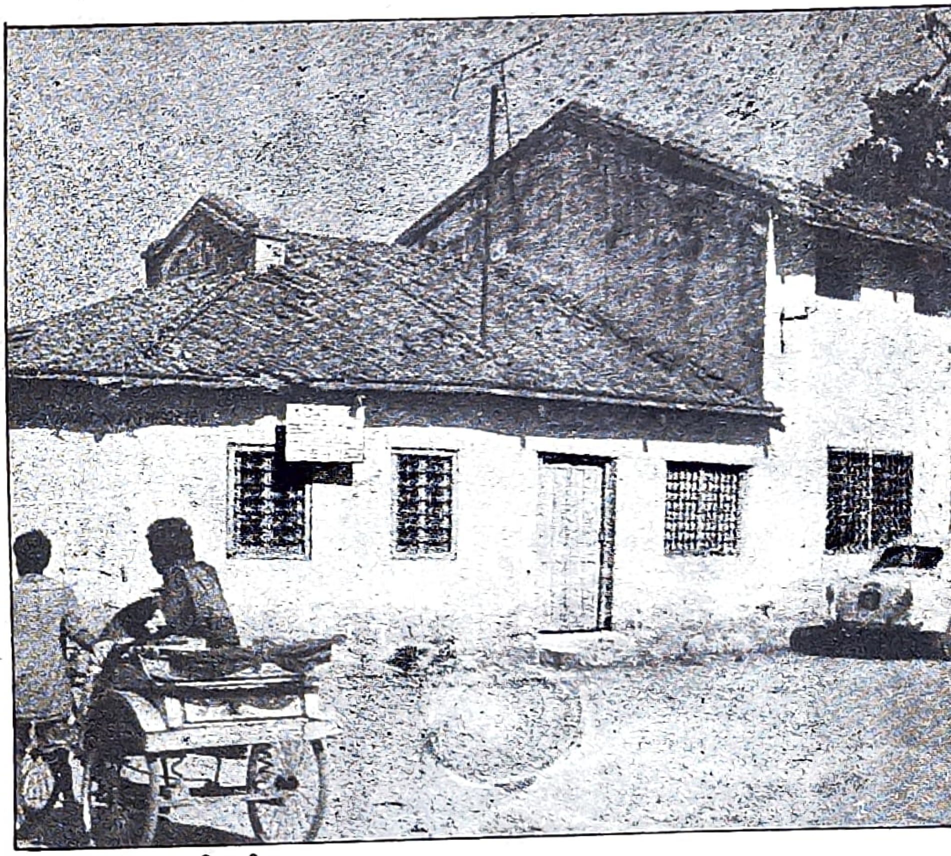
हज़ारीबाग आर्फिसर्स क्लब की स्थापना सन् १९५४ में हुई थी। यह एस०डी०ओ० कोठी के आधे हिस्से में बना हुआ है। क्लब पहुंचने पर सुरजीत सिंह ने देखा कि चपरासी तिलक रोजाना की तरह बाहर स्टूल पर बैठा हुआ था। सुरजीत सिंह रेणु रक्षित को तिलक के पास छोड़कर क्लब के भीतर पहुंचे। अंदर प्रताप जैन अपने कुछ साथियों के साथ ताश खेलने में मशगूल थे। प्रताप जैन क्लब के पुराने मेम्बर थे और उनके पास एम्बेसेडर कार भी थी।

सुरजीत सिंह क्लब में घुसते ही सीधे प्रताप जैन के पास पहुंचे और उनसे कहा, कि एक लड़की, जिसकी उम्र करीब बारह साल है, भटक गयी है। वे अपनी कार से उसे पतरातू गांव पहुंचा दें। प्रताप जैन ताश खेलने में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने तत्काल वहां से उठने से इनकार कर दिया। प्रताप जैन के इनकार करते ही सुरजीत सिंह और परेशान हो गये कि इस छोटी लड़की को घर कैसे पहुंचाया जाये। उन्होंने सोचा कि क्यों नहीं इसे अपनी स्कूटर से ही पहुंचा दिया जाये। इतना सोचकर सुरजीत सिंह बाहर आये और चपरासी तिलक को उस लड़की को देखते रहने को कहकर अपनी स्कूटर लाने के लिए चल पड़े।

उस समय तक ठंड और अधिक हो गयी थी। कोहरे की वजह से सड़क पर पैदल चलना भी दूभर हो रहा था। सुरजीत सिंह घर जाते-जाते सोच रहे थे कि इस ठंड में स्कूटर से पतरातू गांव जाना क्या उचित होगा? पर लड़की का चेहरा ध्यान में आते ही उनके कदमों की रफ्तार तेज हो जाती थी।

घर पहुंचकर सुरजीत सिंह ने ग्रिल खोली और अपनी स्कूटर बी०आर०वी० ५३१९ बाहर निकाल लाये। ग्रिल खुलने की आवाज पर दिलजीत कौर बाहर निकलीं तो पाया कि सुरजीत सिंह स्कूटर स्टार्ट कर रहे हैं। इतनी रात को स्कूटर लेकर बाहर जाते देख दिलजीत का मन आशंकाओं से भर उठा। उन्होंने सुरजीत सिंह से पूछा, "इस ठंड में फिर कहां जा रहे हो? किसी की तबियत खराब हो गयी है क्या?

"नहीं, दरअसल एक लड़की अपना घर भूल गयी है, उसे पहुंचा कर आता हूं।" सुरजीत सिंह ने पत्नी को उत्तर देते हुए कहा।



हजारीबाग का आफिसर्स क्लब

दिलजीत कौर माननेवाली नहीं थीं। उन्होंने फिर पूछा, "कहां पहुंचाना है?"

"झंडा चौक तक पहुंचाकर आता हूं।" सुरजीत सिंह पत्नी को पतरातू जाने की बात बताना नहीं चाहते थे। झंडा चौक का नाम सुनकर दिलजीत कौर आश्वस्त हो गयीं।

स्कूटर लेकर जब सुरजीत सिंह क्लब पहुंचे, तो साढ़े नो बज रहे थे। क्लब के गेट पर गाड़ी रोककर सुरजीत ने वहीं से चपरासी तिलक को लड़की को भेज देने के लिए आवाज दी। अगले ही पल तिलक उस लड़की के साथ वहां आ पहुंचा। सुरजीत सिंह ने रेणु रक्षित को गाड़ी पर बैठने को कहा।

नन्ही रेणु रक्षित स्कूटर पर दोनों तरफ पैर फैलाकर बैठ गयी।

सुरजीत सिंह स्कूटर स्टार्टकर पटना-रांची मार्ग पर रामगढ़ की ओर बढ़ चले। कोहरे की वजह से गाड़ी काफी धीमे चलाने की विवशता थी। संत कोलम्बस कालेज से ज्यों ही स्कूटर कुछ आगे बढ़ी, सुरजीत सिंह को अचानक खयाल आया कि रेणु सिर्फ फ्राक पहने हुए हैं। ठंड में भी उसने स्वेटर या शाल नहीं ओढ़ रखी है। अतः उन्होंने स्कूटर रोक दी। स्कूटर रुकते ही रेणु बोली, "मेरा गांव तो अभी दूर है, यहां क्यों रुक गये?"

"बेटी, तुम्हें ठंड लग रही होगी। जरा डिक्की से तुम्हारे लिए शाल निकाल दूं।" सुरजीत सिंह ने डिक्की से शाल निकालते हुए कहा। उस समय रात के करीब दस बज रहे थे। चारों तरफ नीम सन्नाटा छाया हुआ था। रोड के अगल-बगल से झींगुर की आवाज तीखी हो चुकी थी। शाल देकर सुरजीत सिंह ने फिर स्कूटर स्टार्ट की और पतरातू गांव की तरफ चल पड़े।

पतरातू गांव अभी तीन किलोमीटर दूर था, कि सुरजीत सिंह रेणु रक्षित से उसके गांव का ठीक-ठीक रास्ता पूछने ज्यों ही पीछे मुड़े, सामने से आ रही एक ट्रक की पीली रोशनी में उन्होंने जो देखा, उनके होश उड़ गये। स्कूटर की पिछली सीट से लड़की रेणु रक्षित गायब थी और उसकी जगह एक उल्लू सीट से चिपका बैठा था। उल्लू की आंखों से मानों अंगारे बरस रहे थे। एकबारगी सुरजीत के मन में विद्युत गति से हजारों-हजार सवाल कौंध गये, कि लड़की गयी कहां, अभी तक तो वह बैठी थी। यह उल्लू कहां से आ गया? सुरजीत को लगा,

उन्हें धोखा हो गया है। लिहाजा, उन्होंने फिर पलटकर आश्वस्त होने के लिए देखा, पर वही उल्लू पिछली सीट पर चिपका बैठा था। सुरजीत को लगा, कि अब वे स्कूटर से गिर जाएंगे। भय से जाड़े की उस अंधेरी रात में उनका सारा शरीर पसीने से भीग गया था। हैंडिल पर उनकी मुट्ठियों की पकड़ लगभग छूट गयी। फिर उन्होंने अपने आपको पूरी शक्ति बटोरकर संभाला और वापस घर की तरफ स्कूटर की गति पूरी तेजकर बढ़ चले। तेज रफ्तार से भागती स्कूटर पर फिर भी सुरजीत अपना सुध-बुध खोये बैठे थे।

पटना–रांची मार्ग, आबकारी नाका से एक किलोमीटर पीछे लौटकर सुरजीत सिंह ने एक धचके से स्कूटर रोक दी और बगैर स्टैंड पर खड़ी किये ही स्कूटर छोड़ कूद पड़े।

उस नीम अंधेरी रात में स्कूटर गिरने की आवाज गूंज उठी। पलटकर जब सुरजीत सिंह ने स्कूटर की तरफ देखा तो पाया, वही लड़की रेणु रक्षित वहां पहले की तरह खड़ी फूट-फूटकर रो रही थी। लड़की सुरजीत की स्कूटर से चंद गज पर खड़ी थी। सुरजीत को फिर ताज्जुब हुआ कि वह उनसे पहले यहां कैसे पहुंच गयी? एक बार फिर उनके शरीर में झुरझुरी फैल गयी। लड़की सामने की दिशा में बढ़ती जा रही थी। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ रही थी, त्यों-त्यों उसका कद बढ़ता जा रहा था। भय से सुरजीत सिंह का चेहरा जर्द हो गया। वाहे गुरु का नाम लेकर उन्होंने ग्रंथ साहिब का पाठ शुरू कर दिया। पाठ जब पूरा हो गया, तो सुरजीत सिंह ने आंखें खोलीं। लड़की आसपास कहीं नहीं थी। कांपते कदमों से सुरजीत सिंह स्कूटर के पास आये। उन्होंने अपनी घड़ी देखी, रात के ग्यारह बजे थे।

उस दिन पता नहीं क्यों रामगढ़ रूट की गाड़ियों की आवाजाही भी काफी कम थी। सुरजीत ने सोचा, अगर कोई गाड़ी आ जाती है, तो उसके पीछे-पीछे वे हजारीबाग निकल जाएंगे। अब अकेले हजारीबाग स्थित अपने घर तक जाने की हिम्मत वे बटोर नहीं पा रहे थे। सुरजीत को लगा, मानों कुछ ही घंटे के इस अंतराल में उनके शरीर का सारा खून निचुड़ गया है। वे अपने को बिल्कुल अशक्त महसूस कर रहे थे।

बहरहाल, काफी देर खड़े रहने के बाद भी जब कोई गाड़ी नहीं आती दिखी, तो सुरजीत अपनी स्कूटर स्टार्टकर अकेले ही हजारीबाग लौटने को तैयार हुए। वे स्कूटर से कुछ दूर आगे बढ़े ही थे कि सामने से एक अधेड़ आदमी जाता दिखा। उसे देखकर सुरजीत सिंह प्रसन्न हुए, कि कहीं यह व्यक्ति हजारीबाग तो नहीं जाना चाहता है। अगर इसका साथ मिल जाये, तो रास्ते में भय नहीं लगेगा, सुरजीत ने सोचा।

वह अधेड़ आदमी ठंड से बचने के लिए एक ऊनी मंकी कैप, धोती व पांव में जूते पहने हुए था। उसके दाहिने हाथ में बैग लटका हुआ था। वह बहुत धीमे-धीमे चल रहा था। शायद ठंड की वजह से तेज भी नहीं चल पा रहा था। घना जंगल व पहाड़ी रास्ते की वजह से यह पता नहीं लग पाया कि वह किधर से आ रहा था। उसके करीब आते ही सुरजीत सिंह ने स्कूटर रोककर पूछा, "क्या आप हजारीबाग बस स्टैंड की तरफ जा रहे हैं?"

"जी हां, रांची जाने के लिए वहीं से बस पकड़नी है।" उस आदमी ने रुकते हुए सुरजीत सिंह से कहा।

"तो आइए, मेरी स्कूटर पर बैठ जाइए, मैं उधर ही जा रहा हूं। आपको बस स्टैंड पर छोड़ दूंगा।"



सुरजीत को लगा, मानो अब दहशत से उनकी जान निकल जाएगी। वे स्कूटर से एक बार फिर गिरते-गिरते बचे। उनकी जोरों से कराहने की आवाज क्लब के चपरासी तिलक ने सुनी, सो वह भागा हुआ उनके पास पहुंचा। उल्लू का कहीं अता-पता नहीं था। किसी तरह तिलक के साथ सुरजीत सिंह क्लब पहुंचे।

सुरजीत सिंह ने उसे बैठने का इशारा करते हुए कहा।

"चलिए।" वह आदमी सुरजीत सिंह की स्कूटर पर बैठ गया।

सुरजीत सिंह ठीक से उसका चेहरा नहीं देख पाये थे, क्योंकि मंकी कैप से उसका चेहरा आधा ढंका हुआ था। अब सुरजीत सिंह बेफिक्र हो पूरी रफ्तार से स्कूटर को रामगढ़-हजारीबाग सड़क पर दौड़ा रहे थे। कोहरा और घना हो गया था। गाड़ी चलाने में दिक्कत होने के बावजूद सुरजीत जल्दी-से-जल्दी घर पहुंच जाना चाहते थे। वैसे पीछे एक आदमी बैठा लेने की वजह से उन्हें अब भय कम लग रहा था। रास्ता काटने के लिए सुरजीत बीच-बीच में उस व्यक्ति से बातें भी करते जा रहे थे। सुरजीत के हर प्रश्न के उत्तर में वह आदमी 'हूं' या 'हां' ही कह रहा था। उसकी आवाज ऐसी लगती थी, जैसे वह नाक से बोल रहा हो। सुरजीत सिंह को लगा, मंकी कैंप की वजह से शायद ऐसा हो रहा है।

स्कूटर जब संत कोलम्बस कालेज के पास पहुंचा, तो सुरजीत सिंह के मन में व्याप्त भय लगभग दूर हो गया था। वे जब आफिसर्स क्लब के करीब पहुंचे, तो उन्होंने सोचा कि वह पहले क्लब जायेंगे, फिर पीछे बैठे व्यक्ति को बस स्टैंड छोड़ देंगे। उन्होंने पलटकर पीछे बैठे व्यक्ति से कहना चाहा कि बस थोड़ा क्लब में रुककर आपको बस अड्डे छोड़ देता हूं, पर उन्होंने पीछे की सीट पर जो देखा, उससे उनके हाथ-पांव सुन्न पड़ गये। पीछे की सीट पर उस अधेड़ की जगह वही उल्लू सीट से चिपका उन्हें घूर रहा था।

सुरजीत को लगा, मानो अब दहशत से उनकी जान निकल जाएगी। वे स्कूटर से एक बार फिर गिरते-गिरते बचे। उनकी जोरों से कराहने की आवाज क्लब के चपरासी तिलक ने सुनी, सो वह भागा हुआ उनके पास पहुंचा। उल्लू का कहीं अता-पता नहीं था। किसी तरह तिलक के साथ सुरजीत सिंह क्लब पहुंचे। क्लब में कुर्सी पर बैठे सुरजीत देर तक निढाल रहे। एक गिलास पानी तिलक से मांगकर गटक गये, पर उनका मन था कि शांत ही नहीं हो पा रहा था। उन्होंने थोड़ी देर बाद तिलक से कहा कि वह साथ ही चलकर उनको घर पहुंचा दे। तब तक रात के बारह बज चुके थे। चर्च के घड़ियाल के घंटे बारह बार गूंज गये। किसी तरह भारी कदमों से सुरजीत सिंह तिलक के साथ घिसटते हुए घर पहुंचे।

दिलजीत ने जब सुरजीत की हालत देखी, और उनकी आपबीती सुनी, तो रो पड़ीं।

अगले दिन जब संत कोलम्बस कालेज के लोगों ने यह कहानी सुनी, तो कुछेक लोगों ने सुरजीत को बताया कि ऐसा सिर्फ उन्हीं के साथ नहीं हुआ है। दरअसल, रेणु रक्षित नामक वह लड़की और उसका अधेड़ रिश्तेदार उसी रास्ते में एक ट्रक के नीचे दबकर मर गये थे। तब से अनायास ही राहगीरों से इन दोनों की टकराहट हो जाया करती है।

सुरजीत सिंह ने लेखक से कहा, "इस वाकये के बाद से मैं अब रात गये कभी उस रास्ते से गुजरने की हिम्मत नहीं कर पाता हूं।"

स्कूटर की पिछली सीट पर चिपके उल्लू की अंधेरे में रेडियम-सी चमकती आंखों का सुरजीत आज भी जब स्मरण करते हैं, तो उनका शरीर पसीने से भीग जाता है।●

–छाया : मुन्ना साहनी

पूर्वकथा

क्रांतिकारी दल अनुशासन समिति का गठन बैरिस्टर प्रमथ मित्र और पुलिन बिहारी दास ने किया था। त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती सन् १९०६ में समिति के सदस्य बने। नाव से ढाका जाते समय नारायणगंज में पकड़े गये और वहीं जेल में रहे। सन् १९०९ के प्रारंभ में जेल से छूटे। चक्रवर्ती महाशय फरारी की हालत में कभी मल्लाह, कभी कुली या नौकर आदि बनकर रहते थे। समिति के कार्यों में लगातार लगे रहे। सन् १९१२ में वे ढाका में एक खून के मामले में पकड़े गये। वे ढाका षड्यंत्र केस के फरार अभियुक्त थे। अब ढाका जेल में रखे गये। कई महीने बाद बेकुसूर रिहा हुए। चक्रवर्ती महाशय दमा के मरीज हो गये थे। एक साधु से इलाज के दौरान कलकत्ते में गंगा घाट पर फिर पकड़े गये। यह उनकी तीसरी जेल-यात्रा थी। अब पढ़िए दूसरी किस्त...

जेल में तीस बरस

—त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती



अब मेरा बयान लेने के लिए लोमैन साहब आये, टेगार्ट साहब आये, और भी बहुतेरे लोग आये, तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे। मैंने सबसे कहा कि मैं कुछ भी नहीं बताऊंगा। लोमैन साहब ने कहा, "मैं कुछ सवाल पूछूंगा, उनका जवाब चाहिए।" इस बार उनके पास एक चाबी थी। लोमैन साहब ने चाबी दिखाकर पूछा, "यह क्या है?"

मैंने कहा, "किसकी चाबी?"

लोमैन, "किस की चाबी?"

मैं, "ताले की चाबी।"

लोमैन, "कैसा ताला?"

मैं, "लोहे का ताला।"

लोमैन, "इस ताले को कहां लगाते थे? यह मकान का ताला है या संदूक का?"

मैं, "यह मकान का भी हो सकता है और संदूक का भी।"

लोमैन, "तुम्हारा कुर्ता कहां है?"

मैं, "मालूम नहीं।"

लोमैन, "अमृत हाजरा को पहचानते हो?"

मैं, "मैं उसे कैसे पहचानूंगा?"

लोमैन, "तुम क्या उसके घर जाते थे?"

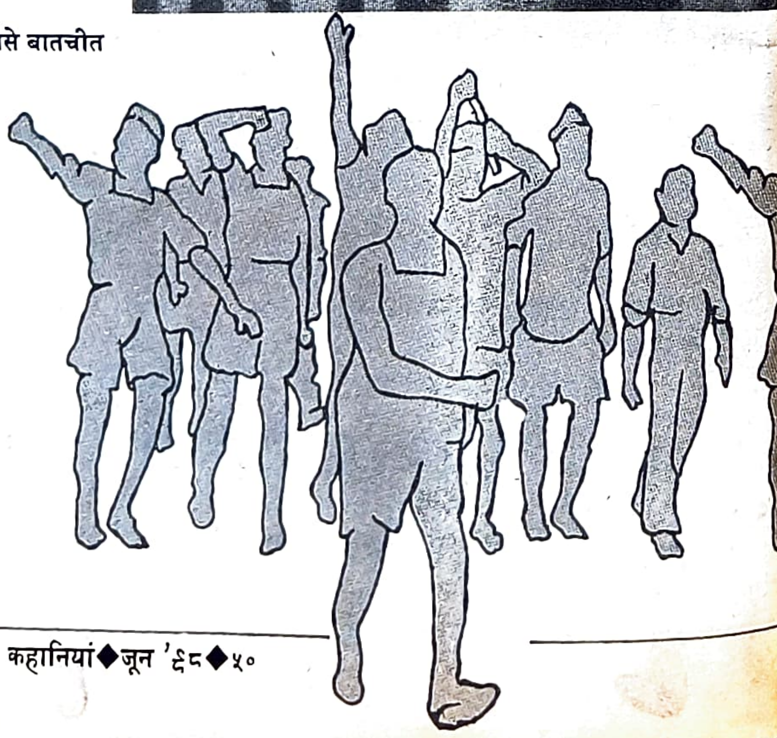
मैं, "मैं उसके घर क्यों जाऊंगा?"

मेरा जवाब सुनकर लोमैन साहब आगबबूला होकर चले गये। मैं नहाते वक्त गिरफ्तार हुआ था, इसलिए मेरे पास धोती-कुर्ता कुछ नहीं था। जो कुछ था, उसे घाट पर ही रख आया था। मालिश करनेवाले के पास ही मेरे कपड़े छूट गये थे। मेरे पास सिर्फ अब पहनी हुई धोती थी। एक दिन मैंने लोमैन साहब से कहा, मेरे पास कपड़े नहीं हैं। उसी दिन साढ़े सात रुपये खर्च करके उन्होंने कपड़े मंगा दिये। अगले दिन एक सार्जेंट ने मुझसे कहा, "तुम बड़े भाग्यवान हो। लोमैन साहब ने अपने रुपये से कपड़े खरीद दिये हैं।"

मैंने कहा, "ब्राह्मण को दान ग्रहण करने की आदत है।"

लोमैन साहब सबसे बहुत मिल-जुल सकते थे। वे अक्सर मुझसे बातचीत

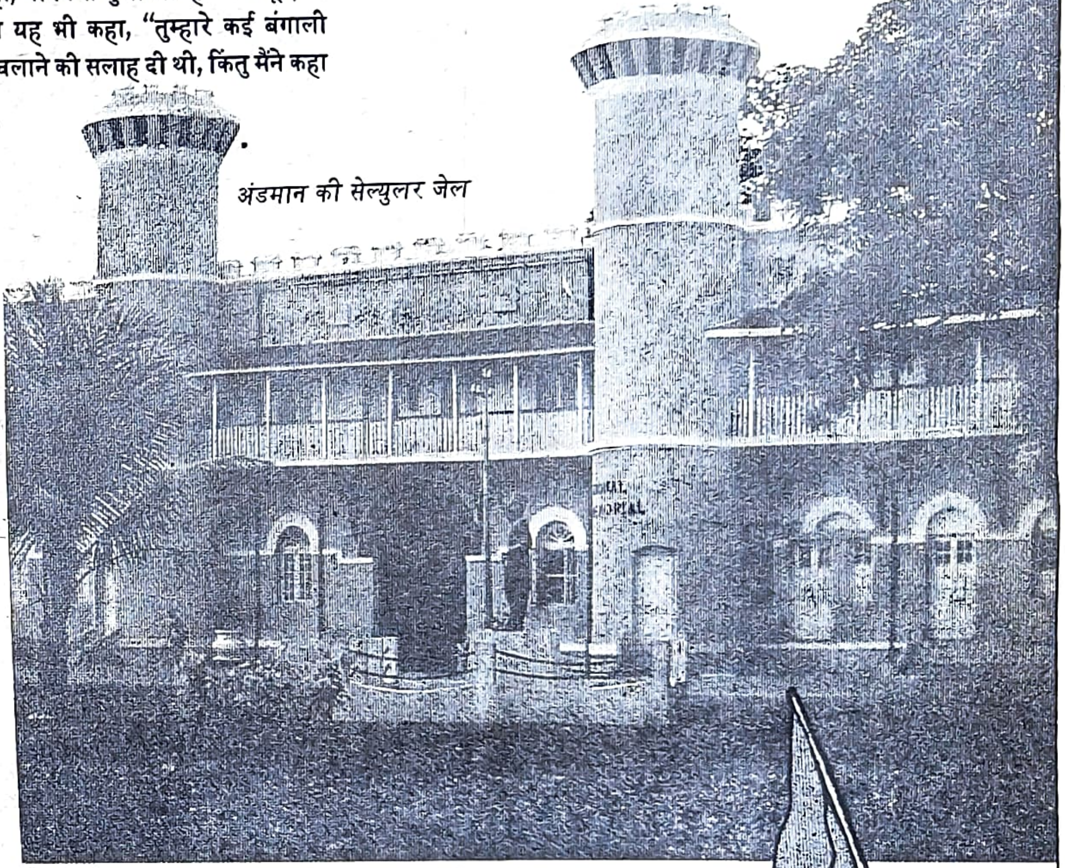
मां, मुझे खुशी से विदा दो, मैं अंदमान जाता हूं। मां, तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि संतान को सदा याद रखना। भारत-जननी, मैं लौटकर आऊंगा और तुम्हारी सेवा में जुट जाऊंगा। मां, तुम्हारे बंधन-मोचन में ही मेरे प्राण जायें। भारतवासियों विदा, बंधु-बांधवगण विदा, पुष्प-तरु-लता विदा, पशु-पक्षीगण विदा।

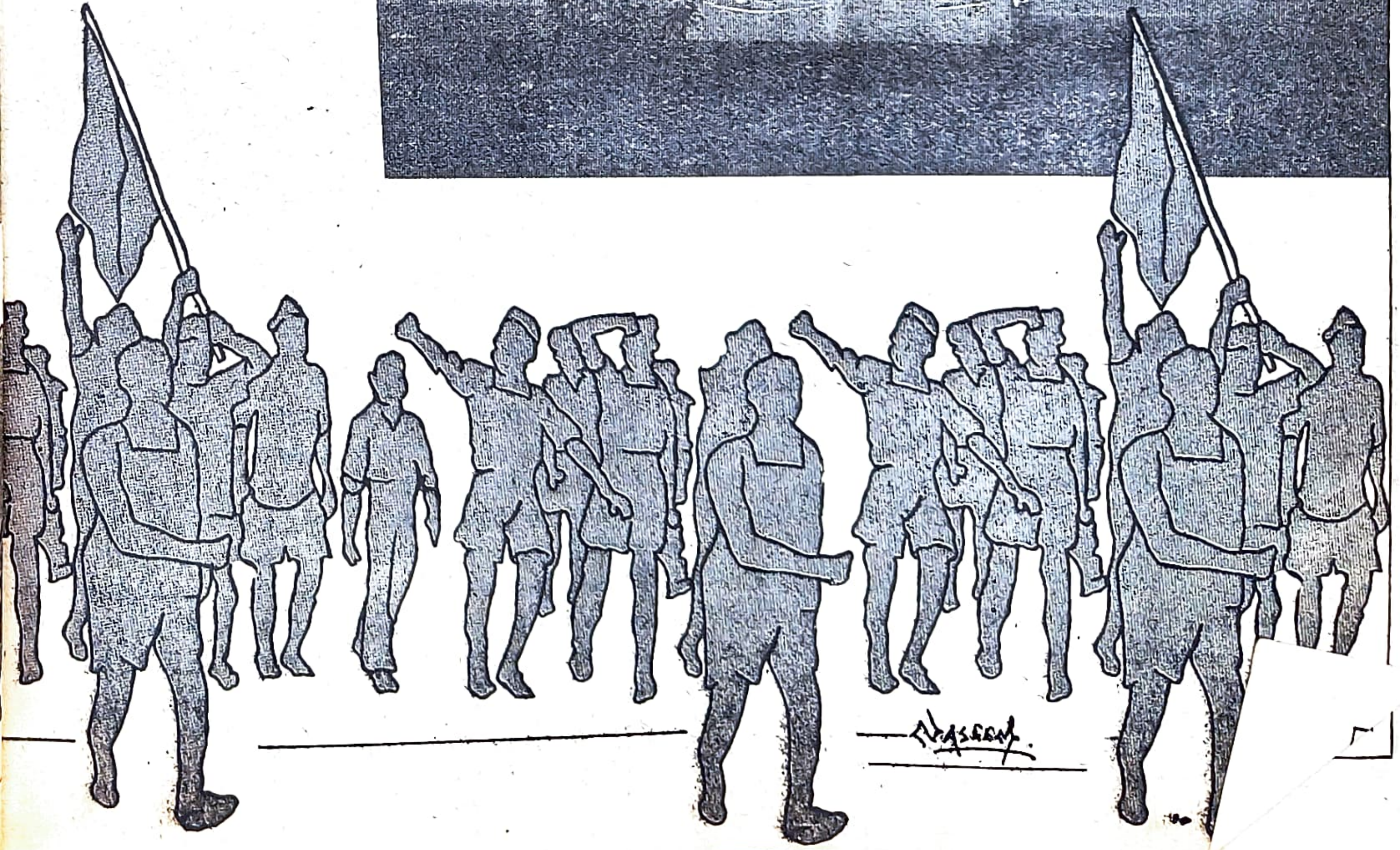


करने आते। उनकी हमेशा यही कोशिश रहती कि बातचीत के सिलसिले में कहीं मुझसे किसी चीज का सुराग मिल जाये। एक दिन उन्होंने कहा, "तुम्हारे वीरेन ने मेरा हाथ तोड़ दिया है।"

मेरी गिरफ्तारी के कुछ दिन पहले कई फरार कार्यकर्ता सलाह-मशविरे के लिए ग्रियर पार्क में इकट्ठे हुए थे। पुलिस को इसकी खबर पहले ही मिल गयी थी। लोमैन साहब ने खुद पुलिस दल को लेकर ग्रियर पार्क को घेर लिया। क्रांतिकारियों ने जब भागने की कोशिश की तो पुलिस से उनकी भिड़ंत हुई। इस हालत में लोमैन साहब की वीरेन चटर्जी से हाथापाई हो गयी। लोमैन साहब वीरेन से अठगुने जवान थे, लेकिन वीरेन जुजुत्सु का पेच जानता था। पेच मारकर उसने लोमैन साहब की कलाई तोड़ दी थी। मैंने लोमैन साहब से कहा, "वीरेन को थाने पर ले जाकर आपने जरूर इसका बदला लिया होगा।"

लोमैन साहब ने कहा, "हरगिज़ नहीं, वीरेन से मुलाकात होने पर पूछकर सारी बातें मालूम कर लेना," उन्होंने यह भी कहा, "तुम्हारे कई बंगाली कर्मचारियों ने उसके खिलाफ मुकदमा चलाने की सलाह दी थी, किंतु मैंने कहा था कि जैसे उसने मुझे मारा, वैसे ही मैंने उसे मारा, बराबर हो गया।" हमारे बंगाली पुलिस कर्मचारियों ने शायद इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि इतने बड़े अंग्रेज अफसर पर कोई हाथ उठाने की हिम्मत कर सकता था। साहब को खुश करने के लिए उन्होंने तरह-तरह की सलाह दी थी। वे भूल गये थे कि लोमैन साहब का जन्म पराधीन देश में नहीं हुआ, वे स्वाधीन देश के आदमी थे। लोमैन साहब ने मेरे सामने वीरेन की बड़ी प्रशंसा की। बोले, "वीरेन बहुत साहसी है, उसके बदन में बहुत ताकत है।" हमारे देश के किसी कर्मचारी को अगर कोई पीटता तो वह इस अपमान को ताजिन्दगी याद रखता और तरह-तरह से बदला लेने की कोशिश करता। लेकिन लोमैन साहब उस दिशा में नहीं गये। उन्होंने खुलेआम वीरेन के साहस और शक्ति की प्रशंसा की। उन्होंने कहा, "जब मैं विद्यार्थी था, तो न जाने कितनी बार मारपीट की थी। अगर तुम कभी इंग्लैंड गये तो देखना कि विद्यार्थी रास्ते में कितनी मारपीट कर रहे हैं। हमारी मारपीट सड़कों पर ही समाप्त हो जाती है। तुम्हारे देश में यह मामला कुछ और ही है। किसी से झगड़ा हुआ, तो वह एक दिन अंधेरे में पीछे से लाठी मार कर भाग जायेगा।" यहीं स्वाधीन और पराधीन जातियों के मनोभाव का अंतर दिखलाई पड़ता है। हमारे देश में भी किसी समय वीरों का ऐसा ही सम्मान था, मगर तब भारत स्वाधीन था।


अंडमान की सेल्युलर जेल



मेरे हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी बांधकर हथियारबंद सिपाहियों के पहरे में मुझे बरीसाल जेल भेज दिया गया। प्रतुलचन्द्र गांगुली, मदनमोहन भौमिक, रमेश चौधरी, खगेन चौधरी और मेरे खिलाफ अतिरिक्त बरीसाल षड्यंत्र मुकदमा चलाया गया। इस मुकदमे में तीन आदमी मुखबिर हो गये थे, और यह एक साल से ऊपर चला था। इस मुकदमे में सरकार के तीन लाख से ऊपर रुपये खर्च हुए। बैरिस्टर विजयचंद्र चटर्जी और वकील श्रीशचंद्र चट्टोपाध्याय, मनोरंजन बंद्योपाध्याय आदि हमारी पैरवी कर रहे थे। दूसरी ओर सरकार की तरफ से बैरिस्टर एन० गुप्त, वकील फजलुलहक तथा बरीसाल के और कई मुख्य वकील खड़े किये गये थे। बरीसाल जेल में गोरखा सिपाही हमारे पहरे के लिए तैनात किये गये थे। हम पांचों एक साथ रखे गये थे। जेल के आई०एम०एस० सुपरिंटेंडेंट ने मेरी डाक्टरी परीक्षा करके कहा कि इसे दमा हो गया है। दमे का इलाज चला, परंतु कोई फायदा न हुआ। मुखबिरों ने कहा कि मैं कालीचरण, बिरजा, हरेंद्र आदि नामों से परिचित था। मुखबिरों और सरकारी कर्मचारियों की गवाही से और भिन्न-भिन्न स्थानों की तलाशियों में मिली बंदूकों, रिवाल्वरों और कागजात से सरकार ने साबित किया कि हम सम्राट के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करने का षड्यंत्र कर रहे थे।

(रजनीदास, गिरीन्द्र दास और प्रियनाथ आचार्य, ये तीनों मूल बरीसाल षड्यंत्र मुकदमे में अभियुक्त थे। रजनी और गिरीन्द्र मूल बरीसाल केस में भी मुखबिर थे। उन्हें माफी मिल गयी थी, प्रियनाथ को ७ वर्ष की सजा हुई थी)।

जज ने हमें दोषी करार देकर मुझे पंद्रह साल की कालेपानी की सजा और शेष चारों को दस-दस साल की कालेपानी की सजा दी। हमने हंसते हुए जेल की राह पकड़ी। अदालत से जेल पहुंचते ही हमें सीकली बेड़ी पहना दी गयी, क्योंकि हमारी सजा लंबी थी। सभी ने कहा कि सेंट्रल जेल में जाने पर हमारी बेड़ियां काट दी जायेंगी। कुछ ही दिनों के अंदर हमारा बरीसाल जेल से प्रेसिडेंसी जेल (कलकत्ता) को चालान कर दिया गया। इस यात्रा में हमारे पैरों में बेड़ियां, हाथों में हथकड़ियां और कमर में रस्सी बंधी हुई थी। हमारे साथ हथियारबंद सिपाही थे। हम पांचों एक साथ चले। रास्ते में जैसा इंतजाम किया गया था, उसे देखकर हमें कुछ गर्व ही हुआ था। हमने आशा की थी कि प्रेसिडेंसी जेल में पहुंचने पर हमारी बेड़ियां काट दी जायेंगी, लेकिन यहां बात कुछ और ही हुई। प्रेसिडेंसी जेल में पहुंचने पर सीकली बेड़ी काटकर हमें डंडा बेड़ी पहना कर ४४ डिग्री में बंद कर दिया गया।

(बेड़ी तीन तरह की होती है—सीकली बेड़ी, डंडा बेड़ी और आड़िया बेड़ी। कैदी के दोनों टखनों में लोहे के दो कड़े पड़े होते हैं। इन कड़ों में दो जंजीरें होती हैं। इन दोनों जंजीरों के दूसरे सिरे एक ही कड़े में डाल दिये जाते हैं। कैदी इस कड़े को हाथ में पकड़े रहता है। इसे सीकली बेड़ी कहते हैं। जब दो जंजीरों के बदले लोहे के दो डंडे लगे हों तो वह डंडा बेड़ी होती है। आड़िया बेड़ी में दोनों टखनों के कड़ों के बीच में लोहे का एक डंडा जमीन के समानांतर रहता है, हाथ में नहीं पकड़ा जाता। सीकली बेड़ी और डंडा बेड़ी में तीन कड़ों से समद्विबाहु त्रिभुज का आकार बनता है, जिसमें जंजीरें या डंडे समद्विबाहु बनाते हैं। आड़िया बेड़ी में दो ही कड़े होते हैं। उनके बीच का डंडा पृथ्वी के समानांतर सरल रेखा बनाता है। सीकली बेड़ी में सबसे कम कष्ट होता है, आड़िया बेड़ी में सबसे अधिक)

श्री अरविन्द ने इसी ४४ डिग्री में रहने के कुछ दिन बाद ही का भगवान दर्शन पाया था और जेल से छूटने के पश्चात पांडिचेरी में आश्रय प्राप्त करके अध्यात्म शक्ति के उत्स-संधान में ध्यानमग्न हो गये। ४४ डिग्री में जैसी व्यवस्था थी, उससे साधारण आदमी के लिए कुछ ही दिनों में आंखों के सामने अंधेरा छा जाता था। एक बार छुटकारा पाने पर फिर कोई जेल जाने का नाम नहीं लेता था—क्रांति का रास्ता ही छोड़ देता था। ४४ डिग्री को तनहाई जेल कहा जा सकता है। छोटे-से सेल में रात-दिन बंद रहना पड़ता था। किसी से मुलाकात नहीं होती थी, या बातचीत करने की कोई सूरत नहीं थी।

दिन में एक बार सुपरिंटेंडेंट अपने दल-बल के साथ आकर देखभर जाते



लेखक त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती

थे। हमें टाट सीने का काम दिया गया था। अगल-बगल की सेलों में रहने पर भी हम एक-दूसरे से बातचीत नहीं कर पाते थे। बातचीत करने के अपराध में हमें बीच-बीच में हथकड़ी की सजा दी गयी थी। हमारे भात में धान और कंकड़ इन दोनों में क्या अधिक था, यह कहना कठिन है। एक दिन मैंने कविता कर डाली—

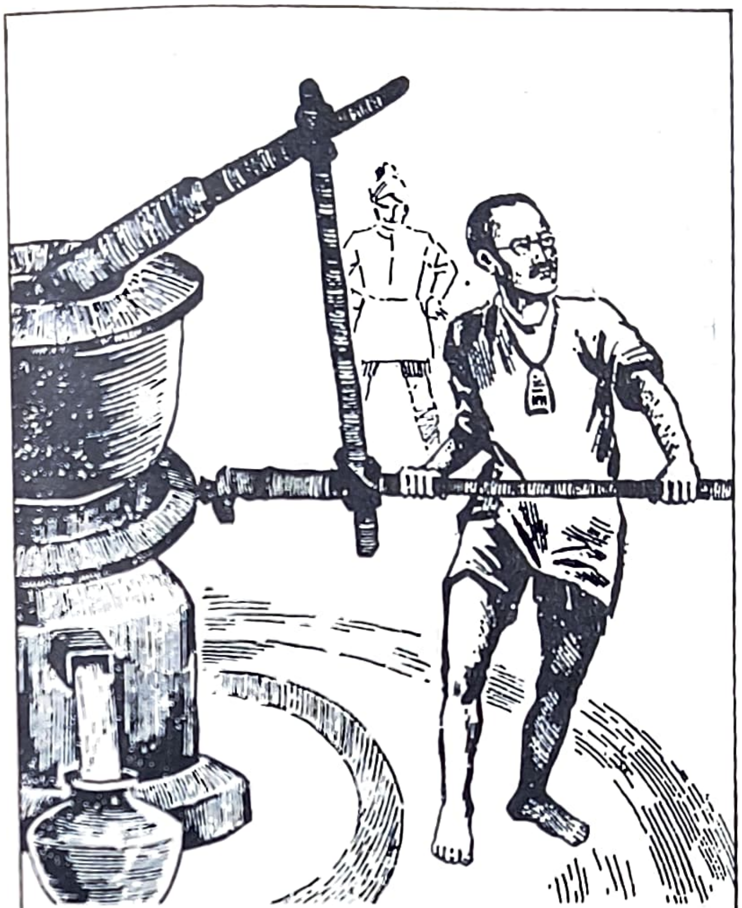
जेलर बेटा बड़ो खच्चर
खेते देय धान और पाथर...
(जेलर बेटा (साला) बड़ा शैतान, खाने को देता है पत्थर और धान।)

तब जाड़े का मौसम था। मैं दमे का मरीज था, लेकिन मांगने पर भी एक और फालतू कंबल नहीं मिला। इसलिए फिर कविता की—

सुपरिंटेंडेंट बड़ो पाजी,
बेशी कंबल दिते हय ना राजी।
(सुपरिंटेंडेंट बड़ा नंबरी पाजी, ज्यादा कंबल देने को होता न राजी।)

लिखने के लिए हमारे पास कागज-कलम कुछ भी नहीं था। जुबानी कविता तैयार करते और चिल्लाकर एक-दूसरे को सुनाते थे। प्रतुल बाबू रवीन्द्रनाथ का अनुकरण करते हुए कविता कहते थे। मुझे लक्ष्य करके उन्होंने एक कविता लिखी थी—"यदि महाराज...ना आशितो..." (यदि महाराज न आते)। हमें कई महीने जाल डिग्री (लोहे के जाल से घिरे पिंजरे) में काटने पड़े थे।

(सेल को बिहार-बंगाल की जेलों में डिग्री, उत्तर प्रदेश में कोठरी या काल कोठरी और पंजाब में चक्की कहते हैं। कोठरी में या तो कैदी के काम करने के लिए चक्की गाड़ी होती है, या काम के समय चक्की लाकर रख दी जाती है, इसलिए पंजाब में कोठरी को चक्की कहते हैं। एक साथ जितनी डिग्रियां



अण्डमान में बैरिस्टर विनायक सावरकर बैल की जगह यानी कोल्हू में जुते हुए

बैल की तरह जेल में कोल्हू चलाते थे सावरकर

हों, उसके अनुसार उसका नाम पड़ जाता है, जैसे प्रेसीडेंसी जेल में ४४ डिग्री, मेदिनीपुर जेल में १०० डिग्री, ढाका जेल में २० डिग्री या ४० डिग्री। डिग्री दो प्रकार की होती हैं—कोठरी और काल-कोठरी। कोठरी में कई कोठरियां एक पंक्ति में होती हैं और उन सबके सामने एक लंबा बरामदा होता है। काल-कोठरी में भीतर काल-कोठरी होती है और उसके आगे उतनी ही बड़ी कोठरी, इस कोठरी की चार दीवारें होती हैं, छत नहीं होती। कोठरियों के आगे तंग गलियारा होता है। प्रेसीडेंसी जेल में ४४ डिग्री ४४ काल-कोठरियां हैं। गलियारे में २२ कोठरियों के बाद एक फाटक है।

एक बड़े कमरे में तार के जाल के छोटे-छोटे बहुत-से सेल होते हैं, चिड़िया घर के पिंजरों जैसे। इन्हें जाल डिग्री कहते हैं। ये सब एक साथ खोले और बंद किये जा सकते थे। एक-एक सेल अलग भी खोला या बंद किया जा सकता था। ये अब किसी जेल में नहीं हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद के जेल सुधार में उनको हटा दिया गया।)

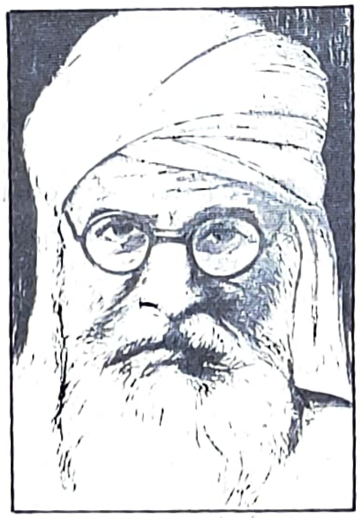
लोमैन साहब और टेगार्ट साहब अक्सर बीच-बीच में प्रेसीडेंसी जेल में राजनीतिक कैदियों से मिलने आते थे। एक दिन लोमैन साहब मुझसे मिलने आये। मैंने उनसे प्रश्न किया कि आप लड़ाई में क्यों नहीं जा रहे? उन्होंने कहा, "मैं और मिस्टर टेगार्ट लड़ाई में जाने के लिए काफी कोशिश कर रहे हैं, परंतु सरकार की अनुमति नहीं मिल रही है। सरकारी हुक्म है कि उच्चपदस्थ कर्मचारी पद त्यागकर जाने नहीं पायेंगे, लेकिन हम अभी भी कोशिश कर रहे हैं।"

मैंने कहा, "लड़ाई में जाने पर आप मारे जायेंगे। आपके बीवी-बच्चे हैं। आप लंबी तनख्वाह की नौकरी कर रहे हैं। आप लड़ाई में जाने के लिए बेचैन क्यों हैं?"

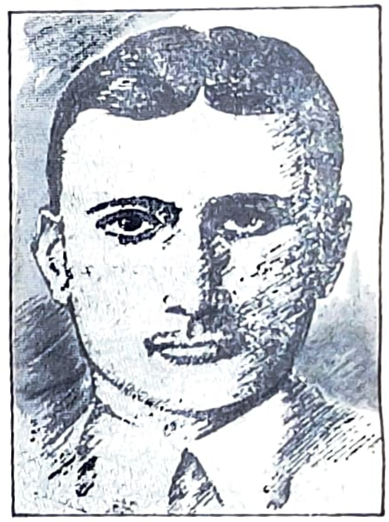
लोमैन साहब ने जरा उत्तेजित होकर उत्तर दिया, "आज अगर हैजे से मेरी मौत हो जाये, तो मेरे बीवी-बच्चे को कौन देखेगा? एक दिन मरना ही होगा। अगर देश के लिए मेरी मौत हो जाती है, तो अपने को गौरवान्वित ही समझूंगा।"

यही सच्चा देश प्रेम है। मेरा देश इस वक्त खतरे में है, इस वक्त बीवी-बच्चे की बात सोचने से काम नहीं चलेगा। प्राणों की माया करने से काम नहीं चलेगा। सबसे पहले देश को बचाना होगा। स्वाधीन देश के लोगों को यह तर्क के द्वारा समझाना नहीं पड़ता। उनके अंदर सच्चा देशप्रेम है और इसी लिए वे देश की स्वाधीनता की रक्षा कर सकते हैं।

स्वाधीनता ही देशवासियों को देश-प्रेमी बना देती है। भारत जब स्वाधीन था, तब इस देश में भी देशप्रेमियों की कमी नहीं थी। तब वे भी देश के लिए प्राणों की बलि चढ़ा पाने पर अपने को गौरवान्वित समझते थे। आज भारतवर्ष पराधीन है, इसी लिए हम स्वार्थी, दुर्बल और कायर हो गये हैं। आज हमारे



बाबा गुरुमुख सिंह



बाबा पृथ्वी सिंह आजाद

देश के कितने ही लोग लोमैन टेगार्ट की खुफियागीरी कर रहे हैं।

कई दिनों के बाद लोमैन साहब मुझसे फिर मिलने आये। मेरे अंदर कमजोरी पैदा हो रही है या नहीं, वे इसकी जांच करने लगे। हाईकोर्ट में हमारी अपील होगी, इसलिए उन्होंने कहा, "आशु मुखर्जी को तुम लोग नहीं पाओगे, वह राजनीतिक मुकदमे के असामियों को छोड़ देता है, सही तरीके से फैसला नहीं करता है।"

इसके कई दिन बाद हमारे बैरिस्टर विजयचंद्र चटर्जी हमसे मिलने आये तो मैंने उन्हें यह खबर दे दी। अदालत में उन्होंने इस बात को जाहिर कर दिया था। कुछ दिन बाद लोमैन साहब फिर मेरे पास आये। मुझे तब दमे का दौरा उठा था, बोला नहीं जा रहा था। उन्होंने मुझे धमकाते हुए पूछा कि मैंने विजयचंद्र चटर्जी से क्या कहा था। फिर बोले, "तुम पर इतना गुस्सा आया था कि उस समय तुम्हें पाता तो गोली मार देता।"

एक दिन जेल के इंसपेक्टर जनरल आये। मैंने उनसे कहा कि मुझे दमा हो गया है, लेकिन मुझे अस्पताल में नहीं ले जाया जाता, मुझसे अभी भी काम कराया जाता है, मुझे कोई दवा नहीं मिलती है। यहां तक कि मांगने पर साबूदाना तक नहीं मिलता। मेरा टिकट हाथ में लेकर वह बुदबुदाये, 'पुराने चोर की तरह इतने नाम।' फिर टिकट फेंककर चले गये।

इसी बीच हाईकोर्ट में हमारी अपील दायर हो गयी थी। चितरंजन दास महाशय ने भी हमारी पैरवी की थी। अपील में प्रतुल बाबू और रमेश बाबू छोड़ दिये गये, मेरी सजा पंद्रह साल से घटाकर दस साल कर दी गयी। खगेन बाबू और मदन बाबू की दस-दस साल की सजा बहाल रही। प्रतुल बाबू और रमेश बाबू छोड़ भले ही दिये गये, लेकिन जेल से रिहा नहीं हुए। जेल ही में

नजरबंद रहे। उस जमाने में हर कैदी के गले में लोहे की हंसुली पहना दी जाती थी और उसमें एक तिकोनी लकड़ी लटकती रहती थी। लकड़ी पर कैदी का नाम, नंबर, दफा, मियाद और रिहाई की तारीख आदि लिखी रहती थी। हंसुली गले में इस तरह पहनायी जाती थी कि उसे खोला नहीं जा सकता था, और रात में सोने में बड़ी तकलीफ होती थी। उन दिनों जेल में खाने-पीने के बर्तन लोहे के तसले और कटोरे थे।

हम जेल में थे, लेकिन बाहर बहुत-सी बातें हो गयी थीं। पंजाब में विप्लव की चेष्टा व्यर्थ हो गयी थी, लाहौर और बनारस षड्यंत्र के मुकदमे शुरू हो गये थे। बहुत-से लोग पकड़े गये थे और कुछ को फांसी भी हो गयी थी। रासबिहारी बाबू पकड़े नहीं गये। उन्होंने जब देखा कि अब कोई आशा नहीं है, भारत में रहना निरापद नहीं है, तो विदेश जाना तय किया। सोचा, शायद वहां से कुछ किया जा सके। रासबिहारी बाबू जापान चले गये।

रासबिहारी बसु, करतार सिंह, ज्वाला सिंह आदि क्रांतिकारियों ने उत्तरी भारत में बन्नू-पेशावर से सिंगापुर तक बहुत-सी छावनियों के सिपाहियों से इंतजाम किया था कि वे सभी एक ही दिन एक ही साथ भारत में सब जगह स्वाधीनता घोषित करके राष्ट्रीय सरकार स्थापित करेंगे। लेकिन नाना कारणों से घोषणा का दिन धीरे-धीरे बदलने लगा और बाद में यह खबर सरकार के पास पहुंच गयी। सरकार तुरंत सावधान हो गयी और धर-पकड़ शुरू हो गयी। सरकार ने उन दिनों बंगाल में बारह सौ आदमियों को बिना मुकदमा चलाये जेलों में बंद कर दिया। अनेक लोगों को भिन्न-भिन्न दफाओं में सजा दी गयी। सरकार ने सारे देश में दमन चलाया। सन् १९१७ तक नाना बाधाओं और विपत्तियों के बीच भी क्रांति की गति बड़ी तेजी से बढ़ती रही थी।

अब हमारी अंदमान जाने की बारी आयी। अब वहीं के नरक को गुलजार करना होगा। साधारणतः रोगियों को अंदमान नहीं भेजा जाता, इसलिए मुझे भेजा जायेगा या नहीं, इसमें संदेह था। कुछ ही दिनों में यह संदेह दूर हो गया। अंदमान यात्रियों के स्वास्थ्य की परीक्षा एक मेडिकल बोर्ड करता था। मैं दमे का मरीज था। बोर्ड ने मेरी परीक्षा की। एक डाक्टर ने कहा, "इसे दमा है।"

सुपरिंटेंडेंट ने कहा, "यह आदमी जरूर जायेगा।"

बाद में देखा, मेरे टिकट पर लिखा है, दमा है। जेल के इंसपेक्टर जनरल का पत्र–'यात्रा के योग्य।' अब कोई संदेह नहीं रह गया। इस जेल में हम लोगों ने करीब नौ महीने काटे थे। अब अंदमान जाना होगा। अंदमान से लौट पाऊंगा या नहीं, इसका कोई ठिकाना नहीं। न लौटने की संभावना अधिक है। निर्जन कोठरी में बैठे कितनी ही बातें याद आ रही हैं, लेकिन दिल की बात किसी के सामने प्रकट करने का उपाय नहीं है। शायद सदा के लिए विदा होकर जा रहा हूं। बंधु-बांधव, आत्मीय-स्वजन, किसी से मुलाकात नहीं हुई, किसी से दो बातें भी नहीं किया जा सका, किसी से विदा लेने का मौका भी नहीं मिला। जाने के पहले कोठरी की दीवार पर सुर्खी से लिखा–

"बिदाय दे मा प्रफुल्ल मने जाइ आमि आन्दामाने,
एइ प्रार्थना कोरि मा गो मने जैनो रेखो सन्ताने।
आबार आसिबो भारत-जननी मातिबो सेवाय,
तोमार बंधन मोचने मा गो जैने ए प्राण जाय।
बिदाय भारतवासी, बिदाय बंधु बांधवगण,
बिदाय पुष्पतरुलता बिदाय पशु पाखीगण।
क्षमो सबे जतो कोरेछि अपराध ज्ञाने अज्ञाने,
बिदाय दे मा प्रफुल्ल मने, जाइ आमि आन्दामाने।"

(मां मुझे खुशी से विदा दो, मैं अंदमान जाता हूं। मां तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि संतान को सदा याद रखना। भारत-जननी, मैं लौटकर आऊंगा और तुम्हारी सेवा में जुट जाऊंगा। मां, तुम्हारे बंधन-मोचन में ही मेरे प्राण जायें। भारतवासियों विदा, बंधु-बांधवगण विदा, पुष्प-तरु-लता विदा, पशु-पक्षीगण विदा। मैंने ज्ञान या अज्ञान में जो अपराध किये हैं, उन्हें माफ कर दो। मां, मुझे खुशी-खुशी विदा दो, मैं अंदमान जाता हूं।)

हम जेल से रवाना हुए। हमारे हाथों में हथकड़ियां, पैरों में बेड़ियां पहले ही से थीं। अब कमर में रस्सी बांधी गयी और हम जेल दफ्तर के सामने आकर दो-दो की पांत में बैठ गये। जेलर साहब देखने आये। मुझसे बोले, 'तुम वहीं मरोगे।' यह उनकी भविष्यवाणी थी, लेकिन फलवती नहीं हुई। इसके बाद हम लोग बंदूकधारियों के पहरे में जहाज पर जा चढ़े। यह हमारी पहली समुद्र-यात्रा थी। रवाना होने के समय हमारे मन में दुख हुआ हो, ऐसा नहीं मालूम होता। जहां तक याद है, हम खूब प्रसन्न थे।

तीन दिन, तीन रात जहाज में रहे। चौथे दिन करीब दस बजे हम पोर्ट ब्लेयर पहुंचे। रास्ते में हमें खाने के लिए चिऊड़ा और गुड़ मिलता था, लेकिन कुछ नहीं खा सका। जहाज इस तरह हिल-डुल रहा था कि कोई बिस्तर से सिर न उठा सका। सिर उठाते ही कै होती। शाम-सबेरे हवा खिलाने के लिए हमें जहाज के डेक पर ले जाया जाता था। लहरों के साथ-साथ जब जहाज ऊपर उठता तो लगता था कि वह आसमान छू लेगा और फिर जब नीचे जाता तो लगता कि पाताल में चला जायेगा। सन् १९१६ के बीचोबीच हम अंदमान पहुंचे थे। साधारण कैदियों सहित हम लोग कुल ९६ आदमी थे। इनमें दस औरतें भी थीं। उनके साथ दो-तीन बच्चे भी थे।

अंदमान अस्वास्थ्यकर स्थान होने पर भी यहां का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुंदर है। समुद्र के बीच में पहाड़ और पहाड़ पर सेलुलर जेल। जेल के तिमंजिले से समुद्र और पहाड़ का दृश्य मनोरम लगता था। अंदमान जेल में ७०० कैदियों को रखने की व्यवस्था है, ७०० कोठरियां हैं। अंदमान द्वीप पुंज में दो सौ छोटे-बड़े द्वीप हैं। साधारण कैदियों को अंदमान जेल में तीन महीने से लेकर दो साल तक रखा जाता है। बाद में उन्हें भिन्न-भिन्न टापुओं पर भेज दिया जाता है। सरकार की तरफ से उन्हें खाना मिलता है, मगर वहां उन्हें जेल से कुछ अधिक आजादी रहती है। राजनीतिक कैदियों के लिए कोई अलग इंतजाम नहीं किया जाता था, उन्हें बराबर जेल में ही रहना पड़ता था। अंदमान जेल की स्थापना राजनीतिक कैदियों के लिए ही की गयी थी और राजनीतिक कैदियों की चेष्टा से ही वह बंदी उपनिवेश उठा दिया गया। सन् १८५७ के विद्रोह के बाद इतने आदमियों को सजा दी गयी थी कि भारतीय जेलों में जगह नहीं रह गयी थी। इसलिए सरकार ने उन्हें अंदमान भेजने की व्यवस्था की। उन दिनों अंदमान और भी अस्वास्थ्यकर था। आजकल अंदमान में कितने ही सुंदर शहर देखने को मिलते हैं। ये शहर उन्हीं राजनीतिक कैदियों की लाशों पर बने हैं। अभागे कैदियों ने धूप में जलकर, वर्षा में भीगकर, मलेरिया और पेचिश से लड़ाई लड़कर, जंगल काटकर, छोटे-छोटे शहरों की नींव डाली थी। उन दिनों अंदमान की हालत ऐसी थी कि कोई घर नहीं लौट पाता था–कुछ ही दिनों में वहीं उनका जीवन प्रदीप बुझ जाता था।

अंदमान जेल में पहुंचने के साथ ही हमारे पैरों की बेड़ियां काट दी गयीं। लगा, मानो पैर हलके हो गये हैं–चलने में डर-सा लगता। कुछ ही देर बाद जोरों की तलाशी शुरू हुई। कहीं कोई साथ में रुपये-पैसे न लाया हो। अंदमान में जनेऊ पहनने का हुक्म नहीं था। तलाशी के वक्त हमारे गले से जनेऊ उतार लिया गया। हम लोगों ने ऐतराज किया, लेकिन कोई नतीजा न निकला। सुना, उपेन बंद्योपाध्याय आदि के जनेऊ नहीं हैं। कुछ तसल्ली हुई। उसके बाद बर्मा षड्यंत्र के मुकदमे के कुछ राजनीतिक कैदी आये थे। उनमें पंडित रामरक्खा भी थे। रामरक्खा पंजाबी ब्राह्मण थे। उनका जनेऊ उतारने पर उन्होंने अनशन शुरू कर दिया। तीन महीने के अनशन के बाद उनकी मृत्यु हो गयी, तो भी जनेऊ उन्हें नहीं दिया गया। अंदमान में हम करीब एक सौ राजनीतिक कैदी थे।

अंदमान में जेलर और सुपरिंटेंडेंट ही सर्वेसर्वा थे। वहां कोई जेल निरीक्षक नहीं आता था। चीफ कमिश्नर साल में तीन-चार बार निरीक्षण करने आते थे। चीफ कमिश्नर के सामने कैदियों को शिकायत करने का अधिकार था, परंतु आगे-पीछे बंदूकधारी सिपाहियों से घिरकर वे ऐसे ठाट-बाट से आते थे कि साधारण कैदियों को कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती थी, और कहने से भी कुछ विशेष लाभ नहीं होता था, क्योंकि वे कैदियों की बात पर कभी विश्वास नहीं करते थे, जेलर-सुपरिंटेंडेंट की बात पर ही विश्वास करते थे।

अंदमान में हर-एक कैदी साल में अपने घर एक चिट्ठी लिख सकता और घर से एक चिट्ठी पा सकता था। इस बीच यदि किसी मामले में उसे सजा हो जाती तो वह उस अधिकार से भी वंचित कर दिया जाता। अंदमान में जेल का खाना देशी जेलों से बहुत ही खराब था। सस्ते रंगूनी अरवा चावल का भात, बराबर दोनों समय अरहर की दाल और अखाद्य घास-पत्ते की तरकारी—यही हमारा रोज का भोजन था।

जेल में रात में बत्ती का इंतजाम नहीं था। पाखाने का इंतजाम भी बड़ा विचित्र था। रात में हर कोठरी में मिट्टी का एक लोटा दिया जाता था। इसमें सेरभर से ज्यादा पानी अंटता था। रात में किसी को पाखाने की हाजत हुई तो पहले अंधेरे में पैर से टटोलकर लोटा ढूंढ़ना पड़ता था, फिर उसके मुंह का पता लगाकर बारी-बारी से पाखाना और पेशाब करना पड़ता था। पेशाब और पाखाना एक साथ नहीं किया जा सकता था, इसलिए पेशाब को रोककर लोटे में पाखाना करना पड़ता था, फिर पाखाना बंदकर लोटे का मुंह ठीक करके पेशाब करना पड़ता था। एक ही साथ दोनों को करने से एक नीचे जमीन पर पड़ जाता और उससे अपनी ही कोठरी गंदी होती। दो-तीन महीने के बाद एक दिन पेशाब-पाखाने की जगह चूना पोत दिया जाता था। पेशाब-पाखाना मिट्टी पर गिरा तो भंगी के रिपोर्ट करने पर सजा दी जाती थी। पानी भी बड़ी सावधानी से खर्च करना पड़ता था। ज्यादा पानी गिराने से उसके फैलने पर अपना ही बिस्तर भीगेगा। कुछ दिनों के बाद हमें इसका अभ्यास हो गया था।

अंदमान के कैदियों को खाना जितना कम दिया जाता था, उतना ही उनके प्रति दुर्व्यवहार अधिक किया जाता था। साल में एक या दो दिन मछली का शोरबा या उबाली हुई मछली दी जाती थी।

अंदमान में हर कैदी के जेल हिस्ट्री टिकट पर उसका पहले का इतिहास लिखा रहता था। मेरे टिकट पर लिखा था : पुराना इतिहास—अभियुक्त बंगाली विद्यार्थियों के ऐसे षड्यंत्रकारी गिरोह में सम्मिलित था, जिसने सम्राट के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करने का षड्यंत्र किया था, और जिसका कार्यकाल १६०८ से १६१४ दिसम्बर तक रहा। यह अनुशीलन समिति का सदस्य था, जिसका उद्देश्य भारत से अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकना था, और जिसके सदस्यों ने अस्त्र-शस्त्र खरीदने एवं समिति के अन्य कार्यों के लिए धन इकट्ठा करने के लिए कई डकैतियां डाली थीं। यह समिति के सबसे पुराने सदस्यों में से है, और विद्रोहियों के सरदार पुलिनबिहारी दास का सिखाया हुआ है। ढाका षड्यंत्र का मुकदमा शुरू होने पर यह फरार हो गया। यह विप्लव दल के नेताओं में एक है—१४ हत्याओं और डकैतियों में इसके सम्मिलित होने का संदेह किया गया था। बहुत ही खतरनाक।

सुपरिंटेंडेंट साहब ने हमारे स्वास्थ्य की जांच करके सख्त मशक्कत का इंतजाम किया। मैंने कहा, मुझे दमा है। उन्होंने डांटकर कहा, "यह अंदमान है।"

शचीन सान्याल को कोल्हू से तेल पेरने और हम लोगों को नारियल का छिलका पीटकर तार निकालने का काम दिया गया। इन कामों की गिनती सख्त मशक्कत में होती है। मुझे अस्पताल में भर्ती नहीं किया गया था, इसलिए बीमारी की हालत में काम करना पड़ता था। बीमारी के लिए जो कोई, जो कुछ खाने को कहता, सब खाता। किसी ने कहा कि मिट्टी का तेल जुटाकर उसी को पियो। मैंने पिया, पर कोई फायदा नहीं हुआ, बल्कि पाखाने के साथ मिट्टी का तेल निकला। यहां तक कि पेट में से हवा के साथ मिट्टी का तेल निकलने लगा। किसी ने कहा, 'दमे का दौरा शुरू होने पर मुंह में तम्बाकू का पत्ता रखने पर आराम पहुंचेगा।' यह भी किया, लेकिन चक्कर आने लगा और कै होने लगी।

एक दिन दमे का दौरा इतना बढ़ा कि साथी मुझे उठाकर अस्पताल में रख आये। अगले दिन डाक्टर को मजबूर होकर मुझे भर्ती करना पड़ा। सुपरिंटेंडेंट उस दिन अस्पताल नहीं आये थे। अगले दिन मुझे वहां देखकर डाक्टर को फटकारा और खुद ही मुझे अस्पताल से निकाल दिया। साथ ही यह भी कहा "देश में गड़बड़ी मचाई थी, वह भूल गये? अब यहां दूध पीने आये हो?"

अंदमान में सात अहाते (यार्ड) हैं। एक से दूसरे अहाते में जाने का हुक्म नहीं था। राजनीतिक कैदियों को इन सातों अहातों में बांटकर रखा गया था। किसी अहाते में आठ-दस और किसी में पन्द्रह-सोलह आदमी रहते थे। प्रेसिडेंसी जेल में हम पास-पास की कोठरियों में रहते थे। भले ही वहां बातचीत करने का हुक्म नहीं था। लेकिन यहां हम कई आदमी एक अहाते में रहते हैं, दिन में एक साथ रहते हैं, एक ही बरामदे में काम करते हैं, फिर भी आपस में बोलने नहीं दिया जायेगा, खाना खाते समय पास-पास बैठने नहीं दिया जायेगा, पास-पास के बीच में साधारण कैदियों को बैठाया जायेगा।

अंदमान की सरकारी रिपोर्ट से पता चलता है कि अंदमान जेल में हर महीने औसतन तीन आदमियों ने आत्महत्या की है। आदमी आसानी से आत्महत्या नहीं करना चाहता। लेकिन वहां कैदियों पर इतना अत्याचार किया जाता था कि वे उसे सह नहीं पाते थे, आत्महत्या करके सब अत्याचारों से मुक्ति पा जाते थे। अंदमान जेल के राजनीतिक बंदियों ने इसका प्रतिकार करने के लिए कमर कसी। इस बात को लेकर हम 'नरम' और 'गरम' दो दलों में बंट गये। सावरकर भ्रातृद्वय और बारीन बाबू आदि पहले आये थे, उन्हें बहुत जुल्म सहने पड़े थे। उन्होंने संघर्ष करके कुछ सुभीते भी हासिल किये थे। अब वे जेलर और सुपरिंटेंडेंट साहब के बड़े ही प्रिय पात्र हो गये थे। वे इन सुभीतों को छोड़कर हमारे साथ मिलकर संघर्ष करने के लिए तैयार नहीं थे। पुलिन बाबू किसी झमेले में नहीं पड़ते थे और अधिकारियों के प्रिय पात्र भी बनने की कोशिश नहीं करते थे। स्नेहवश वे हम लोगों से कहते, "जेल में गड़बड़ी मचा कर सजा बढ़वाने से फायदा क्या है? शांत रहकर बाहर निकल पाने से देश की सेवा कर सकोगे।"

मेरा दमा ठीक नहीं हुआ था, इसलिए मित्रों ने मुझे गड़बड़ी मचाने को मना किया था। मैं सारी रात खांसता था। कभी-कभी पहरेदार एक दूसरे से कहते, 'आज रात यह बंगाली मर जायेगा।' रात के अंतिम पहर में जब झपकी लगती तो पहरेदार मुझे जगाकर देखते कि मैं जिंदा हूं या नहीं। रात में थूकने के लिए सुपरिंटेंडेंट से एक बर्तन मांगा था, लेकिन वह भी नहीं मिला। जेलर साहब ने कहा, 'पेशाब के बर्तन में थूका करो।' मैं दीवार पर ही थूक देता था। मैं इतना कमजोर हो गया था कि दो हाथ दूर जाकर पेशाब करने में तकलीफ होती थी। मेरी धारणा हुई कि प्रेसिडेंसी जेल के जेलर की भविष्यवाणी ही सच निकलेगी, अब देश वापस नहीं लौट सकूंगा। बीच-बीच में सुनसान अंधेरी कोठरी में पहले की कितनी ही स्मृतियां जाग उठतीं। लगता था कि जो पैर मुझे एक बार पचासी मील बड़ी आसानी से पैदल ले गये थे, १०५ डिग्री बुखार में भी बत्तीस मील पहाड़ी रास्ता पार किया था, आज वे ही पैर गजभर की दूरी पर मुझे नहीं ले जा सकते। इस हालत में जिंदा रहना भी विडम्बना है, जिंदगीभर दूसरे पर भार बनकर रहना होगा, मौत इससे कहीं अच्छी है।

अंदमान जेल में २५-३० बंगाली राजनीतिक कैदी थे, मराठे ३, उत्तर प्रदेश के थोड़े-से, बाकी थे सब पंजाब के, जिनमें अधिक सिख थे। इसके अतिरिक्त 'मार्शल ला' केस में गुजरात और पंजाब से भी कुछ लोग आये थे। जेल में स्पेशल क्लास का कोई कैदी नहीं था। सभी साधारण श्रेणी के कैदी समझे जाते थे। बैरिस्टर विनायक दामोदर सावरकर, प्रोफेसर भाई परमानन्द, बारीन्द्र घोष, भाई बुड्डा सिंह (जिनके पुराने इतिहास में लिखा था कि वे बैंकाक के प्रसिद्ध व्यापारी थे) सभी की एक-सी हालत थी, सभी साधारण कैदी थे। कैदी कर्मचारियों में प्रधान था जमादार, उसके नीचे टिंडेल, टिंडेल के नीचे पेटी अफसर और सबसे नीचे वार्डन था।

राजनीतिक कैदियों के लिए सात अहातों में सात गोरे सैनिक पहरेदार थे। अंदमान में बर्मा और हिन्दुस्तान के हर प्रांत के कैदी थे। वहां की सामान्य भाषा हिन्दी थी। औरतें दूसरी जेल में रखी जाती थीं। उन दिनों वहां मर्द कैदी दस साल के बाद और औरत कैदी पांच साल के बाद ब्याह करके एकसाथ रह सकते थे। वहां की नैतिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी। स्त्री-पुरुषों के मामलों में अक्सर खून हो जाते थे।

अंदमान में हमारे ऊपर होनेवाले अत्याचारों के प्रतिकार के लिए हम लोगों

ने कानून तोड़ना तय किया। नरमदली उसमें शामिल न हुए। मित्रों के मना करने पर भी तथा अस्वस्थ होने के बावजूद मैंने कानून तोड़नेवाले दल ही को चुन लिया। अंदमान जेल में कानून तोड़ना शुरू हुआ–हम स्वतंत्र हैं, किसी का हुक्म नहीं मानेंगे, सजा से भी हम डरनेवाले नहीं। अब हम एक-दूसरे से बातचीत करते, खाना खराब और कम है–इसको लेकर हल्ला मचाते, किसी कैदी को कोई जेल कर्मचारी अगर मारता तो हम मिलकर उसमें बाधा देते। इन कुसूरों के लिए हमें हथकड़ी, बेड़ी, कोठरीबंद आदि सजाएं मिलतीं। रात में सभी कोठरियों में रहते, दिन में कोठरी के बाहर बरामदे या कारखाने में काम करते। जिन्हें कोठरीबंद की सजा मिलती, उन्हें चौबीसों घंटे कोठरी में रहना पड़ता, केवल नहाने के लिए थोड़ी देर के लिए कोठरी से बाहर निकाला जाता। यहां जितने सिख थे, सभी की उम्र चालीस से ऊपर थी। पचास-साठ के भी कई आदमी थे। बंगालियों में सभी तीस के नीचे थे। अंदमान जेल में सिखों ने बड़ी वीरता दिखाई थी और बहुत जुल्म सहे थे।

एक दिन शाम को जेलर साहब आये। सभी ने अपना काम खत्म कर दिया था। अमर सिंह बरामदे में चहलकदमी कर रहे थे। जेलर ने उन्हें डांटते हुए पूछा, "तुम टहल क्यों रहे हो?"

अमर सिंह ने जवाब दिया, "मैं क्या तुम्हारे बाप के सिर पर टहल रहा हूं?"

इस कुसूर के लिए अमर सिंह को तीन महीने डंडा बेड़ी और कोठरीबंदी की सजा मिली।

एक दिन पंडित परमानन्द को टिंडेल ने जेलर के सामने हाजिर किया। अपराध यह बताया गया कि वे कहना नहीं मानते। जेलर ने परमानन्द को मां-बहन की गालियां दीं। परमानन्द ने लात-घूसों से मारकर उसे जमीन पर गिरा दिया। फिर क्या था! जमादारों और टिंडेलों की लाठियां उन पर बरसने लगीं। बेहोशी की हालत में परमानन्द को अस्पताल पहुंचाया गया। सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें बीस बेंत की सजा दी। अब तक जेलर पर हाथ उठाने की किसी ने हिमाकत नहीं की थी, इसलिए इस घटना के बाद जेलर की प्रतिष्ठा घट गयी। साधारण कैदी बहुत ही संतुष्ट और सहानुभूतिशील हो गये। लेकिन जेलर के इशारे पर जमादार-टिंडेल लोग भी गड़बड़ी मचानेवाले राजनीतिक कैदियों को जब तब मौका देखकर पीट देते थे। एक दिन सरदार मानसिंह को इतनी बुरी तरह पीटा गया कि उनकी मृत्यु निश्चित जान पड़ी। हम लोगों ने इसके खिलाफ आम हड़ताल करना तय किया। हम लोगों में से कोई काम न करेगा और जिससे हो सके, भूख हड़ताल करेगा–गुप्त रूप से यह खबर सभी अहातों में चली गयी। करीब ७० आदमी इस हड़ताल में शामिल हुए। इस अपराध के लिए हममें से हर एक को ६ महीने डंडा बेड़ी, ६ महीने कोठरीबंदी, सात दिन खड़ी हथकड़ी और कम खाने की सजा दी गयी। कोठरीबंदी के समय मैंने कुनीन खाना शुरू किया। सुरेश सेन को बीमारी के कारण रोज आधा सेर दूध अस्पताल से मिलता था। वे हड़ताल में शामिल नहीं हुए। वे अपना दूध रोज छिपाकर मेरे पास भेज देते। मैं उसे पीता। इस प्रकार एक महीना दूध पीने के बाद मेरी दमा की शिकायत जाती रही।

(दीवार में लोहे का कड़ा गड़ा होता है। यह प्रायः मनुष्य की आंख की ऊंचाई पर होता है। हथकड़ी इस कड़े में से गुजार कर कैदी के दोनों हाथों में लगा दी जाती है, जिससे कैदी को दोनों हाथ उठाकर दीवार की ओर मुंह करके खड़े रहना पड़ता है। खड़े होने पर हाथ प्रायः मुंह तक ऊंचे उठे रहते हैं। खड़ी हथकड़ी प्रायः जेल की केन्द्रीय गुमटी में लगायी जाती है। यह जेल की बहुत सख्त सजाओं में है।

जेलखाने में माना जाता है कि जो परिश्रम करता है, उसे अधिक भूख लगती है। जेल की सजा दो प्रकार की होती है। सख्त कैद और सादी कैद। इन दोनों में यही भेद होता है कि सख्त कैदवाले को मशक्कत करनी पड़ती है। सादी कैदवाले कैदी से जेल में काम नहीं लिया जाता। सख्त कैदवाले को इसलिए खाना अधिक मिलता है और सादी कैदवाले को कम। सादी कैदवाले स्वेच्छा से अपनी सादी कैद को सख्त कैद में बदलवा सकते हैं। तब उन्हें भी काम दिया जाता है और खाना अधिक मिलता है। सादी कैद में माफी भी नहीं मिलती। सख्त कैदवाले को तीन महीने में लगभग ६ दिन की माफी मिल जाती है। सख्त कैदवाले कैदी जब काम करने से इनकार करते हैं, जो उन्हें सजा के तौर पर कम खाना दिया जाता है। हाजती कैदी से भी काम नहीं लिया जाता, इसलिए उसे भी कम खाना मिलता है।)

हमें गुप्त रूप से खबर मिली कि चीफ कमिश्नर हम लोगों से मिलने आयेंगे। हमें विश्वास था कि चीफ कमिश्नर से आवेदन करने से कुछ फायदा नहीं होगा। फिर भी हम लोगों ने तय किया कि हममें से कुछ लोग खूब शांत भाव से मानसिंह के पीटे जाने की बात और जेल की साधारण अवस्था उन्हें समझाकर कहेंगे। हर अहाते से इस काम के लिए एक-एक दो-दो आदमी चुने गये, मैं भी उनमें से एक था। चीफ कमिश्नर जब मेरी कोठरी के सामने आकर खड़े हुए, तब मैंने खड़े होकर कायदे के मुताबिक उन्हें सलाम किया। उन्होंने मुझे डांटते हुए कहा, "तुम लोग गड़बड़ी क्यों मचा रहे हो?"

मैंने खूब शांत होकर कहा, "मानसिंह को बेरहमी से पीटा गया है।"

उन्होंने जवाब दिया, "मानसिंह को पीटा नहीं गया है।"

हड़ताल में कोई भी नेता शामिल नहीं हुआ है और इससे उनकी सहानुभूति भी नहीं है। धीरे-धीरे यह खबर हमारे पास आ पहुंची। सावरकर भ्रातृद्वय छिपकर हमें उत्साहित करते, लेकिन जब हम लोगों ने उनसे खुलकर हड़ताल में शामिल होने के लिए कहा, तो वे शामिल नहीं हुए।



विनायक दामोदर सावरकर

मैंने कहा, "मानसिंह की अभी मृत्यु नहीं हुई है, वे अभी भी मौत की बाट जोह रहे हैं। आप मेहरबानी करके उन्हें देख आइए।"

उन्होंने कहा, "उसे यदि पीटा गया है, तो तुम्हारा क्या। वह तुम्हारा चाचा भी नहीं है और नाना भी नहीं है।"

"वह मेरे सहकर्मी हैं, मेरे मित्र हैं।"

"तुम्हें अपने बारे में कुछ कहना है?"

"मैं बीमार हूं, मुझे अस्पताल में नहीं रखा जाता। एक दिन डाक्टर ने मुझे अस्पताल में भर्ती किया था, सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें इसके लिए डांट दिया।"

सुपरिंटेंडेंट ने कहा, "यह बात झूठ है। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस दिन यह बिलकुल स्वस्थ था।"

मैंने टिकट दिखाकर कहा, "तीस तारीख को मुझे उठाकर अस्पताल ले जाया गया था, और डाक्टर ने मुझे वहां रखा था। इकतीस तारीख को मेरी हालत और भी खराब थी, इसलिए डाक्टर ने मुझे भर्ती कर लिया था। अब क्या आप विश्वास करेंगे कि मैं एक ही दिन में बिलकुल स्वस्थ हो गया?"

तब चीफ कमिश्नर 'यह तुम्हारा बहाना है' कहकर चले गये। कुछ ही दूर आगे बढ़कर उन्होंने देखा कि एक सिख कोठरी के दरवाजे की ओर पीठ करके बैठा है। जेलर ने उसे खड़ा होने का हुक्म दिया, लेकिन उसने सुना ही नहीं।

कुछ और आगे बढ़ने पर देखा कि एक सिख लेटा हुआ है। उन्होंने उसे पुकारा तो उसने उनके मां-बाप और चौदह पुश्तों का गोत्रोद्धार करते हुए कहा, "मेरी नींद में खलल मत डालो, यहां से चले जाओ। मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं है, फिर क्यों मुझे परेशान करने आये हो?"

हर अहाते में इसी तरह की घटना हुई।

हमें जब नहाने और खाने के लिए कोठरियों से बाहर निकाला जाता, उस समय दूसरे सभी कैदियों को बंद कर दिया जाता था, ताकि हमारी किसी से मुलाकात न होने पाये। पंजाबी सिख बड़े तगड़े थे, किसी का वजन दो सौ पौंड था और किसी का दो सौ पचास पौंड। जेल के साधारण खाने से उनका पेट नहीं भरता तो अब जो कम खाना मिलता था, उससे मेरा ही पेट नहीं भरता, तो उनका पेट कैसे भरता। खाने के बाद कोई-कोई कहते, 'न खाना ही अच्छा है, क्योंकि खाने से भूख बढ़ती है।' उनमें से एक-एक का वजन ४०-५० पौंड तक घट गया था। हम लोग भाई ज्वालासिंह को 'भाई डोल' और शेर सिंह को 'भाई हाथी' कहा करते थे।

एक दिन अस्पताल में शेर सिंह को एक बाल्टी में दूध दिखाकर डाक्टर ने पूछा, "इसे पी सकते हो?"

बाल्टी में दस सेर दूध था। शेर सिंह ने उसी समय बाल्टी में मुंह लगाकर सारा दूध पी लिया। डाक्टर बुरी तरह झेंप गये, लेकिन उनकी अद्भुत क्षमता देख प्रसन्न भी हुए थे। इन्हीं शेर सिंह ने एक दिन एक सेर सरसों का तेल पीकर हजम कर लिया था। मामला इस प्रकार है—एक दिन फणी बाबू ने मेरे पास तम्बाकू के दो पत्ते भेजकर एक सेर तेल का इंतजाम कर देने के लिए कहला भेजा। तदनुसार मैंने कोल्हूघर के एक आदमी से बंदोबस्त किया था। लेकिन तेल लाते वक्त मैं माल सहित पकड़ा गया। टिंडेल मुझे माल के साथ हाजिर करेगा, ऐन मौके पर शेर सिंह ने आकर टिंडेल को 'सरदार', 'जनाब' आदि सम्मानसूचक शब्दों से संबोधन करके पूछा कि मामला क्या है। टिंडेल ने कहा कि इस बंगाली ने तेल चुराया है। शेर सिंह ने कहा, "ऐसी बात? बड़ी बेजा हरकत की है। देखूं, कितना तेल चुराया है?" यह कहकर देखने के लिए टिंडेल के हाथ से तेल का बर्तन लेकर एक ही सांस में सारा तेल पी डाला और 'ले साले' कहकर उन्होंने बर्तन जमीन पर फेंक दिया। टिंडेल ने देखा कि यहां जोर जबरदस्ती से काम नहीं चलेगा, माल भी नहीं है, कोई गवाह भी नहीं मिलेगा। वह गुस्से में बड़बड़ाता हुआ चला गया। कम खाना मिलने के कारण शेर सिंह जैसे लोगों को बड़ी तकलीफ हुई थी, लेकिन किसी ने कोई कमजोरी नहीं दिखलाई।

इन्हीं दिनों की बात है, एक दिन हम लोग शाम को खाने बैठे थे कि जेलर साहब मुआयना करने आये। बूढ़े निधान सिंह से पूछा, "कैसे हो जी?" मुझसे पूछने पर मैं कहता, 'ठीक ही हूं', लेकिन निधान सिंह ने उत्तर दिया, "क्यों? अपनी बेटी ब्याहोगे क्या? मेरा कुशल-मंगल पूछ रहे हो, क्या बेटी के लिए वर की तलाश में हो? पैरों की बेड़ियां, दिनरात कोठरी में बंद, कम खाना, फिर भी पूछते हो कैसा हूं? मजाक कर रहे हो? शर्म नहीं आती? बेहया कहीं का। जा, मेरे सामने से हट जा।"

जेलर साहब चले गये। ऐसी बातें सुनते-सुनते जेलर-सुपरिंटेंडेंट इन बातों के आदी हो गये थे। कितनी सजा देंगे? सजा देने से मानो कैदियों का तेज और भी बढ़ जाता है।

कोठरियां आठ हाथ लंबी और पांच हाथ चौड़ी थीं। इन्हीं में हमें दिन-रात रहना पड़ता था। कोठरी में दिन में बिस्तर रखने का हुक्म नहीं था। सबेरे बिस्तर ले लिया जाता था। कोठरी में हम कविता लिखकर समय काटते थे। लेकिन हममें से कोई भी कवि नहीं था। कवि बनने की साध भी नहीं थी, कविता लिखना भी नहीं जानते थे।

हम जानते थे कि हमारी कविता कभी पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं होगी। प्रकाशित होने पर भी उसे खरीदकर कोई नहीं पढ़ेगा। इसलिए कविता लिखकर मार खाने का जरा भी डर हमें नहीं था। हड़ताल करनेवालों में अधिकांश पंजाबी थे। वे बंगला नहीं जानते थे, इसलिए मैंने अंग्रेजी में कविता लिखने का निश्चय किया। लिखने के लिए हमारे पास कागज-कलम और स्याही नहीं थी, इनकी जरूरत भी नहीं थी। कोठरी का फर्श, दीवार और सुर्खी हमारे लिए कागज, स्याही और कलम का काम देते। मेरी पहली कविता इस प्रकार की थी, जिनका अर्थ हिन्दी में इस प्रकार था :

मेरे पास क्या है, मैं कैसे तुम्हारी पूजा करूंगा, मैं नहीं जानता, हे भगवान, तुम्हीं बताओ। मैं बंदी हूं, मेरे पास चढ़ाने को फूल भी नहीं है, मेरा हृदय मरु है, उसमें जल की बूंद भी नहीं है, मैं अंधेरे में भटक रहा हूं, महाजनों के चरणचिह्नों को देख नहीं पा रहा हूं, मैंने सुना है कि नाम-कीर्तन से तुम्हें पाया है, इसलिए मैं सदा तुम्हारे गुण गाता हूं।

सुपरिंटेंडेंट मरे छंटा हुआ बदमाश है, वह बीमारों को अस्पताल में रखना नहीं चाहता। बिना अपराध के वह बंदियों को गाली और दंड देता है, उसके पाशविक अत्याचारों का कहां तक वर्णन करूं।

इस तरह निडर होकर हम कविता लिखने लगे। खाने के वक्त एक दूसरे को कविता सुनाते थे।

इस बीच मानसिंह की मृत्यु हो गयी थी, दो-एक आदमी और मर चुके थे। अंदमान से छिपाकर देश में खबर भेजना मुश्किल था। वहां कोई सार्वजनिक डाकखाना नहीं था, सारी चिट्ठियां सरकार की मार्फत जाती थीं। 'महाराज' के सिवा और कोई जहाज अंदमान नहीं जाने पाता था। ऐसी हालत में भी हमारी हड़ताल, मानसिंह और रामरक्खा की मृत्यु तथा अंदमान जेल की नारकीय अवस्था की कहानी 'बंगाली' नामक अंग्रेजी दैनिक में प्रकाशित हुई और सुरेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय ने कौंसिल में बहुत से सवाल भी पूछे। सरकार ने कहा कि कुछ बदमाश गड़बड़ी मचा रहे हैं। इस हड़ताल में कोई भी नेता शामिल नहीं हुआ है और इससे उनकी सहानुभूति भी नहीं है। धीरे-धीरे यह खबर हमारे पास आ पहुंची। सावरकर भ्रातृद्वय छिपकर हमें उत्साहित करते, लेकिन जब हम लोगों ने उनसे खुलकर हड़ताल में शामिल होने के लिए कहा, तो वे शामिल नहीं हुए। हड़ताल चलती रही। अंत में छह महीने के बाद हमारी बेड़ियां काट दी गयीं। किसी-किसी ने बेड़ी काटते वक्त आपत्ति की, कि हम बेड़ी नहीं कटवाएंगे। फिर भी हमारी बेड़ियां जबरदस्ती काट दी गयीं।

हम कोठरियों से बाहर आये, लेकिन हमारा संघर्ष चलता रहा। हम बार-बार सजा पाने लगे। एक दिन छत्तरसिंह ने सुपरिंटेंडेंट को पीट दिया। जेलवालों ने उन्हें पीटकर मरणासन्न कर दिया। उन्हें अनिश्चित काल के लिए हथकड़ी, बेड़ी और कोठरीबंदी की सजा दी गयी। पूरे पांच साल वे इसी हालत में रहे। उनका स्वास्थ्य बिलकुल चौपट हो गया। कुछ दिनों के बाद मेरे घर से चिट्ठी आयी। मेरे मंझले अग्रज ने लिखा था कि तुम अपने कुकर्मों का फल भोग रहे हो। मुझे भले आदमी की तरह रहने को लिखा था। साथ ही यह भी लिखा था कि वे मेरे लिए चिंतित और दुखी हैं। अब तक मैंने घर कोई चिट्ठी नहीं लिखी थी। मुझे समझने में देर न लगी कि सरकार की तरफ से मंझले अग्रज से यह चिट्ठी लिखवाई गयी है।

कविता करने की तरह सभी मामलों में हम लोग बेपरवाह थे। हमें सजा का डर नहीं था, प्राणों की माया नहीं थी। इसलिए जेल-कर्मचारी अब हमें भय की दृष्टि से देखते थे और साधारण कैदी इज्जत की निगाह से। जेल में अब बहुत से परिवर्तन हो गये। मारपीट कम हो गयी-अब कोई आत्महत्या नहीं करता। इसी बीच पंजाब और अहमदाबाद से 'मार्शल ला' केस के कुछ आदमी आ पहुंचे। आते ही उन्हें कोल्हू दिया गया। वे लोग सत्याग्रह सीख आये थे। यहां भी उन्होंने सत्याग्रह शुरू कर दिया। कोल्हू पेरने से उन्होंने इनकार कर दिया। कोल्हूघर में वे लेट गये। जेलर के हुक्म पर उन्हें मुश्कें कसकर कोल्हू के डंडे के साथ बांधकर दूसरे लोगों से कोल्हू घुमाने के लिए कहा गया। इस तरह वे कोल्हू के चारों तरफ घिसटने लगे। उनके हाथ-पैर और पीठ की चमड़ी उधड़ गयी। शीघ्र ही यह खबर हमारे कानों तक पहुंची। भूपेन्द्र कुमार घोष, निधानसिंह, मैंने तथा कुछ और लोगों ने हल्ला मचाना शुरू किया। गड़बड़ी की आशंका देखकर जेल अधिकारियों को उन्हें खोल देना पड़ा। हल्ला मचानेवाले कोठरियों में बंद कर दिये गये। पहले के एक कुसूर के लिए मेरी तीन महीने की डंडाबेड़ी और कोठरीबंदी चल रही थी। मुझे मालूम था कि

अगले दिन सुपरिंटेंडेंट से झड़प होगी। इसलिए मैंने हिन्दी ही में बात करना तय किया। क्योंकि अंग्रेजी में बोलने पर दूसरे लोग नहीं समझेंगे कि मैंने उसे गाली दी या तारीफ की। अगले दिन सुपरिंटेंडेंट के आने पर मैंने सलाम किया। वे मेरी कोठरी के सामने खड़े हुए। मैंने पिछले दिन की घटना के बारे में कहा। वे बोले, "जेल के सुपरिंटेंडेंट तुम हो या मैं?"

मैंने कहा, "जेल के सुपरिंटेंडेंट आप हैं, इसी लिए आपसे पूछता हूं कि 'मार्शल ला' के बंदियों पर ऐसा अत्याचार क्यों किया गया?"

मुझे डांटते हुए उन्होंने कहा, "तुम चुप रहो सुअर का बच्चा।"

मैंने भी बुलंद आवाज में सुपरिंटेंडेंट को डांटते हुए कहा, "तुम चुप रहो कुत्ती का बच्चा।" इसके बाद मेरे मुंह से धाराप्रवाह हिन्दी और पंजाबी गालियां निकलने लगीं। सुपरिंटेंडेंट का कोई भी संबंधी इन गालियों से नहीं बचा। सुपरिंटेंडेंट वहां से रफूचक्कर हो गये। बाद में मालूम हुआ कि आज के अपराध के लिए मुझे चार दिन 'मांड़-भात' की सजा दी गयी है। इसका मतलब यह हुआ कि मुझे दोनों जून मिलाकर सिर्फ एक पौंड (साढ़े सात छटांक) भात का मांड़ मिलेगा, दूसरा कोई खाना नहीं मिलेगा। मैंने सुपरिंटेंडेंट को गालियां दी हैं, यह खबर थोड़ी देर में सारी जेल में फैल गयी। खाने के वक्त रसोइए ने मुझसे पूछा, "क्या खाना चाहते हो, भात या रोटी?"

मैंने कहा, "मुझे सजा मिली है, मुझे मांड़ दो।"

उसने कहा, "तुम्हारी बहादुरी की बात हम लोगों ने सुनी है। हम लोगों ने चौके में तय किया है कि हम तुम्हें मांड़ नहीं पीने देंगे, तुम जो खाना चाहते हो, वही देंगे।"

मैं आगा-पीछा कर ही रहा था कि खाना ले आनेवाले के साथ जो पेटी अफसर आया था, उसने मांड़ को जमीन पर फेंकते हुए कहा, "बंगाली शेर है, डबल खाना दो।"

इसके बाद कितने ही लोग मेरी कोठरी में छिपाकर चटनी और रोटी भी भेजने लगे। इतना खाना आने लगा कि खुद खाकर मैं उसे बांटने भी लगा। मेरे चार दिन इसी तरह बीत गये, मांड़ एक दिन भी नहीं मिला।

अंदमान में गड़बड़ी मचाने के लिए जो लोग मशहूर हुए थे, उनमें मैं भी था। बेंत के सिवा जेल की सारी सजाएं मैंने पायी हैं। आड़िया बेड़ी, (यह साधारण बेंत के बदले लगायी जाती है) डंडा बेड़ी, सीकली बेड़ी, खड़ी-हथकड़ी, मुश्की-हथकड़ी, रात-हथकड़ी, मांड़-भात, कोठरीबंदी, आदि सब सजाएं मैंने भोगी हैं। अंदमान में तीन वर्ष से ऊपर हमारा संघर्ष चला। बेड़ी पहनते-पहनते मेरे पैरों में घट्टे पड़ गये थे। हम ऐसी हालत में पहुंच गये थे कि बेड़ी पहने-पहने दौड़ भी सकते थे। बीच-बीच में कंबल के कुरते की गेंद बनाकर बेड़ी पहने हम गेंद भी खेलते थे।

हम लोग भारत के भविष्य के बारे में कभी-कभी बहस करते थे–देश स्वतंत्र होने पर कैसी सरकार बनेगी, राजधानी कहां होगी, राष्ट्रभाषा कौन-सी होगी आदि। हम लोगों में हिंसा-अहिंसा और आमिष-निरामिष खाने को लेकर भी बहस होती थी। आमिष भोजन के बारे में केसर सिंह कहा करते थे कि हम मछली-मांस क्यों नहीं खायेंगे। इनसे देश का क्या उपकार हो रहा है कि उनको खाने से देश का अपकार होगा। बकरे की अगर जज, मजिस्ट्रेट बनने की संभावना होती या अगर वह देशभक्त बनकर देश की स्वाधीनता के लिए लड़ सकता, तो उसे मारकर पेट भरना अन्याय होता। जब ऐसी कोई संभावना नहीं है तो उसे क्यों नहीं खायेंगे? हमारे आहार के लिए ही वे बनाये गये हैं।

उसी बीच हमें गुप्त रूप से खबर मिली कि जेल कमीशन आ रहा है, और जेल के अधिकारी इस बात की कोशिश में हैं कि हमारी मुलाकात कमीशन से न होने पाये। हमें विश्वास था कि वे निश्चय ही जेल में आयेंगे। हम लोगों ने हर अहाते में खबर भेज दी कि वे लोग जिस किसी अहाते में जायें, वहीं चिल्लाकर उन्हें बुलाकर उनसे बातें करनी होंगी। यथासमय जेल कमीशन जेल में आया और राजनीतिक बंदियों से बातें भी हुईं। उन्होंने कहा कि अतीत में क्या हुआ, हम इसका विचार करने नहीं आये हैं। जेल में कैसे सुधार हो सकता है, यह हमें लिखकर बताओ। तुम्हारी दरख्वास्तें सात से अधिक नहीं होनी चाहिए, सभी दरख्वास्तें एक ही तरह की न हों। हमारी ओर से जो सात दरख्वास्तें गयीं, उनमें से आगे लिखी मांगें थीं–

बंदी उपनिवेश उठा दिया जाये, देश की जेलों की तरह तीन महीने में एक चिट्ठी लिखने की अनुमति दी जाये, जनेऊ और धार्मिक चिह्न रखने दिये जायें, फांसी उठा दी जाये, शिक्षा की व्यवस्था की जाये, इत्यादि। हमारी दरख्वास्तें पाते ही जेल कमीशन ने हुक्म दिया कि हम तीन महीने में चिट्ठी लिख सकते हैं और जनेऊ तथा धार्मिक चिह्न भी रख सकते हैं।

सरकार ने जब देखा कि तीन साल से ऊपर लगातार गोलमाल चल रहा है, तो उसने जेलर और सुपरिंटेंडेंट का तबादला कर दिया। नये जेलर और सुपरिंटेंडेंट ने आते ही नाम कमाने के लिए हमारे साथ अच्छा बर्ताव किया। जेल में शांति स्थापित हुई। इसी बीच पहला महायुद्ध समाप्त हो गया था। सरकार ने राजनीतिक कैदियों की आम रिहाई की घोषणा की थी। अंदमान से बारीन बाबू और उनके साथी, शचीन्द्रनाथ सान्याल और कई सिख कुल मिलाकर बीस आदमी छोड़े गये। अंदमान जेल में छापाखाना था। पहले बारीन बाबू छापेखाने में फोरमैन थे। उनके छूटने के बाद अब जगतराम फोरमैन बनाये गये। हम लोग भी प्रेस में काम करने लगे।

जेलखाने में कम उम्र के कैदियों पर बड़ा जुल्म होता था। एक दिन जेलर ने पंडित जगतराम से कहा कि 'बच्चा फाइल' वालों को प्रेस में काम देंगे। वे तुम लोगों के पास रहेंगे, तो उन पर कोई जुल्म नहीं कर सकेगा। 'बच्चा फाइल' में ७० तरुण थे। वे प्रेस में काम करने आये। मैं उनका शिक्षक बना। सबेरे दस बजे तक प्रेस का काम चलता और दोपहर के खाने के बाद लिखाई-पढ़ाई का काम शुरू होता। 'बच्चा फाइल' में बर्मा और हिन्दुस्तान के प्रायः सभी प्रांतों के तरुण कैदी थे। कुछ दिनों के बाद बंदी उपनिवेश उठा दिया गया और सबसे पहले हम बंगालियों को अलीपुर सेंट्रल जेल में चालान किया गया। यह सन् १९२१ की बात है।

–क्रमशः

मेम साहब

—रवीन्द्र भारती

मेम साहब के पास आज क्या कुछ नहीं है, पर वह खुद को बेहद तन्हा महसूस करती हैं

मेम साहब की जिन्दगी एकदम बाइस्कोप की तरह है, और जब भीतर रील का चलना शुरू होता तो खुद भी सिहरकर रह जाती हैं मेम साहब। इस बाइस्कोप में कई चेहरे हैं—मास्टर ताराचन्द, जसविन्दर, मि॰ ब्रुश और न जाने कितने चेहरे।

मेम साहब को याद है, जब मि॰ ब्रुश के साथ वह मिहिजाम आयी थीं, तो उस कद्दावर अमेरिकन के साथ देखकर उनका नाम लोगों ने पूछे बगैर अपनी तरफ से एक नाम दे दिया था—मेम साहब।

ब्रुश के साथ जब वह चितरंजन रेलवे स्टेशन पर उतरीं, तो मन तेजी से डूबने लगा। आज वर्षों पुरानी याद अन्दर तक हिलाकर रह गयी थी मेम साहब को, जब जसविन्दर इसी वीरान स्टेशन पर उन्हें अकेली छोड़कर चला गया था। तब से मेम साहब की जो अनन्त यात्रा शुरू हुई, वह आज तक जारी है।

मेम साहब इतनी उम्र में भी किसी शौकीन जवान लड़की से कम सिंगार बनाव नहीं करतीं, न ही उससे कम रसीली बातें। नाक में झूलती झूलनी, छींटदार लहंगा, कसी चोली और आंखों में काजल।

मेम सहब के पास आज क्या कुछ नहीं है, फिर भी वह भीतर से अपने को बहुत ही तन्हा महसूस करती हैं।

मेम साहब की पलकें झुकी हुई हैं। ड्राइंगरूम में शोहरत मास्टर को छोड़कर सबको आने की मनाही है। मैं मेम साहब के ठीक सामने आरामकुर्सी पर बैठा हुआ हूं। सोच रहा हूं, कि आखिर मेम साहब चुप क्यों हो गयीं? जब मुझसे रहा नहीं गया तो धीरे-से पूछ ही बैठा, "मेम साहब, आप कह रहीं थीं कि औरत का कोई धर्म नहीं होता?"

मेम साहब ने कोई जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर के बाद जब उन्होंने सिर उठाया, तो उनकी पलकें भरी हुई थीं। इतने में शोहरत मास्टर आये और दो कप चाय रखकर चले गये। मेम साहब ने मास्टर को हिदायत देते हुए कहा कि यदि कोई मुझसे मिलना चाहे तो उसे कहियेगा कि मेम साहब की तबीयत ठीक नहीं है। मास्टरजी ने स्वीकारात्मक सिर हिला दिया।

मास्टरजी के जाने के बाद मेम साहब ने चाय की चुस्की के साथ एक पंजाबी चुटकुला सुनाया और ठठाकर हंसने लगीं। हंसते-हंसते फिर चुप। एकदम गंभीर मुद्रा। भादों की नदी की तरह वह अपने भीतर उफान भरें हुए थीं, मगर उसे जाहिर होने देना नहीं चाहती थीं। लेकिन भीतर जब हूक उठती है, तो उफान की गति भी तेज हो जाती है। तब बातों का बांध उफान को रोक नहीं पाता। घंटेभर के अन्दर देखते-ही-देखते मेम साहब अपनी रौ में आ गयीं। अब बांध टूट चुका था।



परमजीत कौर उर्फ मेम साहब

हां, तो मैं पंजाब से आयी। पंजाब में मेरा बचपन बीता। बाप ठेकेदार और मां डाक्टर थीं। अपने-अपने कामों में दोनों व्यस्त रहते थे। मेरी देखभाल के लिए एक दाई थी-अनारो देवी। वह मेरे साथ घर में रहती थी। जब शाम को मां-बाप काम से वापस आते थे, तो मैं उनका दुलार पाने को ललकती थी, मगर तरसकर रह जाती थी। मां अस्पताल से आते ही रसोईघर में घुस जाती थी और पिता

किताब खोलकर बैठ जाते थे। पिता को बहुत चिढ़ होती थी यदि उनके काम में कोई व्यवधान डालता था।

मैं इसी माहौल में ड्राइंगरूम में रखे मनी-प्लांट की तरह बड़ी हुई। आपसे क्या कहूं, जब मैं आठवें दर्जे में पहुंची तो मेरे पिताजी ने एक मास्टर लगा दिया मुझे पढ़ाने के लिए। वह मास्टर कई जगह पढ़ाता था और अन्तिम ट्यूशन के लिए मेरे घर आता था—लगभग साढ़े आठ बजे। मुझे एक घंटा पढ़ाकर वह खाना खाता था और मेरे घर के बरामदे में ही सो जाया करता था। वह अधेड़ मास्टर बदचलन था। पढ़ाते-पढ़ाते मेरे पैर की उंगलियों को अपने पैर की उंगलियों से रगड़ता रहता था। कभी-कभी मेरे हाथ को पकड़कर जबरन अपने शरीर पर रखने की कोशिश करता था। मैंने मास्टर की गन्दी हरकत को अपनी मां और पिता से कहने की कई बार कोशिश की, मगर उन लोगों ने डांटते हुए मुझसे कहा, "बेशर्म कहीं की, पढ़ने से जी चुराती है। ऊपर से मास्टर की शिकायत भी करती है।"

मास्टरजी को पिताजी ने बरामदे से बुलाकर कहा, "देखिए, छोकरी पढ़ने से भागती है। आप इसे रात में जगाकर पढ़ाइए। इम्तिहान भी नजदीक है।"

मास्टरजी ने कहा, "यह तो मेरी पोती की तरह है, मेरे पास सो जाया करेगी। रात में जब नींद टूटेगी, तभी इसे उठाकर पढ़ा दिया करूंगा।"

पिताजी सीधे आदमी थे। उन्हें दीन-दुनिया का पता नहीं था। उन्होंने कहा, ठीक है। फिर मुझसे कहा, अपना बिस्तर मास्टरजी के पास लगा लो।

मैं सुबकती रही, और सुबकते-सुबकते मां की गोद में जा गिरी। मां ने समझाया, बेटी पढ़ लेगी तो अच्छे नम्बर से पास होगी। मास्टरजी तुझे कितना मानते हैं।

मैंने मास्टरजी के बारे में फिर कहना चाहा, पर मां ने अनसुनी कर दी। और तब मुझे जाकर जबरदस्ती मास्टरजी के पास सोना पड़ा। मास्टरजी ने आखिरकार मुझे अपना शिकार बना ही लिया। मुझे सेक्स का पहला ज्ञान अपने मास्टर ताराचन्द कलवार से प्राप्त हुआ। कुछ दिनों के बाद सुनने में आया, उन्हें कुष्ठ हो गया था और वे जहर खाकर परलोक वासी हो गये थे।

जब मैं मैट्रिक में पहुंची तो मेरा लव अफेयर जसविन्दर से चला। उसे मैं दिलोजान से चाहती थी। वह बहुत अच्छा वायलिन बजाता था। वह अकसर मेरे भाई से मिलने के बहाने मुझसे मिल लेता था। मैं उसे किताबों में खत छिपाकर दिया करती थी। वह भी ऐसा ही करता था। हम दोनों चुपके-चुपके मिल लिया करते थे।



मेम साहब को शोहरत मास्टर जैसा नगीना आदमी रास्ते में मिला। मेम साहब ने आव देखा न ताव, बस उन्हें अपनी झोली में डाल लिया। तब से मेम साहब की झोली में पड़े हुए हैं शोहरत मास्टर। अगर शोहरत मास्टर उस वक्त मेम साहब से न मिले होते, तो शायद वे इस दुनिया में न होतीं, खुदकुशी कर लेतीं।

मेरा रिजल्ट जब आउट हुआ तो मैं फर्स्ट डिवीजन पास थी। घर के सारे लोगों ने मुझे पलकों पर उठा लिया। जश्न मनाया गया, लोग बधाइयां देने आये, मगर मेरी आंखें तो जसविन्दर को खोज रही थीं। जसविन्दर एक हफ्ते बाद मिठाई का डिब्बा लेकर मेरे पास आया। आते ही उसने कहा, "मैं मुम्बई चला गया था। अब तेरे बिना रह नहीं सकता। चल मेरे साथ, हम दोनों शादी कर लेते हैं। दिल्ली में रहेंगे। मैं नौकरी करूंगा, तू परांठे सेकेगी। खूब घूमेंगे, मजा करेंगे।"

मैं उसकी इन बातों में डूब गयी।

दूसरे दिन रात को मैं जसविन्दर के साथ भाग खड़ी हुई। जसविन्दर ने तीन दिनों तक दिल्ली के एक होटल में मुझे रखा, फिर कहा, "चलो, चलते हैं संथाल परगना। वहां अंग्रेज और बंगाली पहले हवाखोरी के लिए आया करते थे। हम वहां हवाखोरी और हनीमून दोनों साथ मनायेंगे।

मैंने तब जसविन्दर से दबी जुबान में पूछा कि हम शादी कब करेंगे, तो उसने मुझे घुड़क दिया। कहा, "तू पागल हो गयी है। तू मुझ पर शक करती है। बिना शादी के तुझे कैसे रखूंगा। हनीमून से लौटेंगे तो दिल्ली में शादी कर लेंगे।"

कई रंगीन सपनों के बीच यात्रा शुरू हुई। सपनों में मैं दादी, नानी भी बन गयी। विदेश भी चली गयी। सपना तब टूटा, जब जसविन्दर ने मुझे झकझोरकर जगाया, "उतरो गाड़ी से।"

डिब्बे में काफी भीड़ थी। जसविन्दर ने मुझे मुश्किल से प्लेटफार्म पर उतारा। सामान भी उतारा। फिर चना कुरमुरा की पुड़िया खरीदकर मेरे हाथ में थमायी। कहा, "चलो, किसी बेंच पर बैठकर खायेंगे। भूख लगी है। गपशप करते-करते सुबह हो जायेगी।"

मैं बेंच पर बैठ गयी, वह सिगरेट लेने चला गया। जसविन्दर गया, तो बस गया। घंटा बीता, दो घंटा बीता, मगर वह लौटकर नहीं आया। पूरा दिन बीत गया, फिर भी नहीं आया। जानते हो, कौन स्टेशन था? वह था—चितरंजन।

मेम साहब बोलते-बोलते स्मृतियों में खो गयीं। दीवानखाने में फिर चुप्पी छा गयी। शोहरत मास्टर फिर इसी बीच आये और दो काफी रखकर चले गये। शोहरत मास्टर मेम साहब का टाइम जानते हैं, कि उन्हें कब और क्या चाहिए। उसे वे ठीक टाइम पर हाजिर करते हैं। शोहरत मास्टर मेम साहब के करीबी लोगों में से हैं। वह लगभग पन्द्रह वर्षों से मेम साहब के साथ रह रहे हैं। कोई यह नहीं कह सकता है कि बिना मास्टर की राय के मेम साहब ने कोई काम किया हो। हालांकि शोहरत मास्टर भी मेम साहब से वफादारी के मामले में एक इंच कम नहीं हैं। जबसे उन्होंने मेम साहब का साथ पकड़ा है, तब से पलटकर भी नहीं देखा है अपना घर-द्वार। अब तो जो कुछ हैं, मेम साहब ही हैं।

मेम साहब को शोहरत मास्टर जैसा नगीना आदमी रास्ते में मिला। मेम साहब ने आव देखा न ताव, बस उन्हें अपनी झोली में डाल लिया। तब से मेम साहब की झोली में पड़े हुए हैं शोहरत मास्टर। अगर शोहरत मास्टर उस वक्त मेम साहब से न मिले होते, तो शायद वे इस दुनिया में न होतीं, खुदकुशी कर लेतीं।

जसविन्दर के धोखा देने के साथ मेम साहब के पांव के नीचे की जमीन सरक गयी थी। उन्होंने पुरुष-जाति पर विश्वास करना छोड़ दिया था। उन्होंने तय किया था कि अब अयोध्या जाकर सन्यास ले लेंगी। मन में यह विचार आया, तो वे सीधे चितरंजन से अयोध्या के लिए चल पड़ीं।

माघ मेला का समय था। अयोध्या नहवनियों से भरा हुआ था। सरयू मैया आरती के थाल की तरह जगमग-जगमग कर रही थीं। भीड़ इतनी, कि सरसों फेंकने की जगह नहीं थी। ऐसे में मेम साहब अयोध्या पहुंची—संन्यासी बनने के लिए। मेम साहब के परिवारवाले जिस महंत के चेले थे, उसी महंत के यहां उन्हें शरण मिली। मेम साहब का पहले तो चोला बदला गया, फिर

मेम साहब से लेखक की विशेष बातचीत

...वहां भी तो सुबह होती है

प्रश्न : मेम साहब, आपका असली नाम क्या है? यह पूछने की धृष्टता करने के साथ-साथ मन में यह भी जिज्ञासा उठ रही है कि मेम साहब आपका नाम कब और कैसे पड़ा?

उत्तर : ऐसे सवाल नहीं करने चाहिए, जिससे किसी को तकलीफ हो। खैर, जब आपने इतनी आजिजी से पूछा है, तो बताना ही पड़ेगा। मेरा असली नाम परमजीत कौर है, लेकिन इस नाम से आज मुझे कोई नहीं जानता। सभी कहते हैं मेम साहब। मि० ब्रुश के साथ जब मैं मिहीजाम आयी थी, तभी लोगों ने मेम साहब कहकर पुकारना शुरू किया था। आज सभी कहते हैं—मेम साहब।

प्रश्न : किस सन् में आप मिहीजाम आयी थीं?

उत्तर : ६१-६२ का जमाना रहा होगा। अच्छी तरह सन् याद नहीं है।

प्रश्न : घर की याद कभी आती है?

उत्तर : पहले नहीं आती थी। इधर कुछ बरसों से मानसिक तौर पर घर से जुड़ी हुई महसूस कर रही हूं। खतो-किताबत भी शुरू है। लगभग दो बरसों से मेरा भाई भी मेरे पास आता रहा, मां भी आती रही। उन सब की जिद थी कि मैं गुरदासपुर चलूं। वहीं सेवा का काम करूं। मैं इसे मजाक में टालती रही, मगर परिस्थितियों ने आज वहां जाने को विवश कर दिया है, क्योंकि आतंकवादियों ने मेरे भाई को मार डाला। सोचती हूं, अब पंजाब जाकर मानव-सेवा करूं।

प्रश्न : कुछ लोगों का कहना है कि आप महिलाओं को सलाह देती हैं कि वे मर्दों को अपनी जूती समझें?

उत्तर : बिलकुल झूठ है। मैं क्यों ऐसा कहूंगी? मर्द ही औरतों को जूती समझते हैं। वह औरतों को समझते हैं कि यह लाचार है, यह बिक सकती हैं, इसका शोषण किया जा सकता है। जवान होते ही उसे जानवर की तरह चौकन्ना रहना पड़ता है। यह डर मर्दों ने ही पैदा किया है। औरतों को यह सब कहने की जरूरत नहीं है, वे समझती हैं, मगर वे लाचार हो जाती हैं, अपनी मातृमहिमा के कारण।

प्रश्न : आपने महिला विकास के तहत कौन-सा ऐसा कार्य ग्रामीण महिलाओं के बीच किया है, जिसका उल्लेख किया जा सके?

उत्तर : मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया, जिसका उल्लेख किया जा सके। मैंने महिलाओं की तमाम समस्याओं को तलाशा, मगर किसी एक का हल नहीं ढूंढ़ सकी। मैंने कुछ गांव में लैट्रिन बनवा दी, बालवाड़ियां खोल दी, लेकिन इससे समस्या तो हल नहीं हो जाती।

प्रश्न : क्या आपने सेकेंड लाइन तैयार की है, जो आपकी गैरहाजिरी में, आपके भीतर जो कल्पना है, उसे साकार कर सके?

उत्तर : मुझे विश्वास है कि तरुण करेगा। वह बचपन से मेरे साथ रह रहा है। शोहरत मास्टर से आशा नहीं हैं, क्योंकि उन्हें मुझसे प्यार हैं, मेरे काम से नहीं।

प्रश्न : आप जब पंजाब चली जाएंगी, तो कलकत्ता और कृष्णनगर के आफिस और मकान का क्या होगा?

उत्तर : मकान मेरे नाम से नहीं है। मैंने दूसरे के नाम से उसे खरीदा है और दे दिया है...और आफिस क्या, सेवादल कहिए। सेवादल मेरे साथ है। कुछ लोग चले गये पंजाब, कुछ मेरे साथ जाएंगे। मैं बिहार और बंगाल का सारा काम समेटकर जाऊंगी।

प्रश्न : मि० ब्रुश संस्था खड़ी करके जब भाग खड़े हुए, तो उस समय आपके सामने दिक्कतें तो आयी होंगी?

उत्तर : जिस देश में कौआ नहीं होता, क्या उस देश में सुबह नहीं होती? सुबह होती है। एक मि० ब्रुश की क्या बात आप करते हैं, कई लोगों ने साथ छोड़ दिया। मुझे इसका कोई दुख नहीं है, क्योंकि अनुभवों ने मुझे यही सिखाया है कि हर दुख से ज्ञान सीखो, आने वाले दुख का चरित्र तभी समझ सकोगी। मेरा सौभाग्य है कि मुझे यह अवसर मिला है, इसलिए दिक्कत नहीं हुई।

प्रश्न : मि० ब्रुश या जसविन्दर से फिर कभी भेंट हुई?

उत्तर : मि० ब्रुश से तो नहीं हुई, एक बार जसविंदर से कलकत्ता में भेंट हुई थी। अचानक फुटपाथ पर चलते हुए टकरा गया था। मैंने उसे रोककर हालचाल पूछा। वह कुछ बोल नहीं सका। मरे हुए चूहे की तरह दिख रहा था वह। मैंने उसे कुछ नहीं कहा, और आगे बढ़ गयी।

—रवीन्द्र भारती

रहन-सहन और कुछ दिनों बाद रहने का तौर-तरीका। रात-दिन रामधुन गातीं। सपने में भी राम दरबार, कौशल्या, कैकेयी और मंथरा के जीवन में घटी घटनाओं पर रोती रहतीं। सुबह नहवनियों के राशन से मेम साहब का भी सीधा निकलता, और वे प्रसाद ग्रहण करतीं।

महंत जी मेम साहब की इस तपस्या से बहुत खुश थे। वह अपने चेलों के सामने मेम साहब को बुलाते और कहते, "देखो, बच्चा। भरी जवानी इसने इतना बड़ा त्याग किया है। संन्यासिनी हो गयी है—मीरा की तरह। इसके परदादा के बाबा भी अपने यजमान रहे हैं।"

महंतजी जिसकी इतनी तारीफ कर दें, उसकी चर्चा चेलों की जुबान पर दिन भर बनी रहती थी। एक दिन तारीफ करते-करते मेम साहब को लेकर महंतजी तहखाने के अंदर चले गये, जहां उन्होंने शयन-कक्ष बना रखा था। तहखाना खुला, बन्द हुआ। आगे-आगे महंत, पीछे-पीछे मेम साहब। दोनों लोग शयनकक्ष तक पहुंचे। बिस्तर पर राम की मूर्ति रखी हुई थी। उसके सामने जाकर महंतजी ने गंभीर मुद्रा में कहा, "बेटी, आज तुम्हें दीक्षित करना है। सारे वस्त्र उतारकर मूर्ति के बगल में तुम लेट जाओ। मेरी आंखें बन्द रहेंगी और तुम्हारी भी।"

नहीं चाहते हुए भी मेम साहब के संन्यासी मन ने देह पर से वस्त्र उतारने को विवश किया। फिर तो महंतजी ने वही सुलूक किया, जो कभी उनको ट्यूशन पढ़ानेवाला मास्टर ताराचन्द किया करता था।'

घंटों के बाद थकी-हारी मेम साहब तहखाने से निकलीं। अपनी अटैची उठायी, फैजाबाद स्टेशन आयीं। वहां से दिल्ली की तरफ जानेवाली ट्रेन में बैठ गयीं। जिस डिब्बे में मेम साहब बदहवास बैठी हुई थीं, उसी डिब्बे में थे—शोहरत मास्टर।

शोहरत मास्टर चम्पा बाई नाच कम्पनी में ढोलकिया थे। मैनेजर भी थे। ढोल बजाने से लेकर सट्टा बांधने तक का काम वह अकेले करते थे। चरित्र के भी ठीक थे। कम्पनी का एक पैसा कभी इधर-उधर नहीं किया, किसी लड़की पर बुरी नजर नहीं डाली, वरना जिस कम्पनी में सात-सात डांसर हों, उसका मैनेजर मजाक तक उनसे न करे, यह ताज्जुब की बात है। लोग शोहरत मास्टर की इसी बात पर ताज्जुब करते थे।

शोहरत मास्टर मेम साहब को डिब्बे में देखकर ताड़ गये कि यह वक्त की मारी हुई औरत है। लगे हेल-मेल बढ़ाने। पहले तो मेम साहब ने कोई जवाब नहीं दिया, सुनती रहीं, बाद में शोहरत मास्टर से इतनी प्रभावित हुई

कि सब कुछ उनके सामने उगल दिया।

शोहरत मास्टर मेम साहब को बहन बनाकर अपनी कम्पनी में ले आये। मालकिन चम्पा देवी से मिलाया, और वे भर्ती हो गयीं। स्टेज पर प्रार्थना में खड़ा होने से लेकर नाचने और रोल करने की ट्रेनिंग शोहरत मास्टर खुद दिया करते थे। क्या मजाल था कि मेम साहब को कोई कुछ कह दे। कम्पनी में इतना मान था शोहरत मास्टर का।

नाच कम्पनी जिला बस्ती (उ०प्र०) में एक जगह बारात में नाचने गयी, कि मत पूछिए कुछ....क्या आलम....जहां तक निगाह जाती थी, वहां तक नचदेखवा ही नचदेखवा। लैला-मजनूं का ड्रामा था। लैला बनी हुई थी मेम साहब और मजनूं बना था—असगर। दरभंगा कम्पनी का भूतपूर्व हीरो। ऐसा रंग जमा था कि उस वक्त कोई किसी को छुरा मार देता, या कोई किसी को लूट लेता, तो कोई नहीं उठता। नाच खत्म हुआ जाकर सुबह आठ बजे। अभी मेकअप भी नहीं उतरा था कि ग्रीन रूम में पहुंच गये दरोगा साहब—बाबू छबीला सिंह, जिनका पूरे इलाके में नाम था। छह फुटा दरोगा। वह जब चलता था घोड़े पर चढ़कर, तो नामी बदमाश इलाका छोड़कर भाग खड़े होते थे। इतना तपा हुआ नाम था छबीला सिंह का।

बाबू छबीला सिंह मेम साहब के पास आये और बेला का गुच्छा उनके हाथों में थमाते हुए कहा, "मेम साहब, आपने तो हमें जीत लिया। आपकी अदा पर दिलो-जान से फिदा हैं हम। मेम साहब, एक बार 'हां' कह दीजिए। चलिए मेरे साथ। हम शादी करेंगे डंके की चोट पर।"

मेम साहब ठठाकर हंस पड़ीं। उन्होंने आहिस्ता से शोहरत मास्टर के कान में कुछ कहा। मास्टर ने दरोगा से उसी अंदाज में बताया कि मेम साहब कह रही हैं कि इस जन्म में तो आप लेट हो गये। अब अगले जन्म में ही साथ दे सकूंगी।

छबीला सिंह सेन्टीमेन्टल आदमी था। उसके सामने न कहने की हिम्मत किसी की न थी। पहली बार मेम साहब ने ऐसा कहा। लोगों ने सोचा कि कम्पनी की शामत आ गयी, मगर बात उलटी हुई। छबीला सिंह ने कुछ नहीं कहा। जवाब सुनकर वह थाने आया, अपनी कुर्सी पर बैठा, रिवाल्वर निकाला और अपने आप पर घोड़ा दबा दिया। जय सियाराम।

दूसरे दिन हुआ हल्ला-छह फुटे दरोगा ने खुदकुशी कर ली। खुदकुशी क्यों की, सिवाय मेम साहब और शोहरत मास्टर के कोई नहीं जानता। मेम साहब ने तीन दिनों तक एक दाना भी मुंह में नहीं दिया। चौथे दिन उन्होंने शोहरत मास्टर से कहा, "मास्टरजी, नाच कम्पनी को छोड़कर चलिए, इस दुनिया से बाहर। अब यहां मन नहीं लगता।"

मास्टर को बात जंच गयी। कम्पनी से इतने वर्षों जुड़े रहने के बाद भी मास्टर को एक सेकेण्ड भी नहीं लगा कम्पनी छोड़ने में। कम्पनी छोड़कर शोहरत मास्टर मेम साहब के पीछे हो गये।

मेम साहब दिल्ली में जब एक बिस्कुट कम्पनी में पी०आर०ओ० थीं, तब भी शोहरत मास्टर थे, आज जब पी०आर०ओ० नहीं हैं, तब भी शोहरत मास्टर हैं। दिल्ली में रहकर मेम साहब ने जिस बिस्कुट कम्पनी में काम किया, उसे चमका दिया। प्रचार से लेकर मिनिस्ट्रीरियल लेबिल पर काम कराने में माहिर थीं, मेम साहब।

नाच कम्पनी में जो एक बार गया, वह उसके संस्कार को भी अपने साथ ले लेता है। नाच कम्पनी से अलग होने पर भी यह संस्कार नहीं मरता। अतः कुछ दिनों के बाद मेम साहब बेचैन होने लगीं, मंच पर आने को। एक दिन अचानक बिस्कुट कम्पनी से इस्तीफा देकर मुम्बई चली गयीं—फिल्म में हीरोइन बनने।

मेम साहब को फिल्म में खास चांस नहीं मिला। हीरोइन तो नहीं बन सकीं, मगर साइड रोल में जरूर कुछ कमाया, और अच्छा कमाया। उस कमाई ने मेम साहब को फिर अपने ठाठ-बाट में ला दिया। उन्होंने कार खरीद ली, शोहरत मास्टर को ड्राइवरी सिखा दी। अब तो रोज किसी-न-किसी स्टूडियो में किसी-न-किसी प्रोड्यूसर के साथ शाम बिताने लगीं। उसी आवाजाही में मि० ब्रुश से भेंट हुई।

ब्रुश चमत्कारी पुरुष था। उसके पीछे दस लोग लगे रहते थे। बड़ा प्रतिभावान था। सादा जीवन था। लोक कल्याण के काम में अपने को समर्पित किये हुए था। उसी ने मेम साहब को फिल्म उद्योग के प्रति मोहभंग पैदा किया और समाज सेवा की तरफ मोड़ा। उसने पिछड़े हुए इलाकों में स्वतंत्र रूप से काम करने की सलाह दी।

मि० ब्रुश की बात शोहरत मास्टर को जंच गयी। मेम साहब को संस्था में रुचि पहले तो नहीं जगी, मगर जब शोहरत मास्टर ने समझाया तो फिर वे तैयार हो गयीं। ब्रुश मेम साहब को लिये-दिये चला आया बिहार। वह कहता था कि हिन्दुस्तान का नाला है बिहार। मेम साहब, इस नाले को नदी बनाना है और उसमें नौकाएं छोड़नी हैं, कमल खिलाना है। बड़ा पिछड़ा हुआ प्रान्त है।

मेम साहब क्या कहतीं, हुंकारी भरने के अलावा। संस्था का कोई अनुभव तो था नहीं। मि० ब्रुश संथाल परगना उन दोनों को लेकर चला आया और जिस स्टेशन पर उतरा, उस स्टेशन का नाम था—चितरंजन।

चितरंजन के रेलवे प्लेटफार्म पर चलते हुए मेम साहब की स्मृतियां ताजी हो गयीं। चलते-चलते मि० ब्रुश ने कहा, "यह बिहार-बंगाल की सीमा है। मेम साहब, आप आदिवासी गांव में काम कीजिएगा। मैं आपकी संस्था का रजिस्ट्रेशन करा देता हूं।"

ब्रुश सचमुच हफ्ते भर के अन्दर पटना सचिवालय से रजिस्ट्रेशन कराके चला आया और गांवों में मेम साहब के साथ काम करने लगा।

ब्रुश हिन्दी का अच्छा जानकार था। हालांकि वह अमेरिकन था। कविता, नाटक और कुछ कहानियों का अनुवाद उसने अंग्रेजी में करना शुरू किया था, उसी सिलसिले में हिन्दी, बंगला के कवि-लेखक मि० ब्रुश से मिलने मिहीजाम यानी चितरंजन आया करते थे। सब मिलने आनेवाले मेम साहब को जानते थे, और मेम साहब उन्हें जानती थीं। आये तो कई कवि-लेखक, मगर कोई अगर मेम साहब का दिल जीत सका तो, वह थे राजकमल चौधरी। मेम साहब उन्हें मीता कहती थीं और यहां-वहां उनके साथ सैर-सपाटा करने जाती थीं।

मसूरी में राजकमल चौधरी के साथ दो महीना गुजारने पर भी मेम साहब को लगता था कि अभी आये हुए दो दिन हुए। मसूरी के माल रोड पर चलते हुए एक बार राजकमल चौधरी ने कहा, "मेम साहब, हम आप पर किताब लिखेंगे।"

मेम साहब ने कहा, "तुम्हें मैं तब छोड़ दूंगी।"

राजकमल चौधरी थोड़ी देर चुप रहे, फिर कहा, "मेम साहब, मैं ऐसा खोटा सिक्का हूं, जो किसी दुकान में चल नहीं सकता, लेकिन आपके बटुए में आ जाऊंगा।"

यह सुनकर मेम साहब ने राजकमल को छाती से लगा लिया था और बच्चे की तरह फफक-फफककर रोने लगी थीं, "इतना प्यार मैं कैसे झेल पाऊंगी राजकमलजी!"

मेम साहब को जिस दिन मालूम हुआ कि राजकमल चौधरी नहीं रहे, उस दिन उनको जबरदस्त आघात लगा। महीनों वह बिस्तर से लगी रहीं। कोई उनसे मिलने आता तो कहतीं, 'देखो यह उपन्यास, इसका नाम है 'देहगाथा'। इसे मेरे मीता ने लिखा है। मैं जो खादी पहनती हूं, वह भी मीता ने ही पहनना सिखाया है। ब्रुश तो मुझे अंग्रेजी सिखाते-सिखाते चला गया यहां से, मगर मेरा दोस्त नहीं बन सका। मेरा दोस्त था राजकमल चौधरी बड़ा कवि, बड़ा लेखक, मगर ईश्वर को...।" मेम साहब बोलते-बोलते रोने लगतीं।

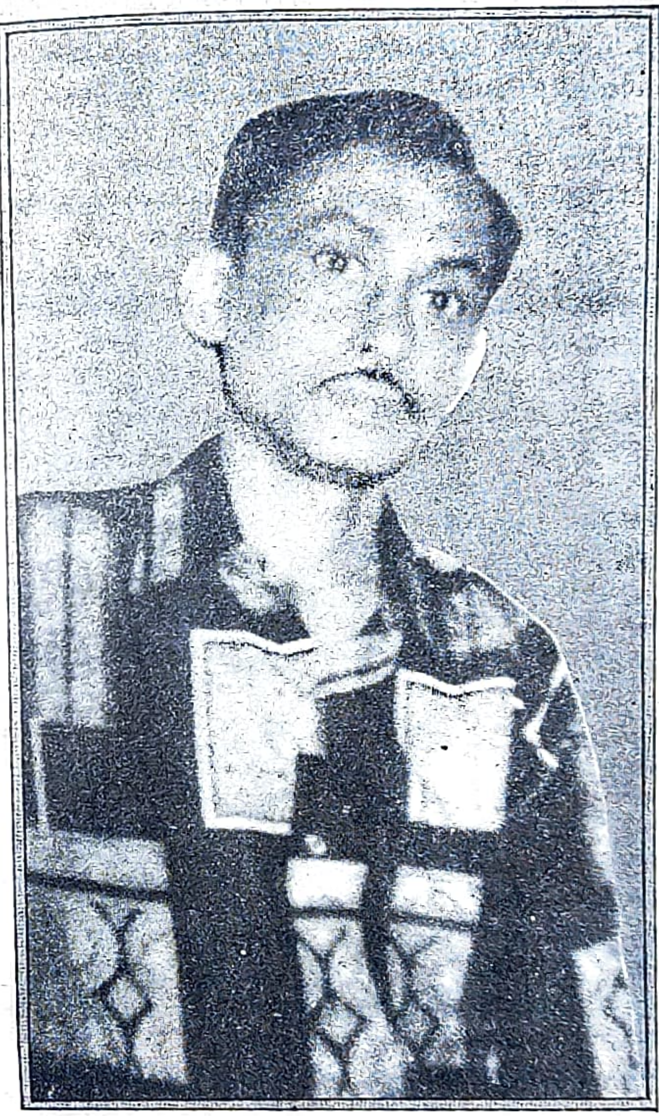
मेम साहब कल की अपेक्षा आज ज्यादा सम्पन्न हैं। कलकत्ता में दो-दो मकान हैं। उन्होंने मिहीजाम का मकान बेच दिया है। संस्था यहां से उठाकर कृष्णानगर ले गयीं। साल में दो-तीन महीने के लिए मिहीजाम आती हैं—दल-बल के साथ। उनके रहने खाने पर हजारों का खर्च है। समाज सेवा में दिल्ली-मुम्बई एक करती रहती हैं, मगर जब अकेले में होती हैं, खासकर मिहीजाम में, तो उनके भीतर के बाइस्कोप की रील चलने लगती हैं।

•

(कथा परमजीत कौर उर्फ मेम साहब के साक्षात्कार पर आधारित।)

आत्महत्या को विवश हुआ एक परिवार

–आनन्द सिन्हा



शंकरदेव भट्टाचार्य

भट्टाचार्य परिवार के प्रति पुलिस आज जो दया-भाव दिखा रही है, यदि पहले ही इसके अंशमात्र का प्रदर्शन किया होता, तो पूरा परिवार आत्महत्या करने को हरगिज विवश न होता

वाराणसी के प्रसिद्ध दशाश्वमेध घाट से कुछ ही दूरी पर बसा है मोहल्ला पतालेश्वर। तमाम धनाढ्य व्यवसायियों के मकान और व्यावसायिक प्रतिष्ठान बने हैं यहां। इसी इलाके के मकान नंबर डी ३२/२३ में शंकरदेव भट्टाचार्य अपने परिवार के साथ रहते थे। हंसता-खेलता परिवार था उनका। वह स्वयं, उनकी पत्नी कल्पना (४५ वर्ष), पुत्री उमा (१८ वर्ष) व पुत्र गौतम (१४ वर्ष)।

शंकरदेव भट्टाचार्य निहायत ही शरीफ व्यक्ति थे। वह मूलतः कलकत्ता के निवासी थे। उनके माता-पिता अरसा पहले वाराणसी में आकर बस गये थे। उनके पिता व्यवसायी थे। अच्छा पैसा था उनके पास। अतः वाराणसी में उन्होंने काफी संपत्ति बनाई थी।

पिता के बाद शंकरदेव भट्टाचार्य भी व्यवसाय करने लगा। उसने दवा का छोटा-सा धंधा आरम्भ किया, जो जल्द ही चल निकला।

रुपए-पैसे की कमी नहीं थी। शंकरदेव अपनी पत्नी और बच्चों की हर ख्वाहिश पूरी करते थे। काम-धंधे से जब भी फुर्सत मिलती, वह परिवार के साथ सैर-सपाटे को निकल जाते थे। कल्पना भी अपने पति से खुश थी। शंकर ने बच्चों की शिक्षा का भी माकूल इंतजाम कर दिया था। बेटी उमा और पुत्र गौतम स्कूल जाते थे। बच्चों का पिता से काफी लगाव था। शंकर भी बच्चों पर जान छिड़कता था। अंतर्मुखी प्रवृत्ति का शंकरदेव भट्टाचार्य उर्फ शंकर दा अपनी छोटी-सी दुनिया में सुखी था। सब कुछ मजे से चल रहा था। बच्चों की हंसी-ठिठोली से घर में दिन-रात रौनक रहती थी।

कहते हैं, समय हमेशा एक-सा नहीं रहता। शंकरदेव भट्टाचार्य के साथ भी ऐसा ही हुआ। वर्ष १९९२ के आसपास की बात है। शंकर का काम-धंधा ठीक से नहीं चल रहा था। उसे पैसे की तंगी रहने लगी। धंधे में नुकसान हो गया था। समय गुजरता गया, लेकिन शंकरदेव को एक बार झटका लगा, तो दुबारा सम्हल नहीं सका। नौबत यह आ गयी कि घर के खर्चे के लाले पड़ने लगे। लिहाजा शंकर ने तंगी से आजिज आकर मकान के एक हिस्से को किराये पर उठा दिया।

प्रमोद और भोला यादव नामक दो व्यक्ति उसके मकान में किराये पर रहने लगे। मकान काफी बड़ा था। अतः शंकरदेव को कोई दिक्कत नहीं आयी। जैसे-तैसे शंकर के परिवार की डगमगाती गाड़ी फिर पटरी पर आ गयी, लेकिन काम-धंधा फिर भी ढर्रे पर नहीं आया। शंकर इस चिंता में काफी परेशान रहने लगा।

आदमी अपनी चिंताओं का हल शराब में ढूंढ़ने लगता है, शंकर के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। वह शराब पीने लगा। कल्पना उसे लाख समझाती, किन्तु शंकर अपनी परेशानियों से जूझ रहा था। वह इधर-उधर छटपटाता घूमता रहा, लेकिन उसका किसी ने साथ नहीं दिया। धीरे-धीरे शंकर मानसिक तनाव से ग्रस्त होता गया।

उसने पत्नी और बच्चों से बात करना कम कर दिया। कल्पना शंकर की मनःस्थिति को समझ रही थी। उसने समझाया, "इस तरह घबराने से कुछ नहीं होगा। आप परेशान न हों, अगर ऐसी कोई दिक्कत हुई तो हम यह मकान बेच देंगे। आप कोई और धंधा कर लीजिएगा।"

"ले-देकर एक ही उम्मीद है, अगर यह भी बेच दूंगा तो हम सब जाएंगे कहां? उमा और गौतम की पढ़ाई कैसे होगी? उमा का ब्याह भी तो करना है। पहाड़ के समान जिंदगी कैसे कटेगी? मकान बेचकर तो जिंदगी गुजारी नहीं जा सकती।"

"आप ऐसा क्यों सोचते हैं! क्या जिंदगीभर ऐसा ही समय रहेगा? आज हमारे पास पैसा नहीं है तो क्या हुआ। कल को आपका कारोबार चल निकला तो हमारे दिन फिर जायेंगे।"

"भगवान करे ऐसा ही हो। लेकिन फिलहाल क्या करूं, मैं यह सब सोचकर इतना परेशान हो जाता हूं कि पूछो मत। मन करता है कि जहर खा लूं, या कहीं डूब मरूं। फिर तुम्हारी और बच्चों की सोचकर शांत बैठ जाता हूं।"

"भगवान के लिए ऐसी बात फिर मुंह से मत निकालना। तुमने ऐसी बात सोची भी कैसे? तुम्हारे बिना भला जी सकूंगी मैं? उमा और गौतम का तुम्हारे बिना क्या हाल होगा, कभी सोचा है तुमने।" कल्पना की आंखें भर आयीं। उसने शंकर को समझाया और मकान बेचने पर राजी कर लिया।

शंकर का मकान व्यस्ततम मोहल्ले में था। मकान की कीमत १८ से २० लाख के आसपास थी। शंकर ने अपने कुछ मित्रों और परिचितों से मकान बेचने का जिक्र किया। यह बात धीरे-धीरे मोहल्लेभर में फैल गयी। शंकर के पास मकान खरीदनेवालों का तांता लगने लगा। सुबह-शाम लोग उसके पास मकान खरीदने की बातचीत करने आने लगे।

इस बीच किरायेदार प्रमोद और भोला से शंकर का झगड़ा हो गया। दरअसल शंकर को मकान बेचना था, इसलिए वह अपने किरायेदारों से मकान खाली करने को कह रहा था। यह बात वर्ष १९९७ के शुरुआती दिनों की है। शंकर का विवाद बढ़ा, तो उसके किरायेदार ने उस पर मुकदमा कर दिया। मामला अदालत में पहुंच गया। इसके बावजूद शंकर और प्रमोद-भोला में अक्सर झगड़ा हो जाता था।। शंकर प्रमोद की इस बात से आजिज था कि वह मकान आखिर खाली क्यों नहीं करेगा। उसने लाख चाहा कि प्रमोद सहजता से मकान खाली कर दे, लेकिन विवाद ने तूल पकड़ लिया। शंकर पहले ही परेशान था, फिर कोर्ट-कचहरी के चक्कर में उलझकर वह और भी परेशान हो गया।



कल्पना और गौतम : जीने की तमन्ना फिर जगी

खैर, जैसे ही खबर फैली कि शंकर अपना मकान बेचना चाह रहा है, प्रमोद और भोला ने उस पर दबाव बनाना आरम्भ कर दिया। प्रमोद यादव और भोला यादव अपराधी प्रवृत्ति के थे। वे मकान बेचने-खरीदने का भी काम करते थे। क्षेत्र में उनका खासा रुतबा था। दबंग होने के कारण मोहल्ले में कोई भी उनका विरोध करने का साहस नहीं जुटा पाता था। औने-पौने दामों पर जोर-जबरदस्ती-कर भोले-भाले लोगों से मकान खरीदना उनका पेशा था। मकान को जबरन खरीदने के लिए किसी भी हद से गुजरना उनके लिए आम बात थी। वे दोनों इलाके के कई मकान इसी तरह कब्जा कर चुके थे। कब्जे के बाद वह अच्छा ग्राहक ढूंढ़कर मकान को अच्छे दामों में बेच देते थे। उन दोनों की नीयत थी कि वे शंकर के मकान पर कब्जा कर लें।

वर्ष १९९७ के शुरुआती दिनों की बात है। एक रोज प्रमोद और भोला यादव शंकर के कमरे में घुस आये। शंकर अपनी पत्नी और बच्चों के साथ घर में ही था।

"सुना है कि तुम मकान बेच रहे हो?" प्रमोद दबंगई भरे लहजे में बोला।

"इतनी तमीज नहीं कि किसी के घर में घुसने से पहले दरवाजे पर दस्तक देना चाहिए।" शंकर ने नाराजगीभरे लहजे में कहा।

"तू मुझे तमीज सिखायेगा! तेरी यह औकात! लगता है तू मुझे समझ नहीं पाया।" कहते ही प्रमोद और भोला ने शंकर की पिटाई शुरू कर दी। अचानक हुई पिटाई से शंकर बदहवास हो गया। कल्पना और बच्चे भी रोने लगे। कल्पना ने शंकर को बचाने का प्रयास किया तो प्रमोद और भोला ने उसकी भी पिटाई कर दी। फिर जाते-जाते प्रमोद और भोला धमकी दे गये कि उनकी मर्जी के बिना शंकर ने मकान बेचा तो वे उसका वह हाल करेंगे कि उसके फरिश्ते भी याद रखेंगे। शंकर अचानक हुए इस हादसे से सहम गया। उस रोज वह वहशत के कारण काफी देर तक रोता रहा। कल्पना और बच्चे भी वहशतजदा थे। शंकर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अगले दिन भी घर में बैठा रहा। उसने इस घटना का लेशमात्र भी जिक्र किसी से नहीं किया। खून का घूंट पीकर वह चुपचाप बैठा रहा। उसकी चिंता देख कल्पना उसे ढांढ़स देने का प्रयास करती। शंकर इस कदर भयभीत था कि वह हादसे का जिक्र होते ही चिढ़ जाता। बात करते-करते उसका गला रुंध जाता और आंखों में आंसू छलछला उठते।

"मैं क्या करूं, तुम्हीं बताओ? वे गुण्डे मेरे पीछे पड़े हैं।" शंकर रोने लगा। कल्पना भी अचानक हुए हादसे से हतबुद्धि थी। उसने शंकर को समझाने का प्रयास किया। कल्पना की इच्छा थी कि वह पुलिस को पूरी घटना बयान कर गुण्डों को गिरफ्तार करवा दे।

"पुलिस भी क्या कर लेगी। गुण्डों का ही राज हो गया है आजकल।" शंकर को पुलिस पर विश्वास नहीं था।

"नहीं, ऐसा नहीं है। तुम बात करके तो देखो। शायद पुलिस के डर से गुण्डे हमारा पीछा छोड़ दें।"

शंकर काफी हिम्मत जुटाकर एक रोज थाने पहुंचा। शंकर का घर दशाश्वमेध थानान्तर्गत था। उसने थाना-प्रभारी से मुलाकात करनें की कोशिश की, किन्तु वह कहीं व्यस्त थे। लिहाजा मुलाकात नहीं हो सकी। शंकर ने काफी देर थाने पर उनका इंतजार किया। अंततः निराश होकर घर लौट आया।

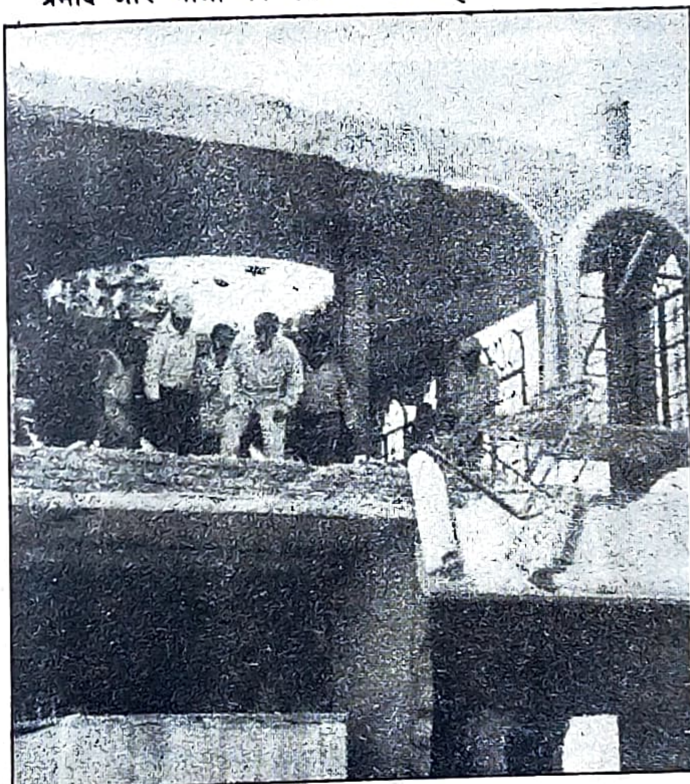
दो दिन बाद प्रमोद और भोला को खबर मिल गयी कि शंकर थाने गया था। दोनों आगबबूला होकर शंकर के पास पहुंचे।

"क्यों बे, तू थाने गया था?"

प्रमोद और भोला को देखकर शंकर कांप उठा।

"बोलता क्यों नहीं?" प्रमोद और भोला ने शंकर की पिटाई आरम्भ कर दी। कुछ पल तो कल्पना यह तमाशा देखती रही, किन्तु उससे सहा नहीं गया। उसने प्रमोद और भोला को रोकने का प्रयास किया। प्रमोद और भोला कल्पना के बीच में आते ही रुक गये।

प्रमोद दहाड़ते हुए बोला, "तुझे अपना सुहाग प्यारा नहीं है क्या? इसे समझाती क्यों नहीं? यह मरना क्यों चाहता है? हमारे मामले में पुलिस भी हाथ नहीं डालती। यह अगर बाज नहीं आया तो ध्यान रखना, तुम्हारी जवान लड़की घर से बाहर निकलने लायक नहीं रहेगी।"



भैरों सरदार का गेस्ट हाउस गिरा दिया गया



उमा : जीवन खत्म

कल्पना बुरी तरह सहम गयी। उमा भी वहीं खड़ी थी। प्रमोद की बात सुन उसका चेहरा पीला पड़ गया।

शंकर पिटाई के बाद बेहोश हो जमीन पर पड़ा था। बच्चे रो रहे थे। कल्पना के हाथ-पैर ढीले पड़ रहे थे। उसने बेहोश पड़े शंकर को जैसे-तैसे उठाकर बिस्तर पर लेटाया। पिटाई से शंकर का चेहरा लहूलुहान हो रहा था। कुछ देर बाद शंकर को होश आया तो उसकी हालत और भी खराब हो गयी। उसका ब्लड प्रेशर काफी बढ़ गया था।

यह झंझट अभी चल ही रहा था कि एक और मुसीबत गले आ पड़ी। इलाके का कुख्यात भू-माफिया भैरों सरदार इस मामले में कूद पड़ा। उसने शंकर के पास अपने आदमी भेजकर उसे बुलवा भेजा। शंकर समझा, भैरों यादव शायद प्रमोद यादव और भोला का आदमी है। अतः वह घर आये व्यक्तियों के साथ चल दिया।

भैरों यादव करीबी मोहल्ले गणेश मोहाल में रहता था। पुलिस के अनुसार, भैरों सरदार इलाके के छुटभैये अपराधियों का सरगना था। वह प्रापर्टी का भी काम करता था। अपने दबंग साथियों के बलबूते मकानों पर कब्जा कर उन्हें सस्ते दाम पर खरीदकर उसे अच्छे दामों पर बेचना उसका पेशा था।

गणेश मोहाल में बना गंगा गेस्ट हाउस भैरों सरदार और उसके साथियों की शरणस्थली था। इस गेस्ट हाउस की मालकिन भैरों की पत्नी लीला देवी उर्फ लिपिस्टिक वाली भाभी थी।

शंकर को लेकर भैरों के साथी गंगा गेस्ट हाउस पहुंचे। भैरों एक आलीशान कमरे में सोफे पर बैठा था। भैरों के साथी शंकर को चारों तरफ से घेरे खड़े थे। भैरों ने शंकर से उसके मकान की बाबत पूछताछ आरम्भ कर दी। शंकर घबराया हुआ था। वह हाथ जोड़े खड़ा रहा।

"तुम मकान बेच रहे हो?"

"जी, सोच तो रहा हूं।" शंकर दबी जुबान बोला।

"क्या कीमत है तुम्हारे मकान की?"

"साहब, जो भी मिल जाएगा, मुझे कुबूल है। वैसे बीस लाख से कम कीमत नहीं होनी चाहिए।"

"बीस लाख...! तेरा दिमाग तो खराब नहीं है। इस इलाके में मकान की कीमत हम तय करते हैं। तुझे मकान की सही कीमत मिल जाएगी। बस जैसा हम कहें, वैसा करते जाओ।"

शंकर, भैरों सरदार की बात सुनकर बोला, "लेकिन आपके आदमी तो पहले ही मुझसे कह चुके हैं कि मैं मकान उनके नाम कर दूं। उन्होंने मुझे मारा-पीटा भी है।" शंकर सहमते हुए बोला।

"क्या बक रहे हो?" भैरों सरदार आश्चर्य जताते हुए बोला।

"सरदार, यह प्रमोद और भोला की बात कर रहा है। मुझे मालूम हुआ है कि प्रमोद और भोला भी इस मकान को खरीदना चाहते हैं।" भैरों सरदार का एक साथी बीच में बोला।

"खैर, कोई बात नहीं। भोला और प्रमोद को मैं देख लूंगा। तुम सिर्फ उतना करो, जितना मैं कह रहा हूं। यही तुम्हारे लिए ठीक रहेगा।" भैरों सरदार के आदमियों ने शंकर को धमकाया कि वह जैसा सरदार कह रहे हैं, वैसा ही करे, वरना उसका पूरा परिवार तबाह कर दिया जाएगा। शंकर को कुछ समझ नहीं आ रहा था। उसने भैरों सरदार के आदमियों से पूछा कि वह प्रमोद और भोला यादव को क्या जवाब दे।

"तुम्हें कुछ कहने की जरूरत नहीं। दो दिन बाद तुम कुछ कागजों पर दस्तखत कर देना, बस। अगर भोला यादव और प्रमोद कुछ पूछें तो कह देना कि भैरों सरदार आपसे बात कर लेंगे।"

कुछ दिन इसी असमंजस में गुजर गये। एक ओर प्रमोद और भोला शंकर पर दबाव डाल रहे थे, तो दूसरी ओर भैरों सरदार उसे परेशान कर रहा था। इस बीच एक रोज प्रमोद और भोला, शंकर के घर पहुंचे। प्रमोद और भोला ने शंकर को तीन लाख रुपये देकर उससे मकान के कागजात पर हस्ताक्षर करने को कहा। शंकर ने भैरों सरदार के निर्देशानुसार सारी बात प्रमोद और भोला को बता दी।

"तो तुम भैरों सरदार के पास पहुंच गये। लगता है, तुम शराफत से समझ नहीं रहे हो।" प्रमोद और भोला शंकर को पिस्तौल दिखाकर पहले तो कागज पर दस्तखत कराने के लिए जोर डालते रहे, फिर भी जब

शंकर नहीं माना तो उन्होंने शंकर को पीट-पीटकर बेहाल कर दिया।

परिवार पर आयी यह समस्या सुलटने का नाम नहीं ले रही थी। शंकर ने अपने कुछ रिश्तेदारों और मित्रों से जिक्र किया, किंतु किसी ने मुसीबत में उसका साथ देना तो दूर, उसे ढांढ़स भी नहीं बंधाया। हर कोई कहता, अगर अपनी जान प्यारी हो तो उस मकान को बेचकर जल्दी वहां से निकल जाओ।

शंकर की मनोदशा देख कल्पना और बच्चे भी परेशान हो रहे थे। एक रोज शंकर घर में लेटा हुआ कुछ सोच रहा था। अचानक उसके आंसू छलक आये और वह फफककर रोने लगा। शंकर को रोते देख कल्पना उसके पास आ बैठी। शंकर की आंखों से आंसुओं की धार अनवरत निकलती जा रही थी। कल्पना ने शंकर के आंसू पोंछे, फिर बोली, "आप, भगवान के लिए अब सोचना छोड़ दीजिए। जो होगा, देखा जाएगा। आखिर मकान आपसे बढ़कर तो नहीं है।"

"कल्पना, मैं जिंदगी में तुम्हारे और बच्चों के लिए कुछ नहीं कर पाया। तुम मुझे माफ कर देना।" शंकर सिसकियां लेकर रो रहा था। बड़ी मुश्किल से वह चुप हुआ।

वर्ष '९७ इसी प्रताड़ना में गुजर गया। शंकर का काम-धंधा चौपट था। किरायेदारी के रुपये से थोड़ी-बहुत गुजर-बसर होती थी, वह भी बंद हो गयी थी। जो भी रुपया-पैसा शंकर के पास था, समाप्त हो चुका था। बच्चों की फीस और कपड़े आदि तमाम समस्याएं एकसाथ मुंह बाये खड़ी थीं। नया साल यानी १९९८ शंकर और कल्पना के लिए मानो काल साबित हो रहा था।

जनवरी के शुरुआती दिनों में भैरों सरदार ने जबरन मारपीट कर शंकर से कुछ कागजों पर दस्तखत करवा लिये। शंकर और कल्पना किसी कीमत पर नहीं चाहते थे कि वे मकान भैरों सरदार के सुपुर्द करें, किंतु भैरों सरदार और उसके साथी बार-बार पूरे परिवार को मारने की धमकी दे रहे थे। भैरों सरदार जब भी शंकर के घर आता, तो उमा से छेड़छाड़कर भद्दी-भद्दी बातें कहता था। शंकर और कल्पना भैरों सरदार की इस हरकत से सहमे हुए थे। इस बीच प्रमोद, भोला और भैरों सरदार का आपस में समझौता हो गया। दरअसल प्रमोद समझ चुका था कि भैरों सरदार के आगे उनकी एक नहीं चलेगी। उन्होंने तय किया कि तीनों मिलकर मकान खरीद लेंगे और मकान बेचने में जो भी मुनाफा होगा, उसे बराबर हिस्से में बांट लिया जाएगा।

उधर भैरों ने शंकर से कागजात पर यह लिखवाकर दस्तखत करा लिये कि उसने भैरों को मकान चार लाख में बेचा है। उसने यह भी लिखवाया कि भैरों ने उसे चार लाख रुपए दे दिये हैं।

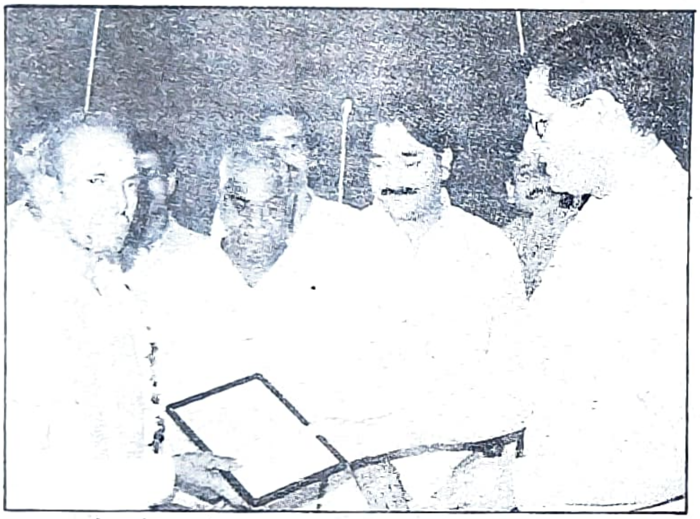
इसके बाद भी भैरों सरदार की नीयत नहीं भरी। वह शंकर पर जोर डालने लगा कि वह बिना पैसे लिये ही मकान की रजिस्ट्री उसके नाम कर दे। उसने डरा-धमकाकर शंकर से स्टाम्प पेपर पर यह लिखवाने का प्रयास किया कि मकान की आधी कीमत उसके द्वारा लिये गये दो लाख के कर्ज के बदले भैरों सरदार को दे दी गयी। जबकि शंकर ने भैरों सरदार से फूटी कौड़ी भी कर्ज पर नहीं ली थी। शंकर के होश उड़ गये। वह अगर विरोध करता भी तो कैसे? भैरों सरदार था कि उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था। शंकर ने जैसे-तैसे बहानाकर उसे कुछ दिनों के लिए टाल दिया।

अब तक शंकर की तबीयत खराब रहने लगी थी। उसे हाई ब्लड प्रेशर हो गया था। कई दिनों तक वह बेड पर पड़ा रहा। डाक्टर की दवा के लिए पैसे नहीं थे।

जैसे-तैसे फरवरी बीत गया। शंकर की तबीयत खराब थी। वह बिस्तर पर पड़ा था। इस दौरान एक रोज भैरों सरदार और उसके आदमी शंकर के पास आये। उन्होंने शंकर को जोर-जबरदस्ती कर मकान की रजिस्ट्री के कागजात पर दस्तखत करने को कहा।

"मैं अभी बीमार हूं, कुछ दिनों बाद रजिस्ट्री करवा दूंगा।" शंकर ने मजबूरीभरे लहजे में कहा।

"मैं तेरी सब चालें समझ रहा हूं। ऐसा नहीं कि तू चल-फिर नहीं सकता। खैर, कोई बात नहीं, सोमवार को मैं आऊंगा। जैसे भी हो तुम्हें हमारे साथ कचहरी चलना पड़ेगा।" भैरों सरदार और उसके साथी शंकर को धमका कर चले गये। शंकर ने अब तक कल्पना को यह नहीं बताया था कि भैरों सरदार उसे बिना पैसा दिये रजिस्ट्री करने को कह रहा है। जब कल्पना को यह मालूम हुआ, तो वह भी टूट गयी। यह बात १६ मार्च '९८ की है।



कल्पना और गौतम को बचानेवाले मंगरू मल्लाह का सम्मान किया गया

"कल्पना, तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं? भैरों सोमवार को फिर आयेगा। आखिर कब तक मैं उससे बचता फिरूंगा। पुलिस इन लोगों का कुछ नहीं करेगी। मान लो, मैं पुलिस की मदद लूं भी, तो ये लोग मुझे नहीं छोड़ेंगे। मैं मर गया तो तुम और बच्चे कैसे जियेंगे।" शंकर की आवाज गले में अटक गयी।

"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है। भगवान हमें यह दिन दिखायेगा, मैंने कभी सोचा भी नहीं था।"

दोनों काफी देर तक रोते रहे। फिर शंकर बोला, "कभी-कभी इच्छा होती है, मैं जहर खा लूं, लेकिन बच्चों का खयाल आते ही कदम रुक जाते हैं। कभी मन करता है पूरे घर को जहर दे दूं और खुद गंगा में डूब मरूं।"

कल्पना की आंखों से अश्रुओं की धारा बह निकली। वह दुख के सागर में डूबी थी। उसने शंकर की बात का कोई जवाब नहीं दिया। शंकर उसके करीब जाकर बोला, "बताओ कल्पना, क्या करूं मैं? मुझसे इस घुटन में जिया नहीं जाता। बताओ, वरना मैं पागल हो जाऊंगा। तुम नहीं बोलोगी तो मैं कुछ कर बैठूंगा। मुझसे बच्चों का मुंह देखा नहीं जाता। उनके सामने पड़ता हूं तो निगाह झुक जाती है। क्या तुम भी मेरा साथ नहीं दोगी?"

"जीवन के हर सुख-दुख में मैंने तुम्हारा साथ दिया। जैसा तुम कहते हो, वैसा ही करती हूं। मैंने कोशिश की, कि तुम्हें और बच्चों को कभी कष्ट न हो, लेकिन यह कष्ट तो जीते जी हमें नहीं छोड़ेगा।"

"तो क्यों न हम इस जिन्दगी से ही पीछा छुड़ा लें।"

"नहीं... ऐसा मत कहो, हमारे बच्चों का क्या होगा।"

"बच्चों को भी साथ ले लेंगे।"

"नहीं, यह ठीक नहीं है।" कल्पना कांपती हुई आवाज में बोली।

"आज नहीं तो कल भैरों हमें मार डालेगा। फिर बच्चे भूखे मरेंगे। दर-दर की ठोकरें खाने से अच्छा है, हम इज्जत से मौत को गले लगा लें।"

कल्पना चुप रही।

उस रात शंकर तरह-तरह से कल्पना को समझाता रहा कि वह आत्महत्या के लिए तैयार हो जाये। जैसे-तैसे कल्पना तैयार हो गयी। उसने बच्चों को भी तैयार कर लिया। पूरी रात शंकर और कल्पना बच्चों के साथ जागते रहे। रह-रहकर शंकर रोने लगता। कल्पना की भी आंखें रो-रोकर सूज गयी थीं। गौतम और उमा भी दहशत में थे। रातभर कमरे में कल्पना, शंकर और बच्चों की सिसकियां गूंजती रहीं।

अगली सुबह यानी १९ मार्च '९८ को शंकर अपनी पत्नी कल्पना, पुत्री उमा और बेटे गौतम को लेकर

सुबह पांच बजे घर से निकला। वह सीधे ललिता घाट पर पहुंचा। साढ़े पांच बजे का वक्त रहा होगा। तट पर कुछ नाविक खड़े थे। शंकर ने मंगरू नामक नाविक से सैर-सपाटे के लिए नाव तय की। मंगरू उन चारों को लेकर गंगा-नदी की सैर कराने लगा। इस बीच शंकर ने मंगरू को आदेश दिया, 'नाव जरा उस पार ले चलो, हम लोग स्नान करेंगे।'

नाव जैसे ही बीच धारा में पहुंची, शंकर अचानक उठ खड़ा हुआ। पत्नी और बच्चों के साथ उसने बीच गंगा में छलांग लगा दी। मंगरू कुछ समझ पाता, उससे पहले ही पूरा परिवार नदी में डूबने लगा। मंगरू के होश उड़ गये। वह जोर-से चिल्लाने लगा, 'बचाओ...बचाओ... अरे यह लोग डूब रहे हैं।'

मंगरू की आवाज सुनकर कुछ नाविक उस ओर आ गये। इस दौरान मंगरू शंकर और उसके परिवार को बचाने के लिए गंगा-नदी में कूद पड़ा। वह जैसे-तैसे डूब रही कल्पना को बचाने की कोशिश करने लगा। उसने जैसे ही कल्पना को पकड़कर नाव में बैठाने की कोशिश की, कल्पना चिल्लाने लगी, 'छोड़ दो मुझे, मैं जीना नहीं चाहती।'

मंगरू ने उसे नहीं छोड़ा, तो उसने मंगरू का हाथ अपने दांतों से काट लिया। जैसे ही कल्पना पर मंगरू का शिकंजा ढीला पड़ा, वह पुनः गंगा में कूद गयी। मंगरू ने जैसे-तैसे कल्पना को काबू में किया। फिर उसने गौतम को पानी से निकाला और नाव पर बैठाकर किनारे ले गया। मंगरू ने लाख कोशिश की, कि वह शंकर को बचा ले, किन्तु शंकर कहीं नहीं मिला। उसने उमा को भी खोजने की कोशिश की, किन्तु उमा भी गंगा में डूब गयी थी। उधर मंगरू ने दौड़कर जल-पुलिस को खबर की। दशाश्वमेध थाना करीब ही था। फिर मंगरू दौड़कर थाने पहुंचा। थाने को खबरकर वह पुनः घाट पर लौट आया। कल्पना और गौतम को तमाम लोग घेरे थे। मंगरू ने कल्पना को ढांढ़स बंधाने का प्रयास किया, किन्तु वह दहाड़ें मारकर रोये जा रही थी। गौतम भी रो रहा था।

इस बीच दशाश्वमेध थाने की पुलिस घाट पर आ पहुंची। आनन-फानन जिले के वरिष्ठ अधिकारियों को घटना की खबर की गयी। जल्दी ही पुलिस के गोताखोरों को बुलाया गया। जिले के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक जीपी शर्मा, पुलिस उप-महानिरीक्षक शैलजाकान्त मिश्र, आई०जी० कर्मवीर सिंह तुरंत मौके पर पहुंच गये।

कल्पना और गौतम को प्राथमिक उपचार के बाद दशाश्वमेध थाने लाया गया। उधर गोताखोरों ने शंकर और उमा के शव गंगा नदी से ढूंढ़ निकाले। दोनों शवों का पंचनामा कर शव पोस्टमार्टम के लिए भेज दिये गये।

पुलिस परेशान थी कि आखिर शंकरदेव भट्टाचार्य ने पूरे परिवार के साथ आत्महत्या क्यों करनी चाही? पुलिस ने कल्पना से प्रारम्भिक पूछताछ की, किन्तु वह पति की मृत्यु से गहरे आघात में थी। पुलिस कुछ भी पूछती, कल्पना का रोदन ही उत्तर में सुनाई पड़ता।

पोस्टमार्टम के बाद अगले दिन शंकर और उमा का अंतिम संस्कार कर दिया गया। उधर अखबारों में भी अगले दिन खबर थी कि शंकर ने कुछ माफियाओं द्वारा प्रताड़ित किये जाने पर आत्महत्या की थी। पुलिस की निष्क्रियता को लेकर समाचार-पत्रों में काफी लिखा गया। जिला पुलिस और सरकार पर तीखे प्रहार भी किये गये थे।

इस पूरे प्रकरण को वाराणसी जोन के तत्कालीन आईजी कर्मवीर सिंह ने गंभीरता से लिया। उन्होंने डीआईजी शैलजातकांत मिश्र को अपने आफिस में बुलाकर कहा, "मैंने आपको दशाश्वमेध थाने वाले मामले में बुलाया है। कल्पना से मैंने बात की है, किंतु वह कुछ भी बताने को राजी नहीं है। आखिर पूरे परिवार ने आत्महत्या करने का प्रयास क्यों किया? कोई-न-कोई वजह तो होगी ही। मैं चाहता हूं, आप मामले की तह तक पहुंचकर उचित कार्यवाही करें। अखबारों में कुछ चर्चा है। हो सकता है, यही कारण रहा हो। अगर पुलिस इस मामले में कुछ नहीं करती, तो गुण्डों के हौसले यूं ही बढ़ेंगे।"

"सर, मैं भी चिंतित हूं। मैं कल्पना से बात कर कुछ-न-कुछ करता हूं।"

शैलजाकांत मिश्र, आईजी कर्मवीर सिंह को आश्वस्तकर सीधे कल्पना के पास पहुंचे। कल्पना अपनी बहन के घर पर थी। शैलजाकांत मिश्र ने कल्पना से एकान्त में बात की, "आपको अब डरने की जरूरत नहीं है। मैं आपके साथ हूं। चाहे रात हो या दिन, आप जब भी मुझे जरूरत हो, खबर कर दीजिएगा, मैं आपके पास आ जाऊंगा, लेकिन आप मुझे बताइए कि आप लोगों ने आत्महत्या का प्रयास क्यों किया?"

"जो होना था, हो गया। अब कोई मुझे भी मार दे तो क्या फर्क। जब मेरे पति के जीते जी पुलिस उन बदमाशों का कुछ नहीं कर पायी, तो अब क्या होगा। आप भी क्या कर लेंगे।" कल्पना की आवाज में थर्राहट थी।

"देखिए, कानून सबके लिए बराबर है। चाहे कोई छोटा हो या बड़ा, अमीर हो या गरीब, कानून की निगाह में सब बराबर है। कोई भी कानून के हाथ से बच नहीं सकता।"

"तो फिर वे गुण्डे क्यों छुट्टा घूम रहे हैं। बड़े आदमियों का कोई कुछ नहीं कर पाता। कानून केवल गरीबों के लिए है। बदमाशों का पुलिस कुछ नहीं कर पाती।"

"आप हमारी मदद करेंगी, तभी तो हम कुछ कर सकेंगे।"

मिश्रा के काफी जोर डालने पर कल्पना ने पूरा किस्सा बयान कर दिया। मिश्रा को वाकया मालूम हुआ, तो वह सन्न रह गये।

पुलिस ने आनन-फानन कार्यवाही कर भैरों सरदार को उसी दिन गिरफ्तार कर लिया। भैरों यादव उर्फ भैरों सरदार दशाश्वमेध थाने का बी क्लास का हिस्ट्रीशीटर था। उसकी हिस्ट्री शीट का नं० ६ बी था। हत्या, २५ आर्म्स एक्ट, गुण्डा एक्ट तथा नशीले पदार्थ रखने के जुर्म में उस पर तमाम मुकदमे दर्ज थे। भैरों सरदार नशीले पदार्थ की तस्करी भी करता था। उसकी पत्नी लीला देवी 'लिपस्टिक वाली भाभी' के रूप में चर्चित थी। पुलिस के अनुसार, भैरों करीब १५ वर्षों से नशीले पदार्थों की तस्करी में लिप्त था। कई वर्ष पहले मुंबई पुलिस ने उसे गिरफ्तार भी किया था। मुंबई में ही उसकी मुलाकात लीला देवी से हुई थी। जब तस्करी के धंधे में उसने काफी पैसा कमा लिया, तो वह प्रापर्टी का काम करने लगा। दबंगई के बल पर उसने कमजोर और मजलूम लोगों के मकानों पर कब्जा करना शुरू कर दिया। आतंक और भय के चलते इलाके में उसकी तूती बोलती थी।

पुलिस ने छापा मारकर भैरों सरदार के आलीशान गेस्ट हाउस से १५ पुड़िया हेरोइन बरामद की। गेस्ट हाउस चूंकि नशीले पदार्थों की बिक्री का अड्डा था, अतः सील कर दिया गया। भैरों सरदार का गेस्ट हाउस गैर कानूनी तौर पर बना था। अतः उसको वाराणसी विकास प्राधिकरण से गिरवाने की कार्यवाही की गयी। पुलिस ने भैरों सरदार के कब्जे से जोर-जबर्दस्ती करके शंकर से लिखाये मकान के सारे कागजात भी बरामद किये।

पुलिस प्रमोद और भोला की खोज में थी, किन्तु वे फरार थे। उधर पूरे जिले की पुलिस कल्पना और गौतम के साथ थी। गिरफ्तार कर पुलिस जैसे ही भैरों सरदार को थाने ले जाने लगी, इलाके के हजारों लोग पुलिस के पीछे-पीछे जुलूस के रूप में चलने लगे। लोग नारे लगा रहे थे 'पुलिस प्रशासन जिंदाबाद।' इस दौरान भैरों सरदार हाथ जोड़कर सबसे माफी मांग रहा था, 'मैं अब गुण्डागर्दी नहीं करूंगा, मुझे माफ कर दो।'

पुलिस ने भैरों सरदार को धारा ३०६/५०६ भा०द०सं० और ८/२ एनडीपीएस एक्ट के तहत जेल भेज दिया। उधर प्रमोद और भोला ने भी अदालत में समर्पण कर दिया था।

उधर पुलिस भैरों सरदार के विरुद्ध कार्यवाही कर रही थी, इधर कल्पना ने दहशत में अपने घर पर पुनः विषाक्त पदार्थ खाकर आत्महत्या का प्रयास किया। पुलिस को इसकी खबर लगी, तो तहलका मच गया। कल्पना को आनन-फानन शिवप्रसाद गुप्ता अस्पताल में भर्ती कराया गया। उसकी हालत गंभीर थी, किंतु इलाज के पश्चात उसे बचा लिया गया। इस घटना के बाद पुलिस ने कल्पना और गौतम की सुरक्षा में महिला पुलिस तैनात कर दी।

उसी बीच पुलिस उप-महानिरीक्षक शैलजाकांत मिश्र ने जिले के तमाम पुलिस कांस्टेबलों को पुलिस लाइन बुलवाया। जिले के प्रत्येक थाने से दो-दो आरक्षक पुलिस लाइन पहुंचे। पुलिस लाइन में

कल्पना और उसके परिवार के साथ घटित हादसे पर लंबी चर्चा हुई। अधिकांश पुलिसकर्मियों की आंखें नम हो उठीं। वे कल्पना के साथ हुए हादसे से व्यथित थे। चर्चा चल रही थी कि कुछ पुलिसकर्मियों ने प्रस्ताव रखा कि वे शंकरदेव और उसके परिवार को भैरों सरदार के आतंक से तो बचा नहीं सके, किंतु यदि अब भी उन्होंने कल्पना और उसके बेटे गौतम को सहारा नहीं दिया, तो समाज उन्हें कभी माफ नहीं करेगा। अतः जिले के सभी पुलिसकर्मी कल्पना और उसके परिवार की आर्थिक मदद करेंगे। सर्वसम्मति से तय किया गया कि जिले में तैनात करीब पैंतीस सौ पुलिसकर्मी सामूहिक रूप से दस-दस रुपये जमाकर कल्पना के सुपुर्द करेंगे, ताकि उसका मनोबल बढ़ सके और उसे महसूस हो कि शहर का प्रत्येक पुलिसकर्मी मुसीबत की इस घड़ी में उसके साथ है।

अगले दिन सभी पुलिसकर्मियों ने कुल पैंतीस हजार रुपये एकत्रकर वाराणसी जोन के आईजी कर्मवीर सिंह के सुपुर्द कर दिये। फिर इस रुपये को पहली अप्रैल '९८ को आईजी कर्मवीर सिंह, पुलिस उप-महानिरीक्षक शैलजाकांत मिश्र, कर्मवीर सिंह की पत्नी रेवा सिंह, एसएसपी जीपी शर्मा व उनकी पत्नी मीनाक्षी शर्मा ने कल्पना के घर जाकर उनके सुपुर्द किया।

कल्पना यह पैसा लेने के लिए तैयार नहीं थी। बड़ी मुश्किल से समझाने के बाद उसने यह राशि स्वीकार की थी।

पुलिस के इस सख्त रवैये से बौखलाकर भैरों सरदार के रिश्तेदार और परिचित जिला पुलिस की सख्त कार्यवाही के विरुद्ध मानवाधिकार हनन की आवाज उठाने लगे। तमाम अखबारों में पुलिस के खिलाफ चंद लोगों की बयानबाजी प्रकाशित हुई। कुछ लोगों ने धरना-प्रदर्शन भी किया। फिर मामला टांय-टांय फिस्स हो गया। पुलिस उप-महानिरीक्षक शैलजाकांत मिश्र कहते हैं, "वाराणसी पुलिस के इस मानवीय कृत्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने के बजाये भैरों सरदार के पक्ष में मानवाधिकार की आवाज उठानेवाले ढोंगी हैं। वे यह क्यों भूल जाते हैं कि शंकर, कल्पना और उनके बच्चों के जीवन-अधिकार का हनन करनेवाला भैरों सरदार एक कुख्यात स्मगलर, खूनी और अपराधी है। उसने न जाने कितने परिवारों के अधिकारों का हनन कर उनका जीवन बर्बाद किया। वाराणसी पुलिस को अपने किये पर कोई पछतावा नहीं है। आज पूरा शहर कल्पना और पुलिस के साथ है।"

जिला प्रशासन ने मामले की पूरी रिपोर्ट प्रदेश की राजधानी लखनऊ भेजी है। मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने भी कल्पना की दशा से व्यथित होकर उसे एक लाख रुपये स्वीकृत कर अपराधियों के विरुद्ध सख्त कार्यवाही करने का आदेश दिया।

कुछ पुलिसकर्मियों ने प्रस्ताव रखा कि वे शंकरदेव और उसके परिवार को भैरों सरदार के आतंक से तो बचा नहीं सके, किंतु यदि अब भी उन्होंने कल्पना और उसके बेटे गौतम को सहारा नहीं दिया, तो समाज उन्हें कभी माफ नहीं करेगा।

मुख्यमंत्री के आदेश के बाद अपराधियों पर राष्ट्रीय सुरक्षा कानून लागू कर दिया गया। कथा लिखे जाने तक भैरों सरदार का गणेश मोहाल इलाके में बना सात मंजिला गेस्ट हाउस वाराणसी विकास प्राधिकरण द्वारा गिरा दिया गया था।

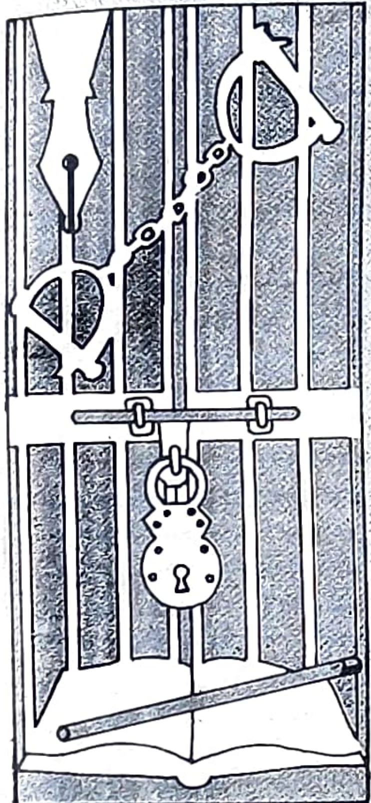
कल्पना के मकान पर उसका कब्जा है। पुलिस उस मकान और कल्पना की सुरक्षा में तैनात है।

कल्पना और गौतम तो शायद ही इस दुख को भुला सकें, किंतु वाराणसी पुलिस के इस मानवीय कृत्य को वहां का जनमानस अरसे तक भुला नहीं सकेगा। निश्चित ही पुलिस कल्पना के अंधकारमय जीवन में प्रकाशपुंज के समान उसके साथ खड़ी है। काश, वाराणसी पुलिस यह मानवता शंकर और उमा की आत्महत्या के पूर्व दिखाती। ●

(कथा पुलिस सूत्रों पर आधारित)

जेलर की डायरी

सिद्धि की सनक



अब मैं जिस कथा को पेश कर रहा हूं, वह एक संन्यासी की है। भारतीय समाज में संन्यासियों, फकीरों, सामान्य उपदेशकों का बड़ा सम्मान होता है। विशेषरूप से हमारा ग्रामीण जीवन इन्हें भारी मान्यता देता है। ऐसे ही एक संन्यासी का प्रवेश अगस्त, १९८१ में जयपुर जेल में एक अपराधी के रूप में हुआ।

भगवा वस्त्रधारी युवा संन्यासी जब पुलिस गारद के साथ जेल के दरवाजे से अंदर आया, तो मुझे लगा, कोई साधारण अपराधी होगा। सामान्यतः इस तरह के ढोंगी या बहुरुपिये बच्चे उड़ाने या सीमा पार से जासूसी करने के लिए आते रहते थे। सामान्य डीलडौल का यह अपराधी जेल की खिड़की पार करते ही वैराग्य भूल गया था। डर और सम्भावित भविष्य से उसका चेहरा मुर्झाया हुआ था।

बहरहाल, उसके अपराध सम्बन्धी कागज पेश हुए, तो पता चला कि आदतन हत्यारा है। स्वतः ही मेरा मुंह कड़वाहट से भर गया। मैंने गौर से देखा, वह सावले रंग का, थोड़ा लम्बा और २६ वर्ष की उम्र का रहा होगा।

उससे सम्बन्धित दस्तावेज से पता चला कि जयपुर पुलिस ने हत्या के तीन मुकदमों में उसे गिरफ्तार किया था। अब उस पर मुकदमा चलना था। जेल लाये गये दस्तावेज में उसका नाम बालयोगी अवधूत उर्फ गणपत गिरि पुत्र कैलाश गिरि दर्ज था। अवधूत परम्परा के मुताबिक उसने अपने को किसी महन्त मायोगिरि का चेला घोषित कर रखा था। तांत्रिक एवं अघोरी होने का आभास देनेवाले गणपत गिरि का पता पुलिस ने जयपुर शहर के टोंक रोड स्थित दुर्गापुरा दर्ज कर रखा था, पर वास्तव में वह वहां का रहनेवाला नहीं था। मैंने उससे पूछा, कहां के रहनेवाले हो? उसका जवाब था, गुजरात का। यह उत्तर काफी नहीं था। मैंने गहराई से पूछा तो पता चला कि वह गुजरात के बड़ौदा जिले के ग्राम मुजाल का रहनेवाला था।

मैंने उससे जानना चाहा कि जयपुर कैसे पहुंचा, तो बाबावाले अंदाज में फरमाया, घूमते-घूमते आ पहुंचा। दुर्गापुरा के पास स्थित हनुमान का मन्दिर, वट-वृक्ष का घना साया और रात का सन्नाटा रुचा, तो वहीं ठहर गया। कथित साधना के लिए उसे ऐसा ही कुछ माहौल चाहिए था। उसके मुताबिक, वह पिछले दो साल से वहीं रह रहा था। जब मैंने अपराध के सम्बन्ध में जानकारी ली तो उसका कहना था, 'सब झूठ है। कुछ अपराधियों को बचाने के लिए मुझे फंसाया गया है।' ऐसे बयान मैं अक्सर सुनता रहा हूं। मुझे पहली निगाह में ही समझ आया, उसे अपने किये पर पश्चाताप नहीं है। उसे विश्वास था कि जल्द ही उसका 'बनाया हुआ सच' स्थापित होगा और वह बरी हो जायेगा। बातचीत में उसने अपने संन्यासी होने को साबित करने के लिए हमसे किसी ऐसी जगह रहने की मांग की, जहां वह अपनी नियमित साधना कर सके। हमें उसकी प्रार्थना पर कोई एतराज नहीं था। लिहाजा उसे सामान्य कैदियों के साथ रखने के बजाय एक सेल में रख दिया गया।

मैंने उसके जेल में रहने के दौरान दिनचर्या नोट की तो ज्ञात हुआ, कि वह नियमित पूजा-अर्चना में लगा रहता है। बहरहाल, उसके विरुद्ध भारतीय दण्ड विधान की धारा ३०२/२०१ के मुकदमे थे। उसे इसी सन्दर्भ में जेल से न्यायालय ले जाने की जरूरत होती थी। न्यायालय जाने और आने के दौरान अक्सर वह अन्य कैदियों से झगड़ता था। निश्चित रूप से उसका झगड़ालू होना संन्यासी प्रवृत्ति के विपरीत था। हम समझ रहे थे कि जेल में उसकी पूजा-अर्चना प्रवृत्ति महज भविष्य के भय का परिणाम थी, पर वास्तव में वह आपराधिक प्रवृत्ति का विकृत संन्यासी था।

अब जरा उस घटना से आपको अवगत करा दूं, जिसके लिए अवधूत को जेल में रहना पड़ रहा था। बन्दी पर आरोप था कि उसने जयपुर शहर के तीन व्यक्तियों की हत्या करके उनके शव दबा दिये थे। इस आरोप के तहत जयपुर के सत्र न्यायालय में मुकदमा संख्या ६७, ६८, ६९ सन् १९८१ उस पर चल रहे थे।

पहले मुकदमे में अवधूत पर आरोप था कि उसने जयपुर शहर की पुरानी बस्ती में रहनेवाले युवक रामनिवास की हत्या की और शव जमीन में दबा दिया। रामनिवास बापू नगर स्थित कृषि संरक्षण विभाग में सुपरवाइजर था। मंत्र-तंत्र और साधु-संन्यासियों की संगत उसे रुचिकर लगती थी। साधारण ग्रामीण परिवार के रामनिवास को अपने दफ्तर के समान रुचिवाले साथियों से अवधूत के चमत्कारी स्वरूप का ज्ञान हुआ था। शहर के बाहर, श्मशान के मुहाने, वट-वृक्ष के नीचे स्थित हनुमान मन्दिर में रहनेवाला अवधूत सामान्य व्यक्ति को सिद्ध पुरुष नजर आता था। रामनिवास एक बार के सम्पर्क से ही अवधूत का भक्त हो गया



कल्याणमल शर्मा

सिद्धि हासिल करने की सनक में अवधूत ने जघन्य अपराध किये थे

था। अवधूत की खूबी भी यही थी।

शहर के परकोटे से लगभग दस किलोमीटर उत्तर का यह स्थान आबादी विहीन था। इसके पास से शहर की आबादी का इस्तेमाल किया हुआ गन्दा पानी एक बड़े नाले के रूप में आज भी बहता है। दो हजार वर्ग गज के कच्चे परिसर में बड़ा वट-वृक्ष और वृक्ष के नीचे बड़ा-सा चबूतरा। चबूतरे पर मन्दिर का कक्ष और कक्ष के नीचे गुफानुमा स्थान। इसी स्थान में हनुमान मूर्ति है। इसी मूर्ति के पास अवधूत का निवास था। अवधूत चबूतरे पर अक्सर अपने भक्तों के साथ चरस-भांग का नशा करता और कराता। भक्त इसे साधना से जुड़ा कर्म मानते और स्वयं प्रसाद के रूप में इसे ग्रहण कर नशेड़ी बन जाते। अवधूत और उसके कथित शिष्यों के इस करतब के चश्मदीद तब मात्र आस-पास खेती करनेवाले कुछ लोग थे। परिसर में नाले के बहाव के पास तीन कच्चे कुंए बने हुए थे। उनमें इस्तेमाल-योग्य एक कुंआ था, बाकी दो सूखे कचरे से अटे पड़े थे। अवधूत दिन में चबूतरे पर रहता और रात में गुफानुमा कमरे में चला जाता था। अवधूत की दिनचर्या कुछ इस तरह ही जानी जाती थी।

यह दिनचर्या भी पता नहीं चलती, लेकिन रामनिवास के अचानक ५ जुलाई, १९८१ को गायब हो जाने पर उसकी पत्नी मूली देवी को चिन्ता हुई। उस दिन रामनिवास अपनी पत्नी से पांच सौ रुपए लेकर दफ्तर गया, फिर घर नहीं लौटा। जयपुर शहर के जाट के कुंए के रास्ते में रहनेवाले रामनिवास की पत्नी चिन्ताग्रस्त हो अगले दिन पड़ोसियों के पास पहुंची। ऐसे में रामनिवास का पड़ोसी मुरारीलाल जानकारी लेने के लिए उसके दफ्तर गया। दफ्तरवाले तो कहने में असमर्थ नजर आये, पर दफ्तर के बाहर चाय की दुकान चलानेवाले व्यक्ति ने उसे बताया कि रामनिवास दुर्गापुरावाले बाबा के यहां जाने की बात कह रहा था।

मुरारीलाल जब दुर्गापुरा की तरफ चला तो मन्दिर से बहुत पहले ही अवधूत मिल गया। मुरारीलाल ने उससे रामनिवास के बारे में जानना चाहा तो अवधूत का जवाब था, कि रामनिवास पन्द्रह-बीस दिन पूर्व उसके पास आया था। उस दिन के बाद वह नहीं आया। मुरारीलाल ने सारा किस्सा श्रीमती मूली देवी को बता दिया।

मूली देवी और रामनिवास के रिश्तेदार कई दिनों तक इंतजार करते रहे। जब उनकी प्रतीक्षा का धैर्य टूटा, तो १९ जुलाई को उन्होंने पुलिस में रामनिवास के लापता होने की रिपोर्ट दर्ज करवाई। रिपोर्ट के बाद स्थानीय अखबारों में समाचार प्रकाशित हुए, लेकिन रामनिवास का पता नहीं चला।

पुलिस के लिए यह सामान्य घटना थी। वह यह सोच भी नहीं सकती थी कि गायब होनेवाले की किसी ने हत्या कर दी है। वह मान रही थी कि गुमशुदा कहीं चला गया है, आ जायेगा।

जुलाई माह इसी तरह ऊहापोह में गुजर गया।

अगस्त माह के पहले सप्ताह में रामनिवास की तरह घर से अचानक गायब होने की दो घटनाएं पुलिस में दर्ज हुई। इनमें एक रिपोर्ट पचास वर्षीय महेश की थी। साधारण हैसियत का महेश एक मकान में किरायेदार की हैसियत से अपनी पत्नी के साथ रह रहा था। पत्नी कुछ दिनों से कानपुर स्थित अपने मैके गयी हुई थी।

पत्नी पीहर से लौटी तो उसे पता चला कि महेश कई दिन से घर नहीं आ रहा। बात पुलिस तक पहुंची। गुम हुए लोगों की सूची में उसका नाम भी जुड़ गया।

जयपुर शहर कोतवाली में महेश की गुमशुदगी के साथ ही पांच अगस्त की शाम पुरानी बस्ती के कार्तिकेय की गुमशुदगी की रिपोर्ट कोतवाली में दर्ज हुई। तत्कालीन कोतवाली इंचार्ज बेनीमाधव को इन गुमशुदगियों के पीछे किसी खतरनाक हादसे का आभास हुआ। उन्होंने रामनिवास, महेश तथा कार्तिकेय की रिपोर्ट को जोड़कर देखने का प्रयास किया। कार्तिकेय के गायब होने से पहले के सारे पत्र तलाशे गये। पता चला कि कार्तिकेय ड्राफ्ट्समैन के पद पर कार्य कर रहा था। कार्तिकेय की पत्नी विनोद कुमारी भी सरकारी नौकरी में थी। अध्यापिका के पद पर उसकी नियुक्ति आसलपुर ग्राम में थी। यह गांव ही विनोद कुमारी का पीहर था। सप्ताह का अवकाश वह अपने पति के साथ गुजारती थी। अवकाश समाप्ति पर कार्तिकेय उसे वापस गांव छोड़ आता था। पति-पत्नी खुश थे।

वर्ष १९८१ में २ अगस्त को तीज का त्यौहार था। राजस्थान में इस दिन राजकीय अवकाश होता है। अतः अवकाश की वजह से कार्तिकेय की पत्नी जयपुर आयी। अगले दिन दोनों पति-पत्नी आसलपुर गये और चार अगस्त को कार्तिकेय जयपुर तो लौट आया, पर घर नहीं पहुंचा। पुत्र की वापसी न होने से बीमार पिता को चिन्ता हुई। आसलपुर जाकर उसने पता किया तो मालूम हुआ, कार्तिकेय तो चार अगस्त को ही जयपुर लौट गया था। कार्तिकेय के वृद्ध पिता ने अपने दामाद गणेशचन्द्र को कार्तिकेय का पता लगाने की जिम्मेवारी सौंपी।

गणेशचन्द्र ने दफ्तर जाकर पता किया तो मालूम हुआ कि कार्तिकेय वहां भी नहीं आया। वहीं कार्तिकेय के बहनोई को पता चला कि वह दुर्गापुरा वाले संन्यासी के पास आता-जाता रहता है। यह भी पता चला कि पुरानी बस्ती के रामनिवास और महेश नाम के दो लोग भी उसके साथ अक्सर संन्यासी के पास जाया करते थे।

अब गणेशचन्द्र के पास बाबा का स्थान ही एक जगह बची थी, जहां से कार्तिकेय का पता लग सकता था। वह दुर्गापुरा वाले मन्दिर पर गया, वहां अवधूत चरस के नशे में चबूतरे पर बैठा नजर आया। गणेशचन्द्र ने अपने आने का कारण बताया तो उसने कहा, "हां, कार्तिकेय यहां आया था, लेकिन महेश के साथ कानपुर जाने की बात कहकर लौट गया था।"

गणेश ने जानना चाहा, "वे दोनों कब लौटेंगे?"

"सत्रह तारीख तक वापस आने को कह रहे थे।"

गणेश को अवधूत का रूप कुछ जंचा नहीं। वह शहर वापस लौटकर महेश के घर पहुंचा। वहां मकान-मालिक ने बताया कि उन्हें भी महेश का कुछ पता नहीं, लेकिन कानपुर स्थित महेश की ससुराल का पता उसके पास था। गणेश ने वह पता लिया और कार्तिकेय व महेश के बारे में जानकारी वाला सन्देश लिख तार कर दिया। अगले दिन महेश की पत्नी माधुरी का जवाबी तार मिला, जिसमें कार्तिकेय और महेश के कानपुर न पहुंचने का सन्देश था।

कार्तिकेय की गुमशुदगी की रिपोर्ट के साथ कोतवाली-प्रभारी बेनीमाधव को तीनों गुमशुदगियों के तार जुड़ते नजर आये। सभी गायब लोगों का केन्द्र अवधूत था। बेनीमाधव ने अपने सन्देह की टिप्पणी के साथ कार्तिकेय की गुमशुदगी की रिपोर्ट जयपुर सदर थाने को भेज दी। रिपोर्ट थाना सदर में भेजने का कारण था—कार्तिकेय को आखिरी बार रेलवे स्टेशन पर देखा गया था। सदर थाने के इंचार्ज लीलाधर ने रिपोर्ट को भा०दं०वि० की धारा ३६५ के तहत दर्ज कर जांच का काम सब-इंसपेक्टर जगदीश को सौंप दिया। सूत्र और गवाहों के जरिये इंसपेक्टर जगदीश दुर्गापुरा पहुंचे। वहां अवधूत उनके हाथ लग गया। पूछताछ के लिए संन्यासी को सदर थाने लाया गया। पूछताछ के दौरान अवधूत जल्दी ही सच उगल बैठा। एक के बाद एक गायब हुए तीनों लोगों की हत्या कर अवधूत ने उनके शव सूखे कुंओं के कचरे में दबा दिये थे। हत्यारे अवधूत की मौजूदगी में शव निकाले गये। पता चला कि हत्या के बाद अवधूत शवों को दफन करते वक्त नमक डालना नहीं भूलता था। गले-सड़े शव पुलिस ने बरामद किये।

पुलिस को मन्दिर की गुफा और चबूतरे के आसपास से शराब की खाली बोतलें, चरस, मिली। सोने की चेन, अंगूठी, साइकिल इत्यादि वस्तुएं उन लोगों से बरामद की गयीं, जिन्हें अवधूत ने बेचकर पैसे हासिल किये थे। तीनों शवों का मेडिकल बोर्ड से पोस्टमार्टम करवाया गया। मेडिकल बोर्ड पोस्टमार्टम से इस नतीजे पर पहुंचा कि तीनों की मृत्यु का कारण गला दबाना रहा है।

अवधूत की कारस्तानियों की जानकारी आसपास के लोगों ने दी। उनके मुताबिक अवधूत रात्रि में नग्न अवस्था में घूमता-फिरता था। नशे तथा तंत्र-मंत्र के अनुयायी भक्त उसके तथा अपने लिए नशे का प्रबंध करते थे। वैसे कुछ वर्ष पहले तक श्मशान या कब्रिस्तान जैसे निर्जन स्थान ढोंगी साधुओं और फकीरों द्वारा रात्रि में ऐसे ही कामों

के लिए इस्तेमाल किया जाना आम बात थी। बहरहाल आधुनिक समाज में मरघट भी सुधरने लगे हैं। ढोंगियों को पनाह लेने के लिए अब श्मशानों में नहीं आना पड़ता, पर षड्यंत्रों और छल-कपट से विलास हासिल करनेवालों के लिए आज भी तंत्र-मंत्र साध्य बने हुए हैं। फर्क केवल इतना है कि अब उनके लिए शहरों के नायाब बंगले उपलब्ध हैं।

अवधूत से अभियुक्त बने गणपत गिरि का पुलिस ने तीनों हत्याओं के अपराध में मुकदमा शुरू किया। हालांकि, हत्याओं का सिलसिला और भी था। स्थानीय पुलिस ने उसे जांचने का प्रयास नहीं किया। मुकदमे की लम्बी प्रक्रिया से गुजरने के बाद ४ दिसम्बर १९८४ को अवधूत गणपत गिरि को सत्र न्यायालय, जयपुर ने दफा ३०२ और २०१ के तहत मौत की सजा सुनाई। गवाह और सुबूत इतने पुख्ता थे कि सजा से बचने का कोई रास्ता नहीं था।

सत्र न्यायालय के फैसले के विरुद्ध अवधूत ने राजस्थान उच्च न्यायालय में अपील की। इस अपील को खारिज करते हुए उच्च न्यायालय ने १८ दिसम्बर १९८५ को सत्र न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखा। हत्या का उक्त अभियुक्त मौत से बचने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में अनुमति याचिका के माध्यम से पेश हुआ। सर्वोच्च न्यायालय ने अपराधी के कृत्य और तथ्यों को जांचकर २४ फरवरी १९८६ को अपील खारिज कर दी। मौत से घबराये अवधूत के पास अब बचने की राह केवल दया की याचना रह गयी थी। उसने इसके लिए महामहिम राज्यपाल के माध्यम से राष्ट्रपति के पास तीनों मुकदमों के निर्णय के विरुद्ध दया की याचना पेश की। जून १९८८ में राष्ट्रपति महोदय ने भी दया-याचना अस्वीकृत कर दी। नतीजतन परम्परा के अनुसार सत्र-न्यायालय, जयपुर ने मौत का ब्लैक वारन्ट जारी कर दिया। इस वारन्ट के तहत १४ जुलाई १९८८ को सुबह पांच बजे गणपत गिरि को जयपुर जेल में फांसी के फंदे से लटका दिया गया। बहरहाल, अपने अनुभव से कह सकता हूं कि जिस निर्ममता से गणपत गिरि ने हत्याएं की थीं, उस पीड़ा का लेशमात्र भी अहसास उसे फांसी के फन्दे से नहीं हुआ होगा।

अवधूत गणपत गिरि का मुकदमों के दौरान जेल में व्यवहार का अध्ययन उसके अपराधी स्वरूप का बेहतर खुलासा करता है। प्रारम्भ में वह यह मानता ही नहीं था कि उसने हत्याएं कीं, जबकि पुलिस जांच ने इसे साबित कर दिया था। सत्र न्यायालय और राजस्थान उच्च न्यायालय के फैसले तक उसे अपनी कथित साधनाओं से हासिल सिद्धि पर भारी विश्वास था। अपनी बेगुनाही साबित करने पर वह तुला हुआ था। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद उसकी सोच में भारी परिवर्तन आया। उसने जेल अधिकारियों के समक्ष स्वीकार किया कि हत्याओं का सिलसिला तीन तक सीमित नहीं, बल्कि तीस हत्याएं की थीं। यह हत्याएं उसने किन की और कहां की, यह बताने के लिए वह तैयार नहीं था।

मृत्युदण्ड से पूर्व हत्यारे अवधूत से स्थानीय प्रेस और दूरदर्शन ने मिलने की अनुमति चाही। वह प्राप्त हुई तो उसने साक्षात्कार दिये। इन साक्षात्कारों में उसने हत्याओं को पहली बार सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया। साथ ही जघन्य अपराध पर अफसोस भी जाहिर किया। मीडिया के लोगों ने हत्याओं के कारण जानने चाहे तो उसका जवाब था, नशे की आदत और तंत्र विद्या से सिद्धि हासिल करने की सनक ने उससे अपराध करवाये थे।

अवधूत फांसी से पूर्व पूर्णरूप से इंसान बन चुका था। समाज के लिए वह कुछ करना चाहता था, पर बहुत देर हो चुकी थी। अपराधों का ऐसा पहाड़ उसने खड़ा कर लिया था कि कानून उसे माफ करने

फांसी जिसे लगती है, वह भी हत्या का मुजरिम होता है और जो फांसी देता है, वह भी सामान्यतः एक हत्या ही करता है। फर्क मात्र न्याय-अन्याय और राजसत्ता की कानूनी मान्यता का है।

में असमर्थ था। बहरहाल उसने फांसी से पूर्व इच्छा व्यक्त की, कि उसका शरीर मेडिकल कालेज को दे दिया जाये। वह चाहता था कि चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन कर रहे छात्र उसके शरीर का अपने अध्ययन के लिए इस्तेमाल करें। समाज को देने के लिए नश्वर शरीर के अतिरिक्त उसके पास कुछ बचा भी नहीं था।

१४ जुलाई १९८८ को प्रातः पांच बजे जयपुर जेल अधीक्षक चेतनदेव उपाध्याय ने अन्य अधिकारियों की उपस्थिति में अवधूत को फांसी के तख्ते तक पहुंचाया। फांसी के तख्ते पर मेरठ जेल का जल्लाद कालूराम भावहीन चेहरे के साथ काला टोपा लिए खड़ा था। डगमगाते कदमों से अवधूत गणपत गिरि फांसी के तख्ते तक पहुंचा। जल्लाद ने काला टोपा पहनाकर फांसी का फंदा उसकी गर्दन में डाल दिया।

उल्लेखनीय है कि फांसी चढ़नेवाला कभी यह नहीं जान पाता कि उसे कौन फांसी दे रहा है। मैंने कई अपराधियों को फांसी चढ़ते देखा है और हर बार नोट किया कि जल्लाद का काम करनेवाला व्यक्ति फांसी चढ़नेवाले को तख्त पर पहुंचते ही पीछे से काला टोपा पहनाता है। सम्भवतः यह परम्परा फांसी देने का दायित्व निभानेवाले व्यक्ति को उस आह से बचाने के लिए है, जो मृत्यु से पूर्व निकलती है। फांसी जिसे लगती है, वह भी हत्या का मुजरिम होता है और जो फांसी देता है, वह भी सामान्यतः एक हत्या ही करता है। फर्क मात्र न्याय-अन्याय और राजसत्ता की कानूनी मान्यता का है।

बहरहाल, जैसे ही पांच बजे, अवधूत के पांवों के नीचे से जल्लाद ने तख्ता हटा दिया। तख्ते को नियंत्रित करनेवाला लीवर खिंचा और अवधूत का शरीर फांसी की कोठरी में खटाक की आवाज के साथ झूल गया। कुछ क्षणों बाद कोठरी से अवधूत का झूलता हुआ मृत शरीर नीचे उतारा गया। जेल चिकित्सक ने उसे मृत घोषित किया। तत्पश्चात शव को जयपुर के सवाई मानसिंह मेडिकल कालेज में, अवधूत की अन्तिम इच्छा के मुताबिक अध्ययन के लिए पहुंचा दिया गया।

अवधूत की कथा यहीं समाप्त हो गयी। हत्याओं से जुड़ा हनुमान मन्दिर आज भी वहीं है, जहां था, पर आज दृश्य बदला हुआ है। अब वहां रामानन्द समुदाय के एक संन्यासी रहते हैं। मरघट भी आबादी से घिर गया है। पहले वहां केवल नशेड़ी आते थे, अब सामान्य लोग आने लगे हैं। इसके बावजूद रात होते ही वहां कार्तिकेय, महेश और रामनिवास की हत्याओं का अहसास होने लगता है।●



अपने लक्ज़री अपार्टमेंट में हम लोग शिफ्ट हुए, तो मुझे ही नहीं, बल्कि घर के सभी लोगों को कुछ दिनों तक ऐसा महसूस होता रहा, जैसे किसी पिंजरे में कैद कर दिये गये हों। इसकी वजह शायद यह थी कि एक लंबा अरसा हमने किराये के मकान में बिताया था। वह एक सौ चालीस गज़ पर बना हुआ मकान था। उसमें तीन बड़े-बड़े और हवादार कमरे थे। एक तरफ नीम का पेड़ था। शाम के समय सेहन में बैठते थे। रात के समय भी बहुत लुत्फ़ उठाया करते थे। वह मुहल्ला भी बहुत अच्छा था। हर कोई एक-दूसरे को इस तरह से जानता था, जैसे वह रिश्तेदार हो।

भाई की गैरत

–एम० इलियास

अख्तर की गैरत यह बरदाश्त नहीं कर सकती थी, कि कोई उसकी बहन के साथ प्यार की पेंगें बढ़ाये



बहुत सारे घर ऐसे थे, जिनमें आना-जाना रहता था। एक-दूसरे के दुख-दर्द में शरीक भी होते थे।

यहां अपार्टमेंट हमारा अपना था, लेकिन उसके दरो-दीवार अपने न थे। हम किसी चीज़ को हाथ नहीं लगा सकते थे। छत तक के हम मालिक न थे। हम किसी चीज़ को भी उसकी जगह से हटा या बदल नहीं सकते थे। हमारी इमारत तीन तरफ से अन्य इमारतों से घिरी हुई थी। आस-पास की इमारतें एक-दूसरे के सामने दुश्मन की फौज की तरह डटी खड़ी दिखाई देती थीं। बेहद करीब थीं। अपने कमरों और बालकनी से न केवल हम दूसरे घरों में झांक सकते थे, बल्कि बातें भी कर सकते थे। एक तरह से जैसे कोई परदा ही नहीं रहा था। एक सूरत यह थी कि खिड़कियां बंद हों, या हर समय परदे खिंचे हुए हों, लेकिन यह ज़रा मुश्किल था, क्योंकि इससे घुटन बढ़ जाती थी।

मैंने यहां एक बात जो महसूस की, वह यह थी कि इमारत के अधिकांश वासी अपने अपार्टमेंट में बंद रहते थे। वे दोस्ती का हाथ, हैसियत, रुतबा और घर की शान देखकर बढ़ाते थे।

मेरे घर वालों ने न किसी से दोस्ती की, न उनकी तरफ से पहल हुई। हम लोगों को पिछले मुहल्ले की बहुत याद सताती थी, लेकिन वापसी के सभी रास्ते बंद हो चुके थे। वह जैसा भी था, बहुत अच्छा था। पड़ोसी और मुहल्लेवाले बड़े सहृदय और निःस्वार्थ थे। वह बात यहां न थी। अब हमें इसी बिल्डिंग में रहना था। अब वह हमारा अपना घर था। इसे छोड़कर हम कहीं जा भी नहीं सकते थे। अपना घर छोड़कर कोई जाता है क्या!



एक दिन तीसरे पहर के समय मैंने अपने कमरे की खिड़की का परदा हटाया, तो मेरी नजरों के सामने एक कौंधा-सा लपका। सामने वाले फ्लैट की बालकनी में एक बेहद खूबसूरत लड़की खड़ी विरोधी दिशा में देख रही थी। वह अठारह-उन्नीस बरस की होगी।

मैंने उसे पहली बार देखा था। इससे पहले वह कभी मुझे दिखाई नहीं दी थी। उस लड़की की सुंदरता ने मुझे बेहद प्रभावित किया था, बल्कि मेरे दिल पर बिजली बनकर गिरी थी। जी चाह रहा था, बस उसे देखता रहूं। उसने कुछ क्षणों के बाद अनजाने तौर पर अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से देखा, तो वे नज़रें मुझ पर कयामत ढा गयीं। कुछ क्षणों तक हम एक-दूसरे को देखते रहे। मैंने इस खयाल से अपनी नज़रें उसके चेहरे पर से हटा लीं, कि वह मेरे बारे में कोई गलत राय कायम न करे। मैंने परदा छोड़कर ठीक किया और खिड़की के पास से हट गया।

वह लड़की मेरे दिलो-दिमाग पर इस बुरी तरह छा गयी, कि मेरा सब्र व करार लुट गया। मुझे किसी पल चैन नहीं आ रहा था। मैंने एक लम्हे के लिए सोचा, कि क्या वह लड़की भी मुझे इस तरह देखकर प्रभावित हुई होगी, जिस तरह से मैं हुआ हूं? इस सवाल का मैं कोई जवाब नहीं ढूंढ़ सका।

थोड़ी देर बाद मैं अपनी बहन नाज़िया के कमरे में गया, तो वह आईने के सामने खड़ी अपने बालों में कंघी कर रही थी। उसकी ड्रेसिंग टेबल पर खुशबू और मेकअप की सामग्री सजी हुई थी। शायद वह कहीं जाने के लिए तैयार हो रही थी। उसने मुझे आईने में देखते हुए पूछा, "क्या बात है, भाईजान?"

"हमें यहां आये हुए पंद्रह-बीस दिन हो गये," मैं बोला, "यहां किस-किस से दोस्ती हुई है?"

"पड़ोसी और तीसरी मंज़िल के लोगों से," नाज़िया ने बताया, "इस ब्लाक के सभी अपार्टमेंट के लोगों से जान-पहचान करने की कोशिश कर रही हूं।"

"सामनेवाले ब्लाक के अपार्टमेंट वालों से दोस्ती हुई कि नहीं?"

"कौन-सा अपार्टमेंट?" नाज़िया

(शेष पृष्ठ ८४ पर)

आसिफ मलिक कांड

पर्स में मिली महबूबा की तस्वीर मौत का कारण बनी

–राजेश उपाध्याय

आसिफ मलिक ने लंबे डग भरकर रेहाना के करीब आते हुए कहा, "अरे रेहाना, क्या खरीदारी करने आ गयीं?"

"भाईजान, आप यहां!" रेहाना ने आश्चर्यमिश्रित खुशी से पूछा, "आप यहां क्या कर रहे हैं?"

"मैं तो यूं ही अपनी लाडली बहन की कार देखकर रुक गया था।" आसिफ ने मुस्कराते हुए कहा।

"भाईजान, आप भी मेरे साथ ही घर चल रहे हैं न?"

"नहीं रेहाना, मुझे अभी जरूरी काम से जाना है। मैं एक-दो घंटे बाद घर लौटूंगा। अम्मी को बता देना मेरी फिक्र न करें।"

"भाईजान, आज जल्दी घर लौट आना। मेरी ख्वाहिश है। प्रॉमिस कीजिए न आप।" रेहाना ने बच्चों की तरह जिद करते हुए ठुनककर कहा। आसिफ उसके सिर पर हल्की-सी चपत मारते हुए मुस्कराकर बोला, "हां बाबा, प्रॉमिस। अब तो खुश हो। मैं वैसे भी अपनी छोटी बहन के हुक्म की तामील करता हूं...यह तू जानती है।"

उसके बाद आसिफ ने रेहाना को 'बाय' कहा और अपनी मारुति ८०० की तरफ चल दिया। रेहाना अपने बड़े भाई को जाते हुए देखती रही। उस दिन ४ अप्रैल '९८ थी और वक्त था शाम पांच साढ़े पांच बजे का।

आसिफ मलिक के पिता खुर्शीद हुसैन इंदौर के बड़े रईसों में शुमार किये जाते हैं। स्क्रीन प्रिंटिंग प्लेट्स बनाने का उनका एक बड़ा कारखाना है, जिसे वे अपने इकलौते बेटे आसिफ की मदद से संचालित करते थे। रविन्द्रनगर में उनकी आलीशान कोठी है, जिसमें अपनी पत्नी और दोनों बच्चों के साथ वे रहते थे।

२५ वर्षीय आसिफ राजनीति में अच्छी पैठ रखता था। प्रदेश राजनीति में वह पूर्व केन्द्रीय मंत्री असलम शेर खान का कट्टर समर्थक होने के साथ मध्य प्रदेश अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ का संयोजक भी था।

रात के साढ़े नौ बजे तक जब आसिफ मलिक घर नहीं लौटा, तो रेहाना और उसकी मां काफी चिंतित हो गयी थीं। रेहाना ने खुर्शीद हुसैन से कहा, "पापा, भाईजान अभी तक नहीं लौटे, जबकि उन्होंने तो मुझे एक-दो घंटे में लौट आने को कहा था।"

"आ जाएगा, कहीं काम से अटक गया होगा।" खुर्शीद हुसैन ने रेहाना को तसल्ली देते हुए कहा।

"पर पापा, भाईजान को ऐसी कोई बात थी तो फोन करना चाहिए था न?"



दोस्त के पर्स में बीवी की तस्वीर! शौहर के खून में उबाल आना स्वाभाविक था

खुर्शीद हुसैन रेहाना की बातों से जरा असमंजस में पड़ गये। वाकई किसी काम में मसरूफ होने की सूरत में आसिफ का फोन से इत्तिला करना जरूरी था। लेकिन उसने अभी तक कोई खबर नहीं की थी, जबकि उसके पास मोबाइल फोन मौजूद था। जरूर कोई गड़बड़ है, उन्होंने सोचा।

"पापा, आप ही भाईजान को फोन लगा लीजिए। आखिर भाईजान जहां होंगे, उनके साथ ही उनका मोबाइल फोन भी होगा।" रेहाना ने कहा।

खुर्शीद हुसैन ने तुरंत बेटी की तजवीज पर अमल किया। आसिफ के मोबाइल फोन पर इंगेज टोन आ रही थी। खुर्शीद हुसैन ने बार-बार आसिफ के मोबाइल के नंबर डायल किये, पर नतीजा सिफर रहा। एक घंटे की कोशिशों के बाद भी जब आसिफ से मोबाइल पर संपर्क नहीं हुआ, तो खुर्शीद हुसैन ने कहा, "लगता है, आसिफ का फोन खराब हो गया है। खैर, मैं उसे तलाश करने जाता हूं।"

खुर्शीद हुसैन खुद आसिफ मलिक की तलाश में कार लेकर निकल पड़े। उन्होंने आसिफ के हर दोस्त के यहां उसे देख डाला, लेकिन वह कहीं नहीं पहुंचा था। अतः उनकी बेचैनी बढ़ गयी। वे बेचैन और थके-थके-से अपने बेटे के सबसे नजदीकी दोस्त आसिफ खान के पास पहुंचे। जब उससे उन्होंने अपने बेटे के बारे में पूछा, तो आसिफ खान भी हैरत में आ गया। उसने बताया कि शाम को उसकी मुलाकात आसिफ मलिक से हुई थी। तब आसिफ मलिक ने उसे बताया था कि यूनुस पटेल ने उसे तुरंत अकेले किसी जरूरी काम से बुलवाया था और वह उसी के पास जा रहा था। आसिफ खान से उसने एक-डेढ़ घंटे में लौट आने को कहा था।

खुर्शीद हुसैन ने आसिफ खान को साथ लिया और यूनुस पटेल के यहां पहुंचे। यूनुस पटेल भी आसिफ मलिक



यूनुस पटेल : दोस्ती में दगा मिला

के बचपन के दोस्तों में से था। उससे आसिफ मलिक के बारे में कुछ पता चल सकता था, लेकिन यूनुस पटेल अपने घर पर मौजूद नहीं था। उसके घर से पता चला कि वह अपने चार मित्रों के साथ बड़नगर (जिला उज्जैन) एक विवाह समारोह में सम्मिलित होने को कहकर घर से गया था।

यूनुस के कौन-कौन-से मित्र उसके साथ विवाह समारोह में भाग लेने के लिए गये थे, यह उसके घरवाले नहीं बता सके। हां, यह बात जरूर पता चली कि शाम को यूनुस से मिलने आसिफ मलिक नहीं आया था।

खुर्शीद हुसैन को यूनुस के घरवालों की यह बात बड़ी अजीब लगी। उन्हें यकीन नहीं आया कि आसिफ उन्हें सूचित किये बगैर बड़नगर गया होगा। वह मात्र दो घंटे के लिए भी अगर कहीं जाता था, तो उन्हें बताकर जाता था। फिर वह शहर के बाहर उन्हें बताये बिना कैसे जा सकता था?

खुर्शीद हुसैन और आसिफ खान को मलिक की तलाश करते-करते यह भी पता लगा कि यूनुस के साथ गये दोस्तों में रूजवेल्ट नामक दिल्ली का एक ईसाई युवक भी था, जो इंदौर में अपनी बहन व जीजा के साथ रहकर कंप्यूटर का व्यवसाय करता था।

पूरी रात आसिफ मलिक की तलाश और वापसी के इंतजार के बाद हताश होकर खुर्शीद हुसैन को लगने लगा कि बात काफी गंभीर है, और उन्हें अब इस मामले की सूचना पुलिस को दे देनी चाहिए। अतः अगली सुबह ५ अप्रैल '९८ को उन्होंने पलासिया पुलिस स्टेशन में आसिफ मलिक की गुमशुदगी दर्ज करा दी।

मामला चूंकि शहर के एक बड़े अल्पसंख्यक नेता के अलावा एक नामी-गिरामी रईस के पुत्र का था, अतः थाना-प्रभारी अनिल भट्ट ने तुरंत मामले की सूचना वरिष्ठ अधिकारियों को दी, साथ ही अपने विश्वस्त मुखबिरों को भी सचेत कर दिया।

इसी बीच उन्होंने बड़नगर के अपने सूत्रों के माध्यम से पता लगाया कि आसिफ मलिक, यूनुस पटेल या रूजवेल्ट वहां नहीं पहुंचे थे। स्पष्ट था, यूनुस पटेल ने जान-बूझकर झूठ बोला था। ऐसा करने की उसे क्या जरूरत थी? कहीं उसकी नीयत में खोट तो नहीं था, और उसी के तहत उसने मलिक को अगवा करा लिया हो। लेकिन फिरौती या किसी प्रकार का कोई संदेश भी खुर्शीद हुसैन के परिवार को नहीं मिला था। फिर यूनुस भी रईस बाप का बेटा था। वह ऐसा क्यों करेगा? यह अनिल भट्ट की समझ में नहीं आ रहा था।

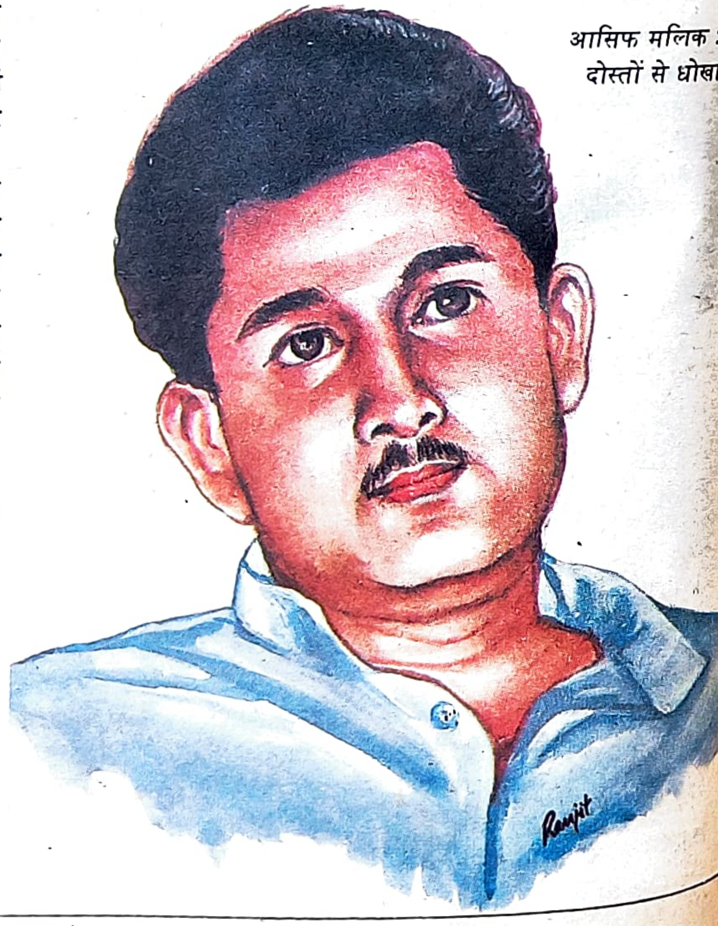
यूनुस के घरवालों से पूछताछ में वही बातें पता चली, जो खुर्शीद हुसैन को उन्होंने बतायी थीं। इसी बीच एक मुखबिर ने अनिल भट्ट को ऐसी जानकारी दी कि मामला और भी संदिग्ध लगने लगा।

मुखबिर के मुताबिक, शाम सात बजे के आसपास टेलीफोन नगर चौराहे के पास एक मारुति ८०० कार में पांच युवकों ने एक युवक को जबरदस्ती बैठाया था। इस घटना को उस समय मुखबिर ने यार-दोस्तों का मजाक समझकर उड़ती नजर से देखा था।

उस समय सी०एस०पी० राजेश हिंगणकर भी पलासिया थाने पर पहुंच चुके थे, जब मुखबिर थाने आया था। आसिफ मलिक की गुमशुदगी दर्ज करते समय उसकी खुर्शीद हुसैन से ली गयी फोटो जब मुखबिर को दिखायी गयी, तो वह हैरत से बोला, "अरे! यही तो वह युवक था, जिसे कल शाम पांच युवकों ने जबरदस्ती मारुति कार में बैठाया था।"

स्पष्ट था, आसिफ मलिक अपनी मर्जी से नहीं गया था। उसे अगवा किया गया था। अगवा करनेवाले कौन थे? वे यूनुस पटेल और रूजवेल्ट के साथी हो सकते थे, क्योंकि वे दोनों घर नहीं लौटे थे। यह भी हो सकता था कि यह काम किसी और ने ही किया हो, किंतु शक की सुई बार-बार यूनुस पटेल पर जाकर इसलिए टिक जाती थी, क्योंकि मलिक ने आसिफ खान से खुद को अकेले यूनुस पटेल द्वारा बुलाने की बात कही थी।

इसी बीच पुलिस कप्तान देवेन्द्र सिंह सेंगर और ए०एस०पी० सोनाली मिश्रा भी पलासिया थाने पहुंच गये। आसिफ मलिक के अपहरण के मामले की उन्होंने खुद समीक्षा की। तत्पश्चात मामले की तह तक पहुंचने



आसिफ मलिक : दोस्तों से धोखा

के लिए एक पुलिस दल सी०एस०पी० राजेश हिंगणकर के नेतृत्व में गठित किया।

जहां पुलिस अधिकारी अपने प्रयास में लगे हुए थे, वहीं खुर्शीद हुसैन, आसिफ खान और मलिक के मित्र उन्हें शहर में अपने स्तर पर खोज रहे थे।

अगले दिन ग्यारह बजे थाने पर सूचना मिली कि बंगाली चौराहे पर एक हेयर कटिंग सैलून में रूजवेल्ट दाढ़ी बनवा रहा है। सी०एस०पी० राजेश हिंगणकर, थाना-प्रभारी अनिल भट्ट के साथ तुरंत बंगाली चौराहे पर पहुंचे। तब तक आसिफ खान और मलिक के दोस्तों ने भागने का प्रयास करते रूजवेल्ट को दबोच लिया था। उसे पकड़कर थाना पलासिया लाया गया। रूजवेल्ट काफी घबराया हुआ था। थाने में वह दिल का दौरा पड़े मरीज जैसी हरकतें करने लगा। रूजवेल्ट को अलग कमरे में लाकर पहले पानी पिलाया गया, फिर वरिष्ठ अधिकारियों की टीम ने उससे पूछताछ की।

पूछताछ में उसने बताया कि कल शाम को उसकी यूनुस पटेल से मुलाकात हुई थी, लेकिन उसके बाद उसे नहीं पता था कि यूनुस कहां गया था, और उसके साथ कौन-कौन थे। आसिफ मलिक के अपहरण के बारे में जानकारी होने से उसने इनकार किया। दो घंटे की माथापच्ची के बाद पुलिस कप्तान देवेन्द्र सिंह सेंगर समझ गये कि रूजवेल्ट से आसानी से कुछ भी उलवाना संभव नहीं है। अतः उन्होंने सी०एस०पी० राजेश हिंगणकर और थाना-प्रभारी अनिल भट्ट को निर्देश दिया कि वे रूजवेल्ट से पूछताछ में आये तथ्यों की पुष्टि करें।

इसी मध्य थाना परिसर में दाऊदी बोहरा समाज के सैकड़ों लोग इकट्ठे हो गये थे। उनमें आसिफ मलिक को अब तक न तलाशने के कारण आक्रोश बढ़ गया था। पुलिस कप्तान सेंगर ने बोहरा समाज के लोगों की बात ध्यान से सुनी और आसिफ मलिक का पता शीघ्र लगाने का आश्वासन दिया।

दिनभर की कड़ी पूछताछ में रूजवेल्ट एक ही बात कहता रहा कि उसे न तो आसिफ मलिक के बारे में कुछ जानकारी है, न ही यूनुस पटेल या उसके दोस्तों के बारे में। वह बार-बार कह रहा था कि उसे इस प्रकरण में जबरदस्ती घसीटा जा रहा है।

शाम साढ़े चार बजे हिंगणकर के पास एक अज्ञात व्यक्ति का फोन आया। फोनकर्ता ने बताया कि पिछली शाम टेलीफोननगर से मारुति में अगवा करनेवाले युवकों में यूनुस पटेल के साथ रूजवेल्ट भी शामिल था। जब हिंगणकर ने सूचना देनेवाले से उसका नाम जानना चाहा, उसने फोन डिस्कनेक्ट कर दिया। हिंगणकर तुरंत उस कमरे में आये, जहां रूजवेल्ट से पूछताछ चल रही थी। उन्होंने रूजवेल्ट को सामने बैठाकर उसकी आंखों में आंखें डालकर पूछा, "तुम वाकई आसिफ मलिक के अपहरण के बारे में कुछ नहीं जानते?"

रूजवेल्ट ने निराशाजनक अंदाज में गर्दन हिला दी। हिंगणकर की निगाह तभी उसके गले और गालों पर पड़ी खराशों पर गयी। उन्होंने सामान्य तरीके से पूछा, "तुम्हारे गाल पर यह कैसे कट गया?"

रूजवेल्ट ने गाल पर हाथ फेरा और बोला, "सर, मैं जब सैलून में दाढ़ी बनवा रहा था, तभी ब्लेड से कट गया था।"

हिंगणकर ने उसे कोई मौका दिये बिना पूछ लिया, "और फिर तुम्हारे गले पर भी दाढ़ी बनवाते समय ब्लेड से ही कटा होगा?"

रूजवेल्ट चुप रहा।

हिंगणकर ने कहा, "तुम बार-बार झूठ बोलकर आग में घी मत झोंको। पुलिस के चंगुल में अच्छे-अच्छे अपराधी भी बोलने लगते हैं। हमें पता चल गया है कि कल शाम आसिफ मलिक को अगवा करते समय तुम भी थे। वहां तुम्हें देखकर पहचानने वाले अभी यहां आनेवाले हैं। उसके बाद तुम्हारी क्या हालत होगी, इसकी कल्पना मात्र से तुम सिहर उठोगे।"

रूजवेल्ट के चेहरे पर कई भाव आकर चले गये। हिंगणकर ने अनिल भट्ट को इशारा किया। अनिल भट्ट ने जैसे ही दो हट्टे-कट्टे सिपाहियों को रूजवेल्ट को पुलिसिया हाथ दिखाने के लिए सौंपा, वह घबराकर पहले ही तोते की तरह बोलने लगा। उसने मान लिया कि उसने यूनुस पटेल, अतुल जैन, सोहराब और हरीश शर्मा के साथ आसिफ मलिक को अगवाकर उसका खून कर दिया था।

यह जानकारी दिल हिला देनेवाली थी। रूजवेल्ट ने बताया कि आसिफ मलिक के कत्ल के बाद यूनुस पटेल ने मलिक की कार को राऊ में मशाल होटल के बाहर खड़ी कर दिया था, जहां दिनभर दर्जनों वाहन खड़े रहते थे।

रूजवेल्ट का बयान खत्म होते ही फोरेंसिक एक्सपर्ट एस०के० शर्मा पुलिस दस्ते के साथ कनाडिया के जंगल की ओर रवाना हो गये, जहां हत्या के बाद पांचों युवकों ने आसिफ मलिक के शव को फेंका था। जंगल में घटनास्थल तक पहुंचते-पहुंचते शाम के साढ़े छह बज गये थे।

आसिफ मलिक की लाश सड़ने लगी थी। आसिफ के गले, पैर और शरीर के विभिन्न हिस्सों पर तेज धारदार हथियारों के प्रहार के निशान थे।

शव के पंचनामे व जब्ती की कार्रवाई के समय खुर्शीद हुसैन घटनास्थल पर मौजूद थे। अपने एकमात्र बेटे के करुण अंत से वे अत्यंत सदमे में थे। उन्हें यह समझ में नहीं आ रहा था कि आसिफ के उन्हीं दोस्तों ने, जिन्हें वह अजीज समझता था, उसके साथ ऐसा क्यों किया था। आसिफ मलिक के शव को पंचनामे के बाद पोस्टमार्टम के लिए एम०वाई० हॉस्पिटल भेजवा दिया गया।

आसिफ मलिक की मारुति ८०० मशाल होटल की पार्किंग से बरामद कर ली गयी। रूजवेल्ट के बयान के मुताबिक, सभी अभियुक्त यूनुस पटेल की मारुति में बैठकर नेमावर रोड पर स्थित गांव पत्थर मूंडला में असगर के यहां गये थे। सुबह वहां यूनुस पटेल से मिलने सिकंदर बुलेट मोटर-साइकिल से आया था। वही मोटर-साइकिल लेकर रूजवेल्ट स्थिति का जायजा लेने इंदौर आया था, जहां पुलिस और आसिफ के मित्रों द्वारा दबोच लिया गया।

यूनुस पटेल और उसके तीनों साथियों के हुलिए के बारे में इंदौर तथा आसपास के सभी थानों को सूचित कर दिया गया था। इस बीच पत्थर मूंडला गयी पुलिस पार्टी खाली हाथ वापस लौट आयी। यूनुस पटेल और उसके साथी वहां से सेंधवा जाने के लिए कहकर सुबह ही मारुति में बैठकर रवाना हो गये थे। लिहाजा एक पुलिस-दल सेंधवा भी रवाना किया गया।

आसिफ मलिक की निर्मम हत्या की खबर से उसकी बहन रेहाना और मां अचेत हो गयी थीं। वहीं शहर में आक्रोश का माहौल बनने लगा था। आसिफ मलिक लोकप्रिय नेता के रूप में उभर रहा था। लोगों का अनुमान था कि राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता की वजह से उसे रास्ते से हटाया गया था। फिलवक्त वह कांग्रेस में ही था, किंतु असलम शेर खान के भारतीय जनता पार्टी में जाने से यह बात तय थी कि वह भी भाजपा में शामिल हो जायेगा। इस निर्मम हत्याकांड के संबंध में कई तरह की बातें लोग कर रहे थे।

इधर रूजवेल्ट बार-बार अलग-अलग बातें पुलिस को बता रहा था।

इसी बीच रात ग्यारह बजे पलासिया के थाना-प्रभारी अनिल भट्ट को एक अत्यंत विश्वस्त मुखबिर ने खबर दी कि चारों अभियुक्तों को घाटा बिल्लोद क्षेत्र में देखा गया है। तत्काल एक दस्ते के साथ अनिल भट्ट घाटा बिल्लोद की ओर रवाना हो गये। आधी रात को भट्ट के पुलिस दस्ते ने चारों अभियुक्तों को सड़क के किनारे कार में सोते हुए गिरफ्त में ले लिया।

६ अप्रैल को थाना-प्रभारी अनिल भट्ट ने गिरफ्तार सभी आरोपियों को न्यायालय में प्रस्तुत कर १३ अप्रैल ९८ तक के लिए पुलिस रिमांड पर ले लिया।

थाना-प्रभारी भट्ट ने अभियुक्तों की निशानदेही पर वे सभी हथियार बरामद कर लिये, जिन्हें आसिफ की हत्या में प्रयोग किया गया था। वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों द्वारा की गयी पूछताछ और जांच में जो कथा उभरी, वह इस प्रकार है :

आसिफ मलिक और यूनुस पटेल बचपन से ही बेहद गहरे मित्र थे। दोनों ही एक-दूसरे के बगैर नहीं रह पाते थे। दोनों के शौक भी एक-से थे। सामाजिक और आर्थिक स्तर भी एक-सा था। दोनों के ही पिता अपने-अपने समाज में

खासा असर रखते थे। यूनुस पटेल नायता मुसलमान था, तो आसिफ मलिक दाऊदी बोहरा।

उम्र बढ़ने के साथ दोनों दोस्तों में वे तमाम ऐब भी आ गये, जो सामान्य रूप से धनी परिवार के युवाओं में होते हैं। उन दोनों के दोस्तों की एक बड़ी टीम थी। इस टीम में जहां आसिफ खान, आसिफ मलिक का गहरा दोस्त था, वहीं हरीश शर्मा, अतुल जैन, रूजवेल्ट यूनुस पटेल के खास दोस्त थे।

उम्र के बढ़ते दायरे के साथ ही यूनुस पटेल और आसिफ मलिक ने अपने-अपने पैतृक व्यवसाय बखूबी संभाल लिये थे। आसिफ मलिक की सामाजिक और राजनैतिक गतिविधियों में रुचि होने से वह देखते-ही-देखते एक असरदार राजनैतिक शख्सियत बन गया। उसके प्रदेश के बड़े कांग्रेसी नेताओं से गहरे संबंध बन गये थे। फुरसत के क्षणों में सभी दोस्त मिलकर होटलों में रंगीनियों से दो-चार होते थे। पैसे की न तो आसिफ मलिक के पास कमी थी, न ही यूनुस पटेल के पास।

सन् १९९६ में एक दिन यूनुस पटेल ने बातों-बातों में आसिफ मलिक को बताया कि उसके अम्मी-अब्बा शादी के लिए जोर दे रहे हैं।

यूनुस की बात पर आसिफ ने चुटकी लेते हुए कहा, "तो भई, इसमें बुरा क्या है। इधर-उधर भटकने से तो अच्छा है कि अंकल-आंटी तुम्हें एक खूंटे से बांधने का इरादा कर रहे हैं।"

यूनुस एकदम गंभीर होता हुआ बोला, "यार, तुम्हें मजाक सूझ रहा है और यहां मेरी जान पर आन पड़ी है। अब मुझे लड़की देखने जाना है। समझ में नहीं आ रहा है क्या करूं।"

"अमां यार, इसमें समझने की क्या बात है! हमें भी अपने साथ ले चलो। कम-से-कम हमें भी तो पता चले कि लड़की तुम्हारे ख्वाबों की शहजादी जैसी है भी या नहीं।"

यूनुस पटेल उसकी बात पर हल्के से हंस दिया।

अगले दिन यूनुस पटेल आसिफ मलिक के साथ खान साहब के यहां उनकी लड़की रेशमा को देखने पहुंचा। खान साहब का आसिफ मलिक के परिवार से काफी पुराना परिचय था। इससे यूनुस को खुशी हुई कि उसकी भावी ससुराल आसिफ की समझी-बूझी है

उस दिन यूनुस ने जब रेशमा को देखा, तो वह कुछ क्षणों के लिए अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसकी नजरें रेशमा के चेहरे से चिपककर रह गयी थीं। उसकी तन्द्रा रेशमा की आवाज से टूटी, "चाय लीजिए न।"

यूनुस को ऐसा लगा, जैसे हजारों चांदी की घंटियां एक साथ बज उठी हों।

"आसिफ बेटे, तुम तो कुछ भी नहीं ले रहे हो," खान साहब ने कहा, "वैसे भी तुम बहुत दिनों बाद आये हो।"



यूनुस ने झुककर पर्स उठाया और आसिफ खान की तरफ हाथ बढ़ाया। उसका हाथ एकाएक वहीं रुक गया। पर्स में रेशमा की फोटो लगी हुई थी। क्षणभर में ही यूनुस के दिमाग से सारी मौज-मस्ती का गुबार हवा में उड़ गया।

"अरे अंकल, क्या बताऊं, फुरसत ही नहीं मिलती। वह तो यूनुस ने बताया नहीं कि यहां आना था और वह भी रेशमा को देखने के लिए, वरना मैं इसे वहीं सब कुछ बता देता।" आसिफ ने बेफिक्री-सी हंसी हंसते हुए कहा।

फिर बहुत देर तक बातें होती रहीं। यूनुस को हैरत थी कि आसिफ और रेशमा एक-दूसरे को पहले से जानते थे। खान साहब के यहां से लौटते वक्त रास्ते में आसिफ ने यूनुस को रेशमा से शादी कर लेने का मशविरा दे दिया। यूं भी यूनुस को रेशमा बेहद पसंद आ गयी थी।

आसिफ मलिक के प्रयासों से कुछ समय बाद यूनुस और रेशमा का निकाह हो गया। निकाह के बाद गौना नहीं किया गया। यह तय था कि दो साल बाद रेशमा का गौना किया जायेगा।

रेशमा कालेज में पढ़ रही थी। वह जीन्स और टी-शर्ट पहनकर मारुति से कालेज जाया करती थी। यूनुस आनेवाले समय की कल्पना में दिन गिनने लगा। यूं तो मौज-मस्ती के लिए होटलों में जाना इन सभी दोस्तों का बदस्तूर जारी था।

समय धीरे-धीरे अपनी गति से खिसकता जा रहा था।

फरवरी '९८ की एक शाम यूनुस पटेल, आसिफ मलिक और आसिफ खान एक होटल में बैठे थे। खाने-पीने के बाद वेटर बिल लेकर आया, आसिफ खान ने बिल चुकाने के लिए जैसे ही जेब से पर्स निकाला, पर्स उसके हाथ से छूटकर नीचे गिर गया। यूनुस ने झुककर पर्स उठाया और आसिफ खान की तरफ हाथ बढ़ाया। उसका हाथ एकाएक वहीं रुक गया। पर्स में रेशमा की फोटो लगी हुई थी। क्षणभर में ही यूनुस के दिमाग से सारी मौज-मस्ती का गुबार हवा में उड़ गया। आसिफ खान भी हतप्रभ-सा रह गया था। उसने यूनुस के हाथ से लगभग पर्स छीन लिया।

यूनुस ने उसकी आंखों में आंखें डालते हुए बेहद ठंडे स्वर में पूछा, "तुम्हारे पर्स में मेरी बीवी की फोटो कैसे आयी?"

"वो...वो...", आसिफ खान की आवाज लड़खड़ाई, "तुम्हारी बीवी की फोटो नहीं है।"

आसिफ खान के स्वर में आत्मविश्वास का अभाव स्पष्ट झलक रहा था। आसिफ मलिक की सूरत भी एकदम लटक गयी थी, यह यूनुस ने महसूस किया था।

"मैंने बस तुमसे इतना पूछा है कि तुम्हारी जेब में यह फोटो कैसे आया?" यूनुस ने सर्द लहजे में अपना सवाल दोहराया।

"वो...यूनुस जाने दो इस बात को।" आसिफ मलिक ने बीच-बचाव करने का प्रयास किया, पर यूनुस ने कड़े शब्दों में आसिफ मलिक को चेतावनी दी, "तुम बीच में मत बोलो वरना ठीक नहीं होगा।"

बात बिगड़ती देख आसिफ खान वहां से चला गया।

अगले दिन अपने दोस्तों के साथ जाकर यूनुस पटेल ने आसिफ खान के साथ मारपीट की। फिर आसिफ मलिक ने दोनों में मध्यस्थता कर रेशमा का फोटो यूनुस को दिला दिया। बाद में यूनुस को खोजबीन में पता चला कि उसकी पत्नी की फोटो, आसिफ खान के पास आसिफ मलिक की वजह से ही पहुंची थी। रेशमा आसिफ खान को चाहती थी। आसिफ मलिक को यह बात मालूम थी।

उस दिन से यूनुस बहुत उदास रहने लगा था। उसे लगने लगा था कि आसिफ मलिक ने दोस्ती के नाम पर उसकी पीठ में छुरा घोंपा है। जितनी गहराई से वह इस पर सोचता, उसे उतना ही लगने लगता कि आसिफ मलिक की नीयत में खोट है। वह उसकी बीवी पर बुरी नजर रखता है और उसे बरगला रहा है।

इसी बीच यूनुस को पता चला कि रेशमा के घर पर आजकल उसके लिए अश्लील और गुमनाम फोन आ रहे थे। फोन करनेवाला अपना नाम-पता नहीं बताता था। इस बात से यूनुस के दिल में पनप रहे शक के तूफान ने

उसके दिमाग की जड़ें हिला दीं। उसे इन फोन कॉल्स के पीछे भी आसिफ मलिक का ही हाथ लग रहा था। उसे अफसोस केवल यही हो रहा था कि आसिफ जैसे यार ने उसके साथ छल किया था।

उन्हीं दिनों यूनुस के चचेरे भाई सोहराब ने उसे बताया कि आसिफ मलिक ने दोस्ती में दगा की है। सोहराब ने यूनुस की गलतफहमी मिटाने के बजाय यह कहकर गुस्सा प्रकट किया कि क्या उसने चूड़ियां पहनी हुई हैं, जो आसिफ मलिक की हरकत की सजा नहीं दे सका।

सोहराब छोटी-मोटी दादागीरी किया करता था। पुलिस में उसका क्रिमिनल रिकार्ड भी था। सोहराब ने यूनुस को मशविरा दिया कि वह आसिफ मलिक से फिर दोस्ती बढ़ाये, और विश्वास में लेकर उसे रास्ते से हमेशा के लिए हटा दे। यूनुस के गले सोहराब की यह बात उतर गयी। उसने आसिफ मलिक की ओर फिर से दोस्ती का हाथ बढ़ा दिया।

कहते हैं कि एक बार जिससे भी जमीन और जोरू को लेकर झगड़ा हो जाये, उसकी दोस्ती पर यकीन नहीं करना चाहिए, पर आसिफ मलिक यह भूलकर बैठा। उसने यूनुस का अपनी ओर बढ़ा हाथ फिर से थाम लिया।

उसके बाद यूनुस मौके की तलाश में रहने लगा। उसने इस काम को अंजाम देने के लिए मौज-मस्ती के साथी रूजवेल्ट, अतुल जैन और हरीश शर्मा को अपनी दोस्ती का वास्ता देकर अपनी योजना में शामिल कर लिया।

४ अप्रैल '९८ को शनिवार था। शाम चार बजे के बीच यूनुस पटेल ने आसिफ मलिक से मोबाइल फोन पर संपर्ककर उसे टेलीफोननगर चौराहे पर बिलकुल अकेले बुलाया। आसिफ मलिक ने जब उससे अकेले बुलाने की वजह पूछी, तो यूनुस पटेल फोन पर अश्लील हंसी हंसते हुए बोला कि शाम को मौज-मस्ती के सामान का बंदोबस्त हुआ है इसी लिए।

आसिफ मलिक शौकीन तबीयत का युवक था। यह पहला मौका भी नहीं था। अतः वह तुरंत राजी हो गया। उसे सपने में भी इल्म नहीं था कि यूनुस ने उसके लिए यह चारा फेंका है।

आसिफ मलिक अपनी मारुति ८०० कार एमपी-०९-वाई ई-५२ से टेलीफोन नगर चौराहे पर निर्धारित समय पर पहुंचा। वहां यूनुस पटेल अपनी मारुति ८०० एमपी-०९-एच ए-५२७१ में सोहराब, रूजवेल्ट, अतुल जैन और हरीश शर्मा के साथ पहले से बैठा था। चाकू, छुरे, तलवार उन्होंने कार में पहले से ही रखे हुए थे।

जैसे ही आसिफ मलिक वहां पहुंचा, यूनुस पटेल ने उसे अपनी मारुति में आकर बैठने को कहा। आसिफ मलिक को यूनुस पटेल के हाव-भाव और उसके दोस्तों की मौजूदगी देखकर कुछ खटका हुआ। उसने यूनुस की कार में बैठने से इनकार कर दिया और वापस अपनी कार में बैठने लगा। यूनुस मुश्किल से हाथ आये इस मौके को इतनी आसानी से गंवाना नहीं चाहता था। उसने अपने दोस्तों को इशारा किया। सोहराब और रूजवेल्ट आसिफ की ओर बढ़े। अतुल जैन और हरीश शर्मा भी आसिफ मलिक की ओर लपके। चारों ने आसिफ मलिक को घसीटकर यूनुस पटेल की कार की पिछली सीट पर डाला। आसिफ के कार में आते ही यूनुस ने कार आगे बढ़ा दी। अतुल जैन, आसिफ मलिक की कार लेकर यूनुस की कार के पीछे चल दिया।

लोगों के कुछ समझने से पहले ही दोनों कारें आगे बढ़ गयी थीं। यूनुस ने कार कनाडिया मार्ग पर डाल दी थी। कार में ही आसिफ के पेट, गले और शरीर के अन्य हिस्सों पर तलवार, चाकू घोंपकर उन्होंने उसे हलाक कर दिया था।

हत्या के बाद कनाडिया के जंगल में चार किलोमीटर अंदर जाकर एक नाले के पास आसिफ मलिक के शव को डाल दिया गया। यूनुस ने आसिफ का मोबाइल फोन तोड़कर जला दिया था, ताकि यह सुबूत भी मिट जाये।

शव ठिकाने लगाने के बाद सोहराब ने तय किया कि आसिफ मलिक की कार 'होटल मशाल' की पार्किंग में छोड़ दी जाये। इस तरह से कुछ दिन उसकी कार के बारे में कुछ पता नहीं चलेगा। कार 'मशाल होटल' में पार्क करने के बाद पांचों असगर के यहां रुके। वहीं से सुबह रूजवेल्ट तो इंदौर आ गया था और बाकी चारों दोस्त असगर को सेंधवा जाने को बताकर धार चले गये थे।

कत्ल करने की दहशत में चारों घबराये हुए थे। दिनभर इधर-उधर बेमतलब घूमने के बाद रात को वे चारों घाटा बिल्लोद आकर सड़क के किनारे कार में सो रहे थे कि उन्हें सी०एस०पी० राजेश गिंणकर और टी०आई० अनिल भट्ट की टीम ने दबोच लिया था।

समस्त अनुसंधान पूर्ण करने के बाद थाना-प्रभारी अनिल भट्ट ने दिनांक १३ अप्रैल '९८ को सभी अभियुक्तों को जेल भेजवा दिया था।

कथा प्रेस में जाने तक किसी भी आरोपी की जमानत मंजूर नहीं हुई थी।●

(कथा पुलिस सूत्रों पर आधारित। रेशमा परिवर्तित नाम है। चित्रांकन चित्रकार की कल्पना से)

जरा संभलकर

जगह-जगह के अनोखे रिवाज हैं। भारत में अगर कोई किसी बात के लिये मना करना चाहता है, तो सर को जुम्बिश देकर, गर्दन बायीं ओर से दायीं ओर घुमा देता है। सामने वाला समझ जाता है, यह मना कर रहा है। मेहमान को यह चीज नहीं पसन्द है। मगर बलगारिया जाने पर आप ऐसा न कीजियेगा। वहां निषेध के रूप में, इस तरह सर हिलाना 'हां' का सूचक है। फिर होगा यह कि जो चीज आपको नापसन्द है, वह और परोस दी जायेगी।

कुवैत में मेहमान के आने पर उसे कहवा या काफी जरूर पिलाते हैं। क्या जायका। शौक से पीजिये। कहवा की जगह 'गहवा' याने इलाइची वाली खुशबूदार काफी हो तो कहने ही क्या? पर आपकी तबियत हो या न हो, यह कहवा आपको दो बार पीना पड़ेगा, याने पूरे दो प्याले। मगर इसमें भी कोई परेशानी नहीं। मुसीबत तब आती है, जब प्याला खत्म कर, आप उसे खास ढंग से तीन बार न हिलायें। ऐसा न करने पर काफी आपके प्याले में उड़ेली ही जाती रहेगी, भले ही वह आपके लिये काफी हो जाये।



—भाई की गैरत—

(पृष्ठ ७५ का शेष)

ने खिड़की की तरफ देखा। मैंने आगे बढ़कर परदा हटाया, उसे इशारे से बताया। लड़की बालकनी में नहीं थी। उस अपार्टमेंट के बिल्कुल सामनेवाले कमरे की खिड़की पर रेशमी परदा पड़ा हुआ था, "उस ब्लाक का अम्मी ने अभी तक रुख नहीं किया। उस अपार्टमेंट में जो रहते हैं, क्या आप उन्हें जानते हैं?"

"मुझे वे लोग देखने में बहुत अच्छे, शिष्ट, सभ्य और सलीकामंद लगे हैं। जरूरत इस बात की है कि हम ऐसे लोगों से ताल्लुकात बढ़ायें," मैंने उसे मशविरा दिया, "अब जबकि हमें यहां स्थायी तौर पर रहना है, तो अच्छे पड़ोसियों से दोस्ती जरूरी है।"

"आप ठीक कहते हैं, भाईजान," नाज़िया अनुमोदन भरे स्वर में बोली, "अम्मी और अब्बू भी यही कहते हैं।"

"अच्छा, यह बताओ, तुम इस वक्त कहां जा रही हो?" मैंने पूछा।

"तीसरी मंज़िल पर सरफराज़ हैं न, उनकी बेटी की सालगिरह है। मुझे और अम्मी को दावतनामा आया है। हम उनके यहां जा रही हैं।"

चूंकि नाज़िया से मुझे मतलब की कोई बात हासिल नहीं हो सकी थी, इसलिए मैं उसके कमरे से निकल गया।

उस रोज़ से मेरी ताक-झांक का सिलसिला बढ़ता गया। वह शाम के समय बालकनी में थोड़ी देर के लिए आ खड़ी होती। मैं किसी-न-किसी बहाने से खिड़की का परदा हटाकर उसकी तरफ देखता। हम दोनों की नज़रें मिलतीं, बल्कि एक-दूसरे की नज़रें जुड़ जातीं और मेरा सीना धड़क उठता। उसे शायद इस बात का एहसास नहीं था कि वह भी मुझे प्यार भरी नज़रों से देखती है। अगर उसे मेरा इस तरह से देखना बुरा लगता, तो वह फौरन ही बालकनी से हटकर अंदर चली जाती, लेकिन उसने कभी ऐसा नहीं किया था। वह वहां खड़ी रहती थी। फिर मैंने महसूस किया कि उसने मेरे इस तरह देखने का बुरा नहीं माना। एक बार मैं उसे देखकर मुस्कराया, तो उसके जवाब में उसके रसभरे होंठों पर एक दिलफरेब मुस्कान बिखर गयी थी।

फिर एक रोज़ मैंने दिल में यह निश्चय कर लिया कि अब मुझे इश्क के मैदान में एक कदम आगे बढ़ाना चाहिए। मैंने उसके दूसरे दिन ही उसे सिर के इशारे से सलाम किया, तो उसने भी अपना सिर हिलाकर मेरे सलामं का जवाब दिया।

खुशी से मेरा बुरा हाल हो गया। पैर थे कि ज़मीन पर टिकते ही नहीं थे। ऐसा लगा था कि मैं आसमान की बुलंदियों पर पहुंच गया हूं। मुझे उम्मीद नहीं थी कि वह मेरे सलाम का जवाब देगी। उसके जवाब देने से इस बात में अब कोई संदेह नहीं रहा था कि दोनों तरफ आग बराबर लगी हुई है। उसके दिल में मेरी मुहब्बत का चिराग रोशन हो गया था। वह भी मुझे पसंद करती थी, मुहब्बत करती थी। मैं अपनी मुहब्बत पर गर्वीला और मगरूर-सा हो गया था। यह स्वाभाविक बात थी।

उस रोज़ के बाद से इशारों से सलाम का सिलसिला चल निकला। मुस्कराहटों का विनिमय भी हो जाता था। उसकी एक छोटी बहन और बड़ा भाई था। उसकी छोटी बहन बारह-तेरह बरस की थी। वह बहुत सीधी-सादी थी। अपनी बहन की तरह ही खूबसूरत थी। उसका बड़ा भाई भी बहुत खूबसूरत और जवान था, लेकिन वह भी बहुत सीधी-सादी तबीयत का मालिक था। कभी मैंने उसे बालकनी में खड़े या खिड़की से झांकते हुए नहीं देखा था। उसे अपने कमरे में लिखने-पढ़ने में मग्न देखा था। वह बाहर निकलता, तो उसकी नज़रें नीची रहती थीं।

दो-तीन बार उस सशरीर शीला से नीचे मुठभेड़ हुई। कभी वह अपनी छोटी बहन के साथ, तो कभी अपनी अम्मी के साथ। तनहाई में मिलने और बात करने का मौका नहीं मिला था। सिर्फ निगाहों से मुहब्बत के पैगामों का विनिमय होता था। एक बार वह बस-स्टाप पर अकेली खड़ी थी कि मैंने उसे देख लिया। उसने मुझे नहीं देखा था। यह बड़ा अच्छा मौका था उससे बात करने का। मालूम नहीं क्यों, उस समय हिम्मत नहीं हुई। फिर भी मैंने उसकी तरफ एक कदम उठाया था, तो मुझे अपना साथा पसीने-पसीने महसूस हुआ। मुझे अपने कदम मानों भारी लग रहे थे। मैं एक बुज़दिल सिपाही की तरह खड़ा सोचता रह गया। बस आयी। वह बस में सवार होकर चली गयी।



निगाहों की जुबान से आखिर कब तक मुहब्बत का यह सिलसिला चलता। मुझे अभी तक उस सुंदरी का नाम तक मालूम न हो सका था, न ही वह मेरे नाम से वाकिफ थी। हम दोनों के बीच अभी भी अजनबियत की एक दीवार थी, जिसे मैं गिराना चाहता था।

मैंने कई बार दबे शब्दों में नाज़िया से कहा कि सामने वाले फ्लैट में जाकर उस लड़की से किसी-न-किसी बहाने संबंध बनाये, पर उसके कान पर जूं तक नहीं रेंगती थी। उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी उस घराने से दोस्ती करने में। मुझे नाज़िया पर सख्त गुस्सा आता था। मैं खून के घूंट पीकर रह जाता। इसके सिवा चारा भी न था। उस लड़की के भाई को बस-स्टाप पर दो-तीन बार खड़े देखा था। वह अजीब किस्म का था। उसे चाहिए था कि दोस्ती के लिए वह मेरी तरफ हाथ बढ़ाता, पर उसने अपनी जगह से हरकत तक नहीं की। मुझे एक बार देखा और अपनी नज़रें फेर लीं। मैं इसलिए भी उसकी तरफ दोस्ती करने के इरादे से नहीं बढ़ा कि कहीं वह इसका गलत मतलब न ले ले, क्योंकि उसके घर में एक नौजवान बहन थी। मैं उसे शक का मौका देना नहीं चाहता था।

निगाहों की जुबान से आखिर कब तक मुहब्बत का यह सिलसिला चलता। मुझे अभी तक उस सुंदरी का नाम तक मालूम न हो सका था, न ही वह मेरे नाम से वाकिफ थी। हम दोनों के बीच अभी भी अजनबियत की एक दीवार घड़ी थी, जिसे मैं गिराना चाहता था। आखिर एक रोज मेरे मस्तिष्क में एक तदबीर आयी। यद्यपि मेरी नजर में यह हरकत बड़ी बेकार और पुरानी-सी थी, पर इसके सिवा कोई और उपाय नहीं था। मैंने एक कागज़ पर छोटी-सी इबारत लिखी—'मुझे आपसे मुहब्बत है। आपका नाम क्या है?—आपका अख्तर।'

मैंने कागज को तह करके खिड़की का परदा हटाया, तो वह बालकनी में खड़ी थी। खिड़कियों में ग्रिल नहीं लगी थी, बल्कि शीशे और जाली के पट लगे हुए थे। मैंने इधर-उधर और नीचे-ऊपर देखने के बाद वह परचा उसकी तरफ फेंक दिया। फिर एक तरफ तेज़ी से हटकर परदे की ओट से धड़कते दिल से देखने लगा कि देखें, वह क्या करती है। उसने एक लम्हे के लिए इधर-उधर देखा, परचा उठाया और अपने कमरे में चली गयी।

थोड़ी देर गुज़र गयी। मैंने

बालकनी में झांका। वह दिखायी नहीं दी।

इंतज़ार के निर्मम लम्हे मेरे दिलो-दिमाग पर बुरी तरह सवार थे। वह सहसा बालकनी में चौदहवीं के चांद की तरह प्रकट हुई, तो उसके होंठों पर मुस्कान खिली थी और हाथ में कागज़ की एक गोली थी। मेरे जेहन में उस समय से कशमकश जारी थी, जिस समय वह मेरा परचा लेकर कमरे में गयी थी। तरह-तरह की आशंकाओं और अंदेशों के जहरीले सांपों ने डसना शुरू कर दिया था कि उसने मेरे खत का जवाब इनकार में दिया, तो क्या होगा। वैसे इस बात की उम्मीद नहीं थी। खैर, उसे देखकर मेरा दिल बहुत बुरी तरह धड़कने लगा। मैं कमरे में अपनी मौजूदगी का सुबूत देने के लिए खिड़की में आया और एक तरफ हट गया।

उसने कागज़ की गोली खिड़की के रास्ते कमरे में फेंक दी। मैंने उस गोली को उठाकर देखा, तो उसमें लिखा था—'अख्तर साहब, मुझे भी आपसे मुहब्बत है। मेरा नाम नर्गिस है।'

उस रोज से हम दोनों के बीच प्रेम-पत्रों का सिलसिला चल निकला। लगभग पंद्रह दिनों तक हम दोनों के बीच केवल पत्र-व्यवहार होता रहा। एक रोज़ मेरे घर वाले एक समारोह में गये हुए थे। उनकी वापसी रात दस-ग्यारह बजे से पहले मुमकिन नहीं थी। मैं घर पर स्टडी के खयाल से रुक गया था। शाम के समय नर्गिस रोज़ की तरह बालकनी में आयी, तो मैंने एक कागज़ पर उसे लिखा—'घरवाले एक दावत में गये हुए हैं। उनकी वापसी रात दस-ग्यारह बजे से पहले मुमकिन नहीं है। तुम थोड़ी देर के लिए आ जाओ। तुमसे बात करने और तुम्हें करीब से देखने को दिल तरस रहा है।'

मैंने उस कागज़ की गोली बनाकर बालकनी में फेंक दी। वह उसे उठाकर कमरे में चली गयी। फिर उसने कमरे का दरवाज़ा बंद कर लिया। मैं दस-बारह मिनट तक अपने कमरे की खिड़की में खड़ा रहा। न तो कमरे का दरवाज़ा खुला, न ही वह बालकनी में आयी। मैं निराश हो गया। उसे शायद मेरी बात अप्रिय लगी थी। मुझसे शायद तन्हाई में मुलाकात करते हुए डरती थी कि कहीं मैं बहक न जाऊं।

थोड़ी देर बाद दरवाज़े पर दस्तक हुई। मैं समझा कि पड़ोस से कोई चीज़ मांगने आया है। मैंने दरवाज़ा खोला, तो मुझे यकीन नहीं आया। नर्गिस दरवाजे पर खड़ी थी। मैंने एक तरफ हटकर उसे अंदर आने का रास्ता दिया। वह लजाती हुई मेरे करीब से गुज़रकर अंदर दाखिल हुई, तो मेरा वजूद महक उठा। दिल बुरी तरह धड़कने लगा। मैं दरवाज़ा बंद करके उसे ड्राइंगरूम में ले आया। दरवाज़े और खिड़कियां इस तरह से बंद कर दीं, कि उसके फ्लैट वालों को कुछ नज़र न आ सके।

नर्गिस करीब एक घंटे तक बैठी रही। पहले तो हम दोनों के बीच रस्मी बातें हुईं। प्रेम-भरी बातों का सिलसिला चलता रहा। संयोगवश छह-सात दिन के बाद फिर घरवाले किसी दावत में गये, तो फिर मुलाकात हुई।

कुछ दिनों बाद हम दोनों ने सफारी पार्क में मिलने और तफरीह का प्रोग्राम बनाया। वह ठीक समय पर सफारी पार्क पहुंच गयी। हम दोनों एकांत में जा बैठे। बहुत देर तक वहां बैठे प्रेमभरी बातें करते रहे थे। फिर चाय पीने के खयाल से उस एकांत से निकलकर रेस्तरां की तरफ बढ़े। पहली बार हम खुली फ़िज़ा में मिले थे। जब हम रेस्तरां के करीब पहुंचे, तो नर्गिस ठिठक कर रुक गयी। उसका चेहरा सफेद पड़ता चला गया। मैंने घबराकर पूछा, "क्या हुआ?"

"भाईजान!" उसने सामने की तरफ इशारा किया। उसकी आवाज़ गले में फंसी हुई थी।

मैंने उसी दिशा में देखा। उसका भाई एक मेज़ पर एक लड़की के साथ बैठा हुआ चाय पी रहा था। उस समय वह बहुत शोख और खुश दिखाई दे रहा था, चहक रहा था। उसके सामने बैठी हुई लड़की, जिसका चेहरा दिखाई नहीं दे रहा था, वह उसकी आंखों में झांक रही थी। उसकी पीठ मेरी तरफ थी। उनकी गतिविधियां, उनकी उन्मत्तता और उनकी खुशी बताये दे रही थी कि यह उनकी पहली मुलाकात नहीं है। जब लड़की ने अपने चेहरे का रुख दायीं ओर किया, तो मैं उछल पड़ा। नफरत और गुस्से से रगों में लहू उबलने लगा। एक भाई की गैरत जाग उठी। वह नाज़िया थी। मेरी बहन इतनी गिर जायेगी, मैंने सोचा भी नहीं था।

'जलील...कमीनी...।' मैंने बड़बड़ाते हुए जमीन पर से पत्थर उठा लिया। उस समय मुझे कुछ सुझाई नहीं दे रहा था।

जब मैं उसकी तरफ बढ़ने लगा, तो नर्गिस ने मेरा हाथ पकड़ लिया, "क्या बात है?"

"तुम देख नहीं रही हो, तुम्हारा भाई मेरी बहन के साथ प्यार की पेंगें बढ़ा रहा है," मैंने उत्तेजित हो कर कहा, "मेरी गैरत कैसे बरदाश्त कर सकती है कि मेरी बहन..."

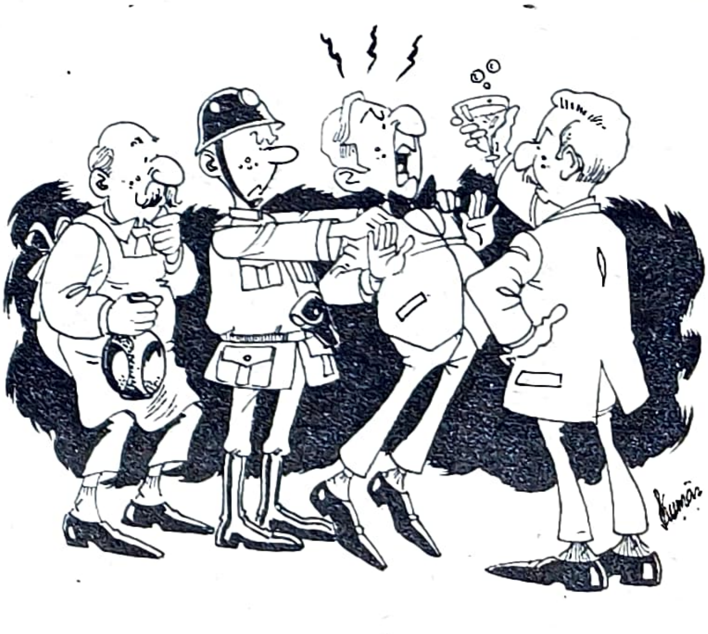
"मगर मैं भी तो उसकी बहन हूं," नर्गिस बोली, "मुझे तुम्हारे साथ देखकर उसकी गैरत भी जोश में आ गयी तो...चलो, पत्थर फेंक दो...घर चलो।"

•

प्रस्तुति : सुरजीत

(चित्रांकन चित्रकार की कल्पना से)

शराब न पीना भी अपराध



अनोखे अपराध तथा अद्भुत दण्ड संसार को चकित करते रहे हैं। किन्तु जिस अपराध की चर्चा हो रही है, उसे सुन कर शायद न तो आप दण्ड को दण्ड मानेंगे और सजा सुन कर तो दांतों तले उंगली दबा लेंगे। ब्रिटिश-फौज की ८४वीं पलटन का सिपाही जान विलसन भी खूब था। उस पर ऐसे विद्रोह का मुकदमा चला, जैसा आज तक न तो किसी सैनिक पर चला है, न संभावना है। उस पर अभियोग था कि उसने रोज के राशन में मिलने वाली रम लेने से मना कर दिया था। भले ही रम पीने की चीज हो, और पानी की जगह पी ली जाती हो। पर इनकारी तो विद्रोह ही है। फौजी अनुशासन बिगड़ता है।

नवंबर १८१५ में बंगलौर में फौजी अदालत में उसका कोर्ट-मार्शल हुआ। उसने लाख कहा, मैं एकदम नहीं पीता। न पीऊंगा तो कौन गुनाह हो जायेगा। पर उसकी एक न सुनी गयी। उसे गोली मार दी गयी। विल्सन को बंगलौर के ही अग्राम कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया। उसकी समाधि पर एक शिला-लेख भी अंकित है।

—डा० शिवनंदन कपूर

आतंकवादी सतराना : किस्सा खत्म हुआ

–महेन्द्र निगम



सतराना : बुरे आदमी का बुरा अंत



अजय कुमार तिवारी : फर्ज के लिए शहीद

पुलिस की गोलियों ने सतराना का अन्त करके उसका अध्याय तो समाप्त कर दिया है, मगर उसके सहयोगी अभी भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश में विचरण कर रहे हैं। जब तक उनका अन्त नहीं होता, सहारनपुर और आसपास के जनपदों में आतंकवाद की वारदातें होती रहेंगी

खबर वाकई बहुत महत्वपूर्ण थी, तुरन्त कार्यवाही भी आवश्यक थी। अतः मुखबिर के जाते ही इंसपेक्टर दिवाकर उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने ड्राइवर को बुलवाया। जीप में बैठते ही उन्होंने कहा, "सी०ओ० साहब के पास चलो।"

आफिस का टाइम हुआ नहीं था, इसलिए ड्राइवर दिवाकर को क्षेत्राधिकारी महेन्द्र प्रताप सिंह के आवास पर ले गया। महेन्द्र प्रताप तैयार हो चुके थे। दिवाकर ने उनसे कहा, "सर, सतराना के बारे में सूचना मिली है। वह रघुनाथपुर गांव में ठहरा है।"

सतराना का नाम सुन महेन्द्र प्रताप भी चौंक पड़े। बोले, "खबर तो पक्की है?"

"जी सर," दिवाकर ने सिर हिलाया, "हमें जल्द ही कुछ करना चाहिए, वरना सतराना हमारे हाथ नहीं लगेगा।"

"ठीक है।" महेन्द्र प्रताप ने कहा, फिर उन्होंने पुलिस अधीक्षक बहराइच डी०एल० रत्नम को फोन मिलाया। महेन्द्र प्रताप ने उन्हें भी सतराना की सूचना से अवगत करवाया। डी०एल० रत्नम ने कहा, "आप लोग वहीं रुकें, मैं आ रहा हूं, फिर हम तय करेंगे कि कैसे और क्या करना है।"

उस दिन तारीख थी, ११ मार्च १९९८।

आधे घंटे बाद ही क्षेत्राधिकारी महेन्द्र प्रताप के आवास पर पुलिस अधिकारियों की भीड़ बढ़ने लगी। थाना रूपईडीहा, मोतीपुर, मुर्तिहा के प्रभारी मय फोर्स के आ पहुंचे। तीसवीं बटालियन पी०ए०सी० के कम्पनी कमांडर सोहराब खां भी पी०ए०सी० के जवानों के साथ पहुंच गये। दरअसल पुलिस अधीक्षक डी०एल० रत्नम ने इन सबको शीघ्र ही क्षेत्राधिकारी महेन्द्र प्रताप के आवास पर पहुंचने का आदेश दिया था, वह स्वयं भी वक्त पर वहां पहुंच गये। फिर पुलिस अधिकारियों की बैठक शुरू हुई।

जिस सतराना के लिए पूरे बहराइच जनपद की पुलिस सक्रिय हो उठी थी, वह कोई मामूली अपराधी नहीं, खालिस्तान कमाण्डो फोर्स का नम्बर एक का खूंखार आतंकवादी था। उसके कई नाम थे। कोई उसे करनैल सिंह कहता था, तो कोई उसे जरनैल सिंह कहता था। वह पटियाला (पंजाब) जनपद के सतराना गांव का निवासी था, इसलिए उसके नाम के साथ सतराना भी जुड़ा था।

पंजाब में जब आतंकवाद की चिंगारी भड़की, तो सतराना भी उस आग में कूद पड़ा। वह तेज-तर्रार और दबंग था ही, अपने दुस्साहस के कारण वह आतंकवाद की बागडोर संभालने वालों की निगाह में भी जल्दी ही चढ़ गया। वह भिण्डरावाला का दाहिना हाथ बन गया। भिण्डरावाला सतराना पर अटूट विश्वास करता था। सतराना चौबीस घंटे उसके साथ

रहता था। यहां तक की भिण्डरावाला की कार भी वही ड्राइव करता था।

भिण्डरावाला की मौत के बाद सतराना खुद को असुरक्षित महसूस करने लगा था। अतः वह हिन्दुस्तान छोड़, कनाडा भाग गया। वहीं उसका संपर्क पाकिस्तान की खुफिया एजेन्सी आई०एस०आई० से हुआ। आई०एस०आई० ने उसे प्रशिक्षित कर पुनः भारत भेजा, तो उसने पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में तहलका मचा दिया। दर्जनों हत्या, लूट और अपहरण की वारदातों को सतराना ने अंजाम दिया। सतराना के गिरोह में कुल साठ सदस्य थे। इनमें तीस सूचीबद्ध थे, शेष तीस आतंकवादी अनलिस्टेड थे—यानी उनके नाम पुलिस की सूची में नहीं थे।

वर्ष १६८८ में पटियाला के समाना थाने में सतराना के विरुद्ध हत्या का मुकदमा दर्ज हुआ था। उसी के दो माह बाद १६ अगस्त '८८ को उसके गिरोह ने पटरन थाना क्षेत्र में खून की होली खेली, अपहरण और लूट की कई वारदातें की। इससे पुलिस सक्रिय हुई। सतराना के कई साथी पुलिस मुठभेड़ में मारे गये। पुलिस के कसते शिकंजे से सतराना और उसके साथी घबरा गये। वे पंजाब छोड़कर हरियाणा भाग गये। हरियाणा में भी सतराना गिरोह खामोश नहीं बैठा। उसके विरुद्ध थाना सिटी कैथल में हत्या का मुकदमा कायम हुआ।

जल्दी ही हरियाणा से सतराना गिरोह पुनः पटियाला आ गया। वे यहां पुनः सक्रिय हो गये। सतराना का मुख्य धन्धा लूट और फिरौती था। अपहरण के बाद वह अपने शिकार से मोटी रकम वसूल करता था। उसके गिरोह के पास हथियारों का भी जखीरा था। ए०के० ४७ जैसे स्वचालित हथियार भी उसके पास थे। पंजाब पुलिस ने दोबारा सतराना पर शिकंजा कसा। धीरे-धीरे एक-एक करके उसके गिरोह के तीस सूचीबद्ध सदस्यों को पुलिस ने मार गिराया।

मजबूर हो वर्ष १६६२ में सतराना को पंजाब छोड़ना पड़ा। इस बार उसने उत्तर प्रदेश में शरण ली। उसके साथ चार खास सहयोगी भी थे। बख्शीश सिंह, दिलबाग सिंह, कुलवन्त सिंह और कुलदीप सिंह। वे चारों भी सतराना की तरह खूंखार थे।

सतराना का गिरोह सहारनपुर में ठहरा। वहां की पुलिस और लोगों की गतिविधियों का अध्ययन करने के लिए उसका गिरोह कुछ समय तक शांत रहा, फिर उन्होंने जनपद के रईसों की जानकारी एकत्र की, जिनसे वे धन-उगाही कर सकते थे।

सन १६६३ के प्रारम्भ से सतराना गिरोह सहारनपुर में सक्रिय हुआ। उसने २४ जनवरी को गंगोह थानान्तर्गत ग्राम ददनौर में दो सिक्खों को गोलियों से भून डाला। इस घटना



हरभजन सिंह



दिलबाग सिंह

के पीछे भूमि-विवाद था। सतराना के सहयोगी कुलवन्त सिंह के रिश्तेदार का अपनी ही बिरादरी के लोगों से जमीन का झगड़ा चल रहा था। अतः कुलवन्त सिंह के इशारे पर सतराना और उसके सहयोगियों ने विरोधी पक्ष के दो लोगों को मार गिराया था।

लगभग ६ माह बाद सतराना गिरोह ने दूसरी घटना को अंजाम दिया। १६ जुलाई १६६३ को सतराना ने देहात कोतवाली अंतर्गत अंबाला रोड स्थित गगन ढाबे के मालिक रविन्द्र पाल सिंह उर्फ टिंकू का अपहरण कर लिया। बताया जाता है, मोटी रकम फिरौती में वसूलने के बाद ही टिंकू को छोड़ा गया। फिर सतराना और उसके साथी सहारनपुर जनपद में तेजी से सक्रिय हो गये।

२ सितंबर १६६३ को सतराना गिरोह की पुलिस से मुठभेड़ हुई। नकुड थाने के प्रभारी-निरीक्षक प्रीतम सिंह खेड़ा अफगान से अम्बे हटा पीर की ओर जा रहे थे कि चापर चिड़ी गांव के पास उनका सामना सतराना गिरोह से हो गया। प्रीतम सिंह ने आतंकवादियों को ललकारा, जवाब में सतराना और उसके साथियों ने गोली चला दी। प्रीतम सिंह ने और उनके सिपाहियों ने भी फायर किये। कुछ देर तक दोनों ओर से गोलियां बरसती रहीं, लेकिन पुलिस सतराना गिरोह पर काबू नहीं कर सकी, वे लोग गोलियां चलाते हुए भाग निकले।

इसके बाद सतराना ने अपहरण की एक वारदात को अंजाम दिया। ६ दिसंबर '६३ को कुलदीप सिंह और कुलवंत ने चापरचिड़ो गांव के योगेश कुमार का अपहरण कर लिया। साथ ही उनका स्कूटर भी छीन लिया। इस पकड़ में सतराना ने कितनी रकम फिरौती में वसूली, इसकी जानकारी तो पुलिस को नहीं हुई, मगर पुलिस का मानना है कि लाखों का लेन-देन हुआ था।

सतराना और उसके साथी अपने को सुधारवादी सिख बताते थे। अतः वे गंगोह थाना क्षेत्र के ग्राम दैदनोर गुरुद्वारे के ग्रन्थी मेहर सिंह और उनकी पत्नी चरण कौर से क्षुब्ध हो गये। उन्हें संदेह था कि मेहर सिंह और उनकी पत्नी चरण कौर गुरुद्वारे में मांस-मदिरा का सेवन करवाते थे। १६ जनवरी '६४ को सतराना गिरोह ने मेहर सिंह और चरण कौर को उनके घर के पास एके४७ रायफल से भून डाला।

पुलिस ने सतराना गिरोह की धर-पकड़ के प्रयास तेज किये, मगर उसकी कोशिशें नाकाम रहीं। उधर सतराना ने १४ फरवरी '६४ की शाम नकुड थानान्तर्गत खेड़ा अफगान के जंगल में गुरदयाल सिंह, मक्खन सिंह, जोगेन्द्र सिंह व सुखविन्दर सिंह को मौत के घाट उतार दिया।

इस बीच पुलिस को चकमा देने के लिए सतराना ने एक और तरकीब सोची। उसका कार्य क्षेत्र सहारनपुर ही था, मगर उसने अपना ठिकाना कहीं और बनाने की सोची। इसके लिए उसने बहराइच जनपद को चुना। १६६४ में ही सतराना नानपारा (बहराइच) आया। यहां ग्राम नवीनगर मोहरनिया में मटेरा निवासी राजकिशोर साहू से उसने १२ एकड़ जमीन खरीदी। साथ ही नवीनगर के गरीबे नामक व्यक्ति से भी उसने १७ बीघे जमीन खरीदी। ये जमीनें उसने मिल्कियत सिंह व गुरुदयाल के नाम से क्रय की थीं। फिर उसने जमीन को फार्म हाउस में तब्दील कर दिया।

सतराना बहुत होशियार था। उसकी असलियत क्या थी, इसका आभास उसने नानपारा में किसी को नहीं होने दिया। गांववालों के सामने उसने सच्चे धर्मभीरू सिख के रूप में अपनी छवि पेश की। उसके मृदुल व्यवहार ने जल्द ही गांववालों का मन जीत लिया। गांववाले उसे पापाजी कहते थे। गरीबों की मदद करने में भी वह आगे रहता था। धीरे-धीरे सतराना ने पुलिसवालों से भी दोस्ती गांठ ली। उसके घर महफिलें जमने लगीं। पुलिसवाले भी दावतें उड़ाने आते थे। सतराना गांव में दिल भी लगा बैठा। उसे मोहरनिया निवासी लोटन यादव की पुत्री घुमनी से इश्क हो गया था।

सतराना का भेद न खुलने पाये, इसलिए उसने बहराइच में किसी घटना को अंजाम नहीं दिया। वह कुछ समय के लिए गांव से गायब होता

था। सहारनपुर में अपराध करता था, फिर वापस नानपारा लौट आता था। वह कहां जाता था, क्या करता था, इसका किसी को गुमान ही नहीं होता था।

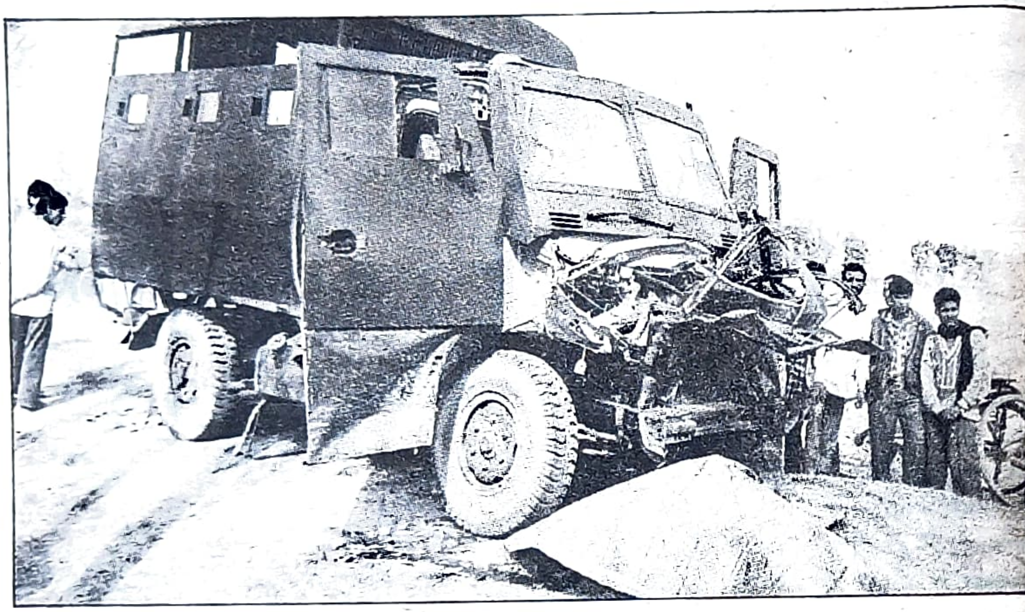
२ अक्टूबर १९९४ को सतराना गिरोह ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में दहला देनेवाली घटना को अंजाम दिया। उन दिनों सतराना गिरोह सरसावा थाना क्षेत्र के अंपलाना गांव में सरदार प्रीतम सिंह के घर ठहरा था। इसकी भनक सरसावा थानाध्यक्ष इस्लामुलहक को लग गयी। इस्लामुलहक ने दल-बल सहित प्रीतम सिंह के घर धावा बोल दिया। पुलिस ने आतंकवादियों को



बख्शीश सिंह



कुलवंत सिंह



बम-विस्फोट से उड़ायी गयी पुलिस की गाड़ी

ललकारा। वे तत्काल हरकत में आ गये। उन्होंने पुलिस पर गोलियां बरसानी शुरू कर दी। पुलिस ने भी पोजीशन लेकर फायरिंग चालू कर दी। इस मुठभेड़ में थानाध्यक्ष इस्लामुलहक आतंकवादियों की गोली का शिकार हो गये। सिपाही पुष्पेन्द्र और प्रीतम सिंह के पिता दिलीप सिंह बुरी तरह जख्मी हुए थे।

इसी घटना के बाद नकुड रोड स्थित ईट-भट्ठा मालिक उमेश गोयल से सतराना गिरोह ने मोटी रकम मांगी। उमेश गोयल ने रुपया देने से इंकार कर दिया, तो आतंकवादी क्षुब्ध हो गये। उन्होंने उमेश गोयल की हत्या कर दी।

१७ दिसंबर '९४ को नकुड थानान्तर्गत जगैता गुर्जर गांव निवासी हरिश्चन्द्र गुप्ता का सतराना ने अपहरण कर लिया और उनकी फिरौती के लिए तीन लाख रुपये मांगे। हरिश्चन्द्र गुप्ता का परिवार घबरा गया। उन्होंने तीन लाख रुपये दे दिये। फलस्वरूप सतराना गिरोह ने उन्हें छोड़ दिया।

इसी के एक माह बाद सतराना ददनौर के यशपाल गुप्ता को अगवा करने पहुंचा। आतंकवादियों के आने की खबर गांववालों को लग गयी, लेकिन निहत्थे गांववाले आतंकवादियों की एके ४७ के सामने टिक नहीं सके। सतराना गिरोह यशपाल गुप्ता का अपहरण करने में कामयाब हो गया। फिर उन्हें फिरौती देने पर ही उग्रवादियों के चंगुल से मुक्ति मिली।

सतराना गिरोह ने चण्डीगढ़-मेरठ जाने वाली एक निजी बस में भी विस्फोट किया था, जिसमें ८ लोगों की जान चली गयी और ९ लोग बुरी तरह जख्मी हो गये थे।

वर्ष १९९५ के दिसंबर की १२ तारीख थी। उस शाम सतराना गिरोह सहारनपुर के नकुड थानान्तर्गत अफगान खेड़ा में था। लगभग सात बजे एक मारुति कार उधर से गुजरी। कार में जैन बाग, सहारनपुर निवासी संजय जैन थे। आतंकवादियों ने संजय जैन की कार को रुकने का संकेत दिया। जैसे ही गाड़ी धीमी हुई, आतंकवादी उस पर गोली बरसाने लगे। गोलीबारी में संजय जैन गंभीर रूप से घायल हो गये। उसके बाद सतराना गिरोह ने स्कूटर सवार को लूटा, फिर उसी रात उन लोगों ने उस ओर से गुजर रहे सहारनपुर निवासी योगेश मित्तल का अपहरण कर लिया। छह दिन तक योगेश मित्तल सतराना के कब्जे में रहे, फिर १८ दिसंबर को वह मोटी फिरौती देकर छूटे।

वर्ष १९९६ की शुरुआत की बात है। सतराना का एक भांजा पंजाब पुलिस के हत्थे चढ़ गया। पूछताछ में उसने सतराना के विषय में भी काफी कुछ उगल दिया। पंजाब पुलिस को इस बात की भी जानकारी मिल गयी कि सतराना नानपारा, बहराइच में था।

फरवरी माह में पटियाला से एक पुलिस-दल नानपारा आया। पुलिस दल ने नानपारा पुलिस से संपर्क किया। जब नानपारा पुलिस को सतराना के संबंध में पता चला तो उसे यकीन ही नहीं हुआ। उल्टे वह पंजाब पुलिस को ही आतंकवादी समझ बैठी। पंजाब से आयी पुलिस टीम से लम्बी पूछताछ हुई। तमाम उल्टे-सीधे सवाल पूछे गये। पंजाब पुलिस के अधिकारी उलझन में फंस गये। उन्होंने बहुत सफाई दी। काफी हील-हुज्जत के बाद नानपारा पुलिस ने पंजाब के पुलिस अधिकारियों से संपर्क किया। उनसे बात होने पर उन्हें विश्वास हुआ कि पंजाब से आया दल आतंकवादियों का गिरोह नहीं था।

पंजाब पुलिस के साथ नानपारा पुलिस ने सतराना के ठिकाने पर छापा मारा, लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी। सतराना को इसकी भनक लग गयी। वह नौ दो ग्यारह हो गया। पुलिस के हाथ कुछ नहीं लगा। जब गांववालों को सतराना की असलियत का पता लगा, तो सब हतप्रभ रह गये। उनके बीच इतना खूंखार आतंकवादी रह रहा था, इसका किसी को गुमान भी नहीं था।

उसके बाद सतराना काफी समय तक नानपारा में नजर नहीं आया।

२१ मार्च '९६ को सतराना ने बहराइच के सुजौली थाना क्षेत्र में कौड़ियाला के जंगल में एक घटना को अंजाम दिया। उसके हत्थे सशस्त्र

सिपाही ऋषिकेश यादव चढ़ गया। था। सतराना बहराइच पुलिस से क्षुब्ध हो ही गया था। लिहाजा उसने ऋषिकेश यादव की हत्या करके उसकी सरकारी राइफल और कारतूस लूट लिये। फिर वह सहारनपुर भाग गया। एक सप्ताह बाद सहारनपुर में भी उसका सामना पुलिस से हो गया। २७ मार्च की रात गंगोह अम्बेहटा मार्ग पर उसके गिरोह की पुलिस से मुठभेड़ हुई। काफी देर तक दोनों ओर से गोलियां चलीं, लेकिन सतराना गिरोह जान बचाकर भागने में कामयाब हो गया।

पुलिस का दबाव बढ़ता जा रहा था, इसलिए सतराना गिरोह कुछ महीने खामोश बैठ गया, ताकि पुलिस की सरगर्मी ठंडी पड़ जाये। फिर १३ जुलाई '९६ को आतंकवादियों ने दिल दहला देनेवाली घटना को अंजाम दिया। उन्होंने अंबाला रोड पर एकता ट्रेवल्स की एक प्राइवेट बस में बम-विस्फोट किया। इस विस्फोट में लगभग एक दर्जन यात्रियों की मौत हो गयी और दो दर्जन से अधिक लोग घायल हुए।

१२ अगस्त को सतराना बहराइच में प्रकट हुआ। वह अपने गांव मोहरनिया आया था। रात करीब आठ बजे सतराना ने गांव के लोगों को पंचायत के लिए बुलवाया। गांववाले जान चुके थे कि सतराना आतंकवादी था, इसलिए कोई आने को राजी नहीं हुआ। तब सतराना ने समझाया कि पुलिस ने उस पर झूठा इल्जाम लगाया था, वह गांववालों के सामने अपनी असलियत बयान करना चाहता था। सतराना के बहुत जोर देने पर गांववाले राजी हुए। वे पंचायत के लिए इकट्ठा हुए, लेकिन बात शुरू होने से पहले सतराना अपने असली रूप में आ गया। उसने अपनी एके४७ राइफल तानते हुए कहा, "मेरे खिलाफ साजिश में तुम लोगों की हिस्सेदारी भी रही है। इसकी कीमत तुम लोगों को अपनी जान देकर चुकानी पड़ेगी।"

गांववाले भय से थर-थर कांपने लगे। एक-दो लोग हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाये भी, "पापाजी, हमारी जान मत लीजिए। आपको गलत-फहमी हुई है। हमने पुलिस को कुछ नहीं बताया।"

सतराना पिघला नहीं। उसने पांच लोगों को लाइन में खड़ा करके गोलियों से छलनी कर डाला। चार व्यक्ति बुरी तरह जख्मी हुए। उसी रात सतराना अपनी प्रेमिका घुमनी को लेकर फरार हो गया।

अब मोहरनिया में रहना मुनासिब नहीं था, इसलिए सतराना ने रिसिया थानान्तर्गत ग्राम गेंदासिंह पुरवा को अपना अड्डा बनाया। इसके बावजूद वह अपने फार्म हाउस की देखभाल के लिए मोहरनिया आता-जाता रहता था। बहराइच पुलिस को सतराना की तलाश जरूर थी, मगर उसकी कार्यवाही की गति बहुत धीमी थी, इसलिए सतराना बेखौफ घूम रहा था।

१२ दिसंबर १९९६ को सतराना अपने गिरोह के साथ नानपारा मंडी आया। उन लोगों ने सरेशाम युवा व्यवसायी राजेश छापड़िया का अपहरण कर लिया। पुलिस को इस घटना की सूचना भी मिली, मगर वह लाठी पटकने के सिवा कुछ कर न सकी। मोटी फिरौती मिलने के बाद ही सतराना ने राजेश छापड़िया को मुक्त किया।

सतराना में एक खासियत और भी थी। वह सिखों के करीब ज्यादा नहीं रहता था, क्योंकि उसे भय था कि सिखों के बीच रहने से उसका भेद जल्दी खुल सकता था। इसीलिए वह दूसरी जाति के लोगों से ही ज्यादा संबंध रखता था।

मोहरनिया का ढिल्लर यादव सतराना के काफी करीब था। सतराना ढिल्लर पर विश्वास भी बहुत करता था। सितंबर '९७ में उसने ढिल्लर यादव को रघुनाथपुर गांव में तीन कमरे का पक्का मकान बनवा दिया। इस मकान में एक गुप्त बंकर भी बनवाया गया। यह बंकर सतराना ने अपने लिए बनवाया था। इसी बीच उसने नानपारा थाने के सिपाही विश्राम यादव को भी मौत के घाट उतार दिया। बताया जाता है, अपनी कमजोरी छिपाने के लिए पुलिस ने इस मामले को दबा दिया। यह प्रचारित कर दिया गया कि विश्राम यादव की हत्या प्रेम-प्रसंग के कारण हुई थी। मोहरनिया में सतराना की बाबूराम यादव से भी रंजिश थी। सतराना ने गला रेतकर उसकी भी हत्या कर दी।

सतराना के पाप का घड़ा भर रहा था। आशिक मिजाजी उसके लिए घातक सिद्ध हुई। गांव में ही सतराना का दिल एक युवती पर आ गया। सतराना ने उसकी इज्जत से खेलने की कोशिश की, मगर वह कामयाब नहीं हो सका। इसके बाद से ही उस परिवार से सतराना की ठन गयी। युवती के परिवारवालों ने पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज करवा दी थी।

११ मार्च '९८ को सतराना रघुनाथपुर में ठहरा था। मुखबिर के जरिये इसकी खबर नानपारा कोतवाली के प्रभारी-निरीक्षक दिवाकर को लग गयी। उन्होंने तत्काल अपने उच्चाधिकारियों को सूचित किया। क्षेत्राधिकारी नान-पारा महेन्द्र प्रताप के आवास पर पुलिस अधीक्षक बहराइच डी०एल० रत्नम ने बैठक की, जिसमें एक ठोस रणनीति तैयार की गयी। तत्पश्चात पुलिस पार्टी और पी०ए०सी० के जवान रघुनाथपुर की ओर रवाना हो गये।

सूरज आसमान पर चढ़ने लगा था। पुलिस अधीक्षक डी०एल० रत्नम ने तीन पुलिस पार्टियां बनायी थीं। एक टीम का नेतृत्व क्षेत्राधिकारी महेन्द्र प्रताप सिंह को करना था। उनके दल में इंसपेक्टर दिवाकर उपनिरीक्षक संजय सिंह, इंसपेक्टर एल०एस० सोलंकी पी०ए०सी० कम्पनी कमाण्डर सोहराब खां, सिपाही अजय तिवारी, संजय शुक्ला आदि थे। दूसरी पार्टी की कमान क्षेत्राधिकारी रिसिया शिवप्रसाद उपाध्याय ने संभाली थी। उनके साथ डेढ़ सेक्शन पी०ए०सी० और थानाध्यक्ष रूपईडीहा श्यामलाल पाण्डेय व सिपाही थे। तीसरे दल का नेतृत्व स्वयं पुलिस अधीक्षक डी०एल० रत्नम कर रहे थे।

कृपाराम यादव उर्फ ढिल्लर यादव के जिस मकान में सतराना ठहरा था, वह रघुनाथपुर गांव के उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित था। उसके आसपास अच्छी आबादी थी। पुलिस अधीक्षक ने गांव को दो ओर से अंग्रेजी अक्षर 'एल' आकार में घेरने की योजना बनायी थी। किस दल को किस ओर से आगे बढ़ना था, यह भी तय हो गया था। साथ ही इस बात का भी विशेष ध्यान रखना था कि मुठभेड़ की चपेट में कोई गांववाला न आने पाये।

योजना के मुताबिक, पुलिस बल ने रघुनाथपुर गांव में प्रवेश किया। पुलिस ने ढिल्लर यादव के घर को घेर लिया। सबने अपनी-अपनी पोजीशन भी ले ली। क्षेत्राधिकारी महेन्द्र प्रताप सिंह उस मकान के उत्तर-दक्षिण में थे। क्षेत्राधिकारी शिवप्रसाद उपाध्याय ने पूर्वी-पश्चिमी क्षेत्र मे पोजीशन ले ली। इंसपेक्टर दिवाकर और उनके सहयोगी पुलिसकर्मी ढिल्लर यादव के मकान से कुछ दूर स्थित दो कच्चे मकानों के बीच गली में मोर्चा संभालकर बैठ गये। पुलिस अधीक्षक डी०एल० रत्नम ने ए०के० ४७ राइफल ले कुंए की आड़ में पोजीशन ले ली। उनके साथ उनका रीडर उदयराज भी था।

जब सबने तैयारी कर ली, तब इंसपेक्टर दिवाकर ने लाउडहेलर पर सतराना को चेतावनी दी, "सतराना, मकान को पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया है। तुम्हारी भलाई इसी में है कि अपने आपको कानून के हवाले कर दो, वरना बेमौत मारे जाओगे।"

पुलिस पार्टी ढिल्लर यादव के मकान को टकटकी लगाये देख रही थी। चेतावनी के बाद भी उस ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। सन्नाटा छाया रहा।

दिवाकर ने लाउडहेलर पर दो-तीन बार सतराना को चेतावनी दी, मगर कोई हरकत नहीं हुई। तब क्षेत्राधिकारी महेन्द्र प्रताप सिंह ने सिपाही अजय तिवारी से सीढ़ी लाने के लिए कहा। अजय तिवारी सीढ़ी लेने आबादी वाले क्षेत्र की ओर बढ़ा। उप-निरीक्षक संजय सिंह और कंपनी कमाण्डर पीएसी सहराब खां भी सीढ़ी लेने गांव के घरों की ओर चल दिये।

लगभग दस मिनट में सिपाही अजय तिवारी सीढ़ी लेकर आ गया। संजय सिंह और सोहराब खां भी लौट आये। सतराना के मकान के पिछले हिस्से पर सीढ़ी लगा दी गयी। अजय तिवारी, संजय सिंह और सोहराब खां सीढ़ी पर चढ़ने की सोच ही रहे थे, तभी अचानक मकान के भीतर से

गोलियां चलने लगीं। सिपाही अजय तिवारी को गोली लग गयी। अजय तिवारी, सोहराब खां और संजय सिंह भाग खड़े हुए। अजय तिवारी खेत की मेड़ के पास जाकर लेट गया। जवाब में पुलिस ने भी गोलियां बरसानी शुरू कर दी।

इसी बीच सतराना मकान के पूर्वी दरवाजे से निकला। उसके हाथ में एके ४७ राइफल थी। वह उत्तरी दिशा को तेजी से भागा, क्षेत्राधिकारी महेन्द्र प्रताप सिंह उस पर फायर झोंकने लगे। सतराना को गोलियां तो लगी, मगर वह गिरा नहीं। मकान की दीवार की आड़ लेकर उसने भी धुआंधार फायरिंग शुरू कर दी।

एसपी डी०एल० रत्नम फोर्स का हौसला बढ़ा रहे थे, 'शाबाश, बचकर भागने न पाये।' सतराना भी वाहे गुरु का नारा लगाकर पुलिस पर गोलियां बरसा रहा था। उसकी गोलियों से कंपनी कमाण्डर सोहराब खां और सिपाही जयप्रकाश सिंह भी घायल हो गये। अचानक सतराना की ओर से गोलियां चलनी बंद हो गयीं। पुलिस अधिकारी चौंके। उनके मन में शंका उपजी कि कहीं सतराना हलाक तो नहीं हो गया, मगर अगले ही क्षण 'वाहे गुरु' चिल्लाता हुआ सतराना उस ओर लपका, जिधर सोहराब खां और घायल सिपाही जय प्रकाश सिंह की राइफलें पड़ी थीं। दरअसल फायर करते-करते सतराना की राइफल की मैगजीन फंस गयी थी। इसी लिए उसने सोहराब खां और जयप्रकाश सिंह की राइफलें उठायीं, मगर उनमें भी मैगजीन नहीं थी। दोनों राइफलें वहीं पटककर सतराना गांव की ओर भागा, लेकिन कुछ दूर जाकर वह गिर पड़ा।

सतराना के गिरने के कुछ देर बाद पुलिस अधिकारी धीमे कदमों से उसकी ओर बढ़े। सब सतर्क थे। उन्हें सन्देह था कि कहीं सतराना जीवित न हो, पुलिस के करीब पहुंचते ही वह गोलियां बरसाने लगे, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। सतराना के शरीर में कोई हरकत नहीं हुई। वह लहूलुहान पड़ा रहा। दरअसल उसका प्राणान्त हो चुका था।

पुलिस अधीक्षक डी०एल० रत्नम ने घायल जयप्रकाश सिंह और सोहराब खां को तत्काल अस्पताल भेजवाया। सिपाही अजय तिवारी की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। अतः उसका शव पुलिस लाइन भेजवा दिया गया। कंपनी कमांडर सोहराब खां भी जीवित नहीं बचे। अस्पताल पहुंचने से पहले ही उन्होंने भी दम तोड़ दिया था।

पुलिस ने घर की तलाशी ली। एक कमरे में प्लाईवुड तथा सनमाइका की बनी एक आलमारी कोने में खड़ी थी। उस आलमारी के निचलेवाले खाने को हटाते ही नीचे सुरंग-सी दिखाई पड़ी, जिसमें लकड़ी की एक सीढ़ी नीचे जाने के लिए लगी थी। प्रकाश की व्यवस्था करके पुलिस अधीक्षक के वाचक उदयराज सिंह, गनर रक्षाराम पाठक तथा इंसपेक्टर दिवाकर उस बंकर में उतरे। बंकर के अंदर पुलिस ने लगभग पांच किलो ग्राम विस्फोटक बरामद किया। एक तीन फुट लंबी संदिग्ध लैण्डमाइन्स में प्रयोग की जानेवाली डायनामाइट रॉड तथा बिजली के तार भी मिले। इसके अलावा ४० हजार ६५० रुपये नकद एक एके ४७ राइफल और उसके १०१ कारतूस भी बरामद हुए।

पुलिस ने सतराना का शव सीलकर पोस्टमार्टम हेतु भेजवा दिया। इसके साथ ही पंजाब पुलिस को सतराना के इनकाउन्टर की सूचना दे दी गयी। गुरदासपुर से एक पुलिस दल बहराइच आया। उसने सतराना के शव की शिनाख्त की। इसके पश्चात सतराना का अंतिम संस्कार कर दिया गया।

सतराना की मौत के ४८ घंटे के भीतर ही उसकी प्रेमिका घुमनी की भी हत्या हो गयी। घुमनी की हत्या किसने की, यह आज तक रहस्य बना हुआ है। घुमनी, सतराना के काफी करीब थी। उसका हर राज वह जानती थी। उसकी मौत के साथ ही सतराना के राज भी दफन हो गये। यदि वह जिन्दा पकड़ी जाती, तो शायद अनेक सनसनीखेज रहस्योद्घाटन होते।

उसकी मौत के साथ ही सतराना के राज भी दफन हो गये।

सतराना की मृत्यु से सबसे ज्यादा आहत हुए उसके आतंकवादी साथी। वे बौखला उठे थे।

२२ मार्च १९९८ को सतराना के साथी बख्शीश सिंह, दिलबाग सिंह और कुलवन्त सिंह ने सहारनपुर के गंगोह थानान्तर्गत ग्राम गांधीनगर में कहर बरपा दिया। उन्होंने वामपंथी नेता हरभजन सिंह, उनके पुत्र गुरदीप सिंह और उनकी संबंधी बालिका संदीप कौर को गोलियों से भून डाला। जब घटना की सूचना पुलिस को मिली तो थानाध्यक्ष गंगोह कुलदीप असवाल दल-बल सहित घटनास्थल की ओर रवाना हुए। आतंकवादी रास्ते से घात लगाकर बैठे थे। उन्होंने पुलिस की वैन को रिमोट बम से उड़ा दिया। इस हादसे में आठ पुलिसकर्मी गंभीर रूप से घायल हुए।

पुलिस की गोलियों ने सतराना का अन्त करके उसका अध्याय तो समाप्त कर दिया है, मगर उसके सहयोगी अभी भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश में विचरण कर रहे हैं। जब तक उनका अन्त नहीं होता, आतंकवाद की वारदातें होती रहेंगी।●

अनोखा नींबू



पिछले बरस मेरठ शहर के मीनाक्षीपुरम निवासी अरविन्द कुमार शर्मा एडवोकेट ने अपनी छोटी-सी बगिया में संभवतः विश्व का सबसे बड़ा नींबू पैदा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

दो वर्ष पहले अरविन्द कुमार शर्मा का एक मुवक्किल मुकदमा जीतने की खुशी में नाइजीरियन नींबू का पौधा उन्हें भेंट-स्वरूप दे गया था। इस पौधे की परवरिश में पूरा शर्मा परिवार लगा हुआ था।

कुछ ही अरसे बाद इस सात फुट ऊंचे नींबू के पेड़ पर छह किलो छह सौ ग्राम वजन का नींबू तैयार हो गया। जब यह नींबू पूर्ण रूप से पक गया, तो २५ दिसम्बर '९७ को तोड़कर प्रदर्शन हेतु रख दिया गया। इसे देखने के लिए लोगों का तांता लग गया था। मीडिया के जरिये इस अनोखे नींबू की चर्चा दूर-दूर तक फैल गयी। अंत में यह नींबू दिल्ली ले जाकर भाजपा के शीर्ष नेता अटल बिहारी बाजपेई को भेंट कर दिया गया।

—शादाब खान

सब-इंसपेक्टर आर० पी० पाण्डेय ने पटना के डाकबंगला चौक स्थित साड़ी की दुकान 'शकुन्तला' में बैठी उस औरत को गौर से देखा और फिर पूछा, "क्या नाम है आपका? रहती कहां हैं?"

"क्यों पूछ रहे हो यह सब?"

"मैडम! आपका परिचय जानना जरूरी है।"

"क्यों जरूरी है, यह बताए बिना मैं बात नहीं करूंगी।"

"तब तो आपको मेरे साथ पुलिस स्टेशन चलना होगा।"

"ह्वाट नानसेंस? पुलिस स्टेशन... और मैं?"

"जी हां, आप ही से कह रहा हूं।"

"लेकिन क्यों? मेरा कसूर क्या है?"

"यह सब आपको वहीं पता चलेगा।"

"मैं किसी सूरत में नहीं जाऊंगी।"

"बगैर वहां गये तुम्हारी खैरियत नहीं।" पाण्डेय ने 'आप' से 'तुम' पर उतरते हुए कहा।

"अदब से पेश आओ। मैं चाहूं तो तुम्हारी वर्दी उतरवा सकती हूं।"

"तुम्हें जो करना हो, बाद में करना। पहले पुलिस स्टेशन चलो।"

मौके की नजाकत भांपकर वह बोली, "अच्छा, मैं चलने को तैयार हूं।"

वह बाहर निकल आयी। उसके साथ एक नौजवान भी था। जैसे ही वह दुकान के निकट खड़ी भाड़े की मारुति की तरफ बढ़ी, पाण्डेय ने टोका, "उधर नहीं, पुलिस जिप्सी में बैठो।"

"नहीं, कारवाले को दिन भर का पैसा दे चुकी हूं, इसी से जाऊंगी।" कहती हुई वह सफेद मारुति कार की पिछली सीट पर बैठ गयी। तब सब-इंसपेक्टर पाण्डेय के साथ आरक्षी मंजू कुमारी भी उसी गाड़ी में सवार हो गयी। पुलिस के बाकी जवान और महिला के साथ दुकान में घुसे दो नवयुवकों में से एक पुलिस पेट्रोल कार में बैठ गये। इस हंगामे के दौरान

ठग-सुंदरी अनिता के कारनामे

शक्ल-सूरत हो, लोगों को प्रभावित करने की क्षमता हो, तो फिर तिजोरी में पैसा रखने की जगह भी कम पड़नी लगेगी। अनिता भी ऐसी ही ठग-सुंदरी थी

—रतीन्द्र नाथ

सहयोग : वंदना



अनिता और उसका पति रामकिशन तोकस

'शकुंतला' के बाहर जहां काफी भीड़ लग गयी थी, वहीं उस औरत के साथ दुकान में तशरीफ लानेवाला एक युवक मौका पाकर आहिस्ता से खिसक निकला था।

उस समय शाम के साढ़े चार बज रहे थे। यह घटना ६ फरवरी '९८ की है।

पांच मिनट में ही उस महिला के साथ पुलिस पार्टी कोतवाली पहुंच गयी। वहां नगर कोतवाल मोहम्मद हसनैन इंतजार कर रहे थे। थाने में पहुंचते ही वह महिला उनके सामने जाकर पूछने लगी, "मुझे पुलिस स्टेशन क्यों तलब किया गया है? मेरा जुर्म क्या है?"

"अभी बताता हूं।" कहते हुए इंसपेक्टर मोहम्मद हसनैन का इशारा पाकर आर० पी० पाण्डेय एक व्यक्ति को बगल के कमरे से बुला लाये। उस व्यक्ति पर नजर पड़ते ही उस औरत का चेहरा पीला पड़ गया। वह चीखने लगी, "तुम यहां? यह सब तुम्हारी वजह से हो रहा है? क्या दुकान से कपड़ा खरीदना जुर्म है? मैंने खरीदारी ही तो की है।"

"खरीदारी करना जुर्म नहीं है, मैडम। मगर धोखा देकर, बैंक के जाली कार्ड दिखाकर खरीदारी जुर्म है।" इंसपेक्टर हसनैन ने कहा।

अब तक कुछ और लोग आ खड़े हुए थे। वह महिला जिसे देखकर स्तब्ध रह गयी थी, वह 'शकुंतला' के मालिक अनिल टेकरीवाल थे। अनिल के पीछे खड़े थे शिवेश नारायण, अमित चाण्डक, अशोक चाण्डक एवं अरविंद कुमार सिंह। ये सभी व्यवसायी थे। अनिल टेकरीवाल ने ही पुलिस को सूचना दे दी।

अनिल टेकरीवाल का बयान इस प्रकार था, "पटना के न्यू डाकबंगला चौराहे से सटी मेरी दुकान 'शकुंतला' है। आज छह फरवरी की सुबह दस बजे मेरी दुकान खुल गयी। उसके बाद ग्राहक आते-जाते रहे और कारोबार चलता रहा। शाम के लगभग चार बजे दो युवकों के साथ एक औरत आयी और वे तीनों कपड़ा पसंद करने लगे। उन्हें मैंने तुरंत पहचान लिया। दरअसल, वे तीनों दिसंबर १९९६ में जाली क्रेडिट कार्डों पर मेरी दुकान से चार हजार रुपये के कपड़े और मेरे सामने एनपी सेंटर स्थित स्वीटी गारमेंट्स से तकरीबन ढाई हजार के वस्त्र ठग कर ले गये थे। उस वक्त मैं भुगतान वास्ते जब बैंक आफ बड़ौदा में पहुंचा, तो मुझे बताया गया कि नकली क्रेडिट कार्ड पर कपड़ा खरीदा गया था। इस बार भी उन तीनों ने पांच हजार के कपड़े पैक करवाये। फिर बैंक का क्रेडिट कार्ड दिया। बातों में फंसाकर मैं उन्हें रोके रहा। इसी दौरान स्वीटी गारमेंट्स के मालिक अरविंद कुमार सिंह को मैंने खबर भिजवायी। वे फौरन मेरी दुकान में आये। वे भी उन जालसाजों को भूले नहीं थे। तब टेलीफोन पर बैंक ऑफ



पुलिस स्टेशन में अनिता

बड़ौदा को इसकी सूचना दी गयी। बॉब कार्ड के प्रबंधक अवधेश प्रसाद ने मुझे कहा कि सुबह से अभी तक अनेक दुकानदारों को नकली क्रेडिट कार्डों के बल पर इन लोगों ने चूना लगा रखा है। अवधेश प्रसाद ने यथाशीघ्र पुलिस बुलवाने की सलाह दी।

"मैंने टेलीफोन द्वारा कोतवाली पुलिस स्टेशन को सूचना दी। पुलिस अधिकारी मेरी दुकान पर आ गये। तभी भीड़ का लाभ उठाकर उनमें से एक धीरे से चंपत हो गया। उधर बैंक मैनेजर ने कनक मंदिर ज्वेलर्स, बंगलोर सिल्क हाउस मार्केट एवं बंगलोर साड़ी हाउस मार्केट को भी टेलीफोन पर ठगों के विषय में सूचित कर दिया था। अतः इन दुकानों के मालिक शिवेश नारायण, अमित चाण्डक तथा अशोक चाण्डक मेरी दुकान में पहुंचे। उन्होंने ठगों पर निगाह पड़ते ही उन्हें पहचान लिया।"

अनिल टेकरीवाल के इस लिखित बयान के आधार पर नगर कोतवाल मोहम्मद हसनैन ने इस मामले की तफ्तीश सब-इंसपेक्टर आर०पी० पाण्डेय को सौंप दी।

कत्थई सलवार-सूट, सफेद दुपट्टा, माथे पर बिंदी और गले में हार धारण किये हुए, आकर्षक शक्ल-सूरत वाली उस महिला से आर० पी० पाण्डेय ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"जी...अनिता...ज्योति...लक्ष्मी...मंजू...।" उसने नजरें चुराते हुए बताया।

"एक साथ इतने नाम! इसका क्या मतलब?"

"सर, मेरा असली नाम अनिता त्यागी है। मगर प्यार से कोई मुझे ज्योति पुकारता है, तो कोई लक्ष्मी। मेरे कुछ फ्रेंड्स मुझे मंजू भी कहते हैं।"

"पिता का नाम?"

"डी०एन० त्यागी... दयानंद त्यागी।"

"करते क्या हैं?"

"नई दिल्ली के आर० के० पुरम पुलिस स्टेशन में सब-इंसपेक्टर हैं।"

"तुम क्या करती हो?"

"जी, मैं डाक्टर हूं।"

"झूठ, यह सरासर गलत है।"

"सर, मैं डाक्टर नहीं, नर्स हूं, नई दिल्ली स्थित डा० जे० एस० दुआ की क्लीनिक में।"

"तुम्हारे साथ यह कौन है?"

"ये मेरे पति हैं...रामकिशन तोकस।"

"क्या तुम्हारे पति भी इस जालसाजी में तुम्हारे पार्टनर हैं?"

विवेचना अधिकारी आर० पी० पाण्डेय के इस सवाल पर अनिता खामोश हो गयी। उसके चुप्पी साधते ही सब-इंसपेक्टर पाण्डेय रामकिशन तोकस की ओर मुखातिब हुए और उससे पूछा, "तुम कहां के रहनेवाले हो?"

"मुंद्रिकापुर, पुलिस स्टेशन बसंतविहार, नई दिल्ली।"

"पिता?"

"स्वर्गीय उमराव सिन्हा...वे व्यवसायी थे।"

"ठगी के कारोबार में कब से हो?"

"सर, मेरी तबीयत ठीक नहीं है। गुस्ताखी माफ, मेरे विषय में आपको जो कुछ भी पूछना है, मेरी पत्नी अनिता से पूछ लें।"

सब-इंसपेक्टर पाण्डेय तोकस के

रंग-ढंग से जान गये कि वह घबराया हुआ था और अस्वस्थ भी लग रहा था। उसकी आंखें बता रही थीं कि वह भयंकर नशेड़ी था। इसलिए पाण्डेय ने रामकिशन तोकस से बाद में पूछताछ करना मुनासिब समझा और अनिता की तरफ मुड़ गये। उन्होंने सवाल किया, "तुम पटना कब आयीं?"

"आज ही सुबह राजधानी एक्सप्रेस द्वारा दिल्ली से।"

"यहां तुम कहां ठहरी हो?"

"होटल सम्राट इंटरनेशनल में।"

सब-इंसपेक्टर पाण्डेय ने तत्काल होटल सम्राट में फोन मिलाया। वहां से उन्हें जवाब मिला कि अनिता या रामकिशन तोकस के नाम से कोई कमरा बुक नहीं है।

फोन पर यह सुनते ही सब-इंसपेक्टर पाण्डेय आपे से बाहर हो गये। वह अनिता पर बरस पड़े, "बहुत चालाक बनती हो तुम। सच बोल, कहां ठहरी है?"

"सर, हम रिपब्लिक होटल, एक्जीबिशन रोड के रूम नंबर दो सौ बारह में ठहरे हैं।"

यह सुनते ही आर०पी० पाण्डेय अनिता और तोकस को साथ लेकर पुलिस पेट्रोल कार से होटल रिपब्लिक रवाना हुए। उन्हें अनुमान था कि होटल के उस कमरे की तलाशी लेने पर कई महत्वपूर्ण सुराग मिलेंगे। हुआ भी यही।

पुलिस टीम जब रिपब्लिक होटल के रूम नंबर दो सौ बारह के सामने पहुंची, तो वह भीतर से बंद था। इससे पाण्डेय भांप गये कि अंदर निश्चित रूप से वही युवक होगा, जो 'शकुंतला' से खिसक लेने में कामयाब हो गया था। पाण्डेय ने दस्तक दी। दरवाजा खुलते ही पाण्डेय की आंखें फैल गयीं।

वहां एक नवयुवक मौजूद था। पुलिस के पूछने पर उसने अपना नाम अरुण ठाकुर बताया। पुलिस ने अरुण ठाकुर को गिरफ्तार कर लिया और कमरे की तलाशी ली। वहां कई क्रेडिट कार्ड मिले। वे कार्ड लखपत सिंह, सी०बी० विज्ञान, दीपक गुप्ता, अनिता, रामकिशन तोकस तथा आर० के० चौधरी के नाम से थे। स्टैण्डर्ड चार्टर्ड बैंक, दिल्ली का एकाउंट कार्ड तथा दिल्ली के आंध्रा बैंक की चेकबुक भी बरामद हुई। स्टैण्डर्ड चार्टर्ड बैंक, दिल्ली का एकाउंट कार्ड सी० बी० विज्ञान का था। चेकबुक के सभी पन्ने सादे थे। परन्तु उसके सभी पृष्ठों पर पैसा निकालनेवाले दस्तखत के स्थान पर ज्योति के हस्ताक्षर थे। दो नयी अटैचियां भी मिलीं। उसमें तीस हजार रुपये, साड़ियां, सलवार-सूट, कोट का कपड़ा, कुछ जेवरात आदि थे। साड़ियां और कपड़े वगैरह उसी दिन के खरीदे हुए प्रतीत हो रहे थे। एक अटैची के पाकेट में हवाई जहाज के छह टिकट थे। उनमें से तीन टिकट सहारा एयरलाइंस, नई दिल्ली के थे और तीन पटना से रांची जाने वास्ते


अनिल टेकरीवाल


अशोक चाण्डक

इंडियन एयरलाइंस के थे। पटना-रांची के टिकट लखपत सिंह, अनिता व रामकिशन तोकस के नाम से आरक्षित थे। बेहोश करने के काम में इस्तेमाल होनेवाला इंजेक्शन 'फोर्टविन' काफी संख्या में अटैची में पड़ा हुआ था। शराब की बोतलें भी कमरे में थीं। अटैची में ही डा० (श्रीमती) ज्योति के पैड तथा नोबुल हास्पिटल, नई दिल्ली के कागजात थे। हिमाचल प्रदेश के मनाली स्थित पाइन व्यू की रसीद की गड्डी भी पुलिस ने कमरे से जब्त की। इन तमाम सामग्रियों, अनिता, रामकिशन तोकस व अरुण ठाकुर के साथ पुलिस कोतवाली लौट आयी। वहां सब-इंसपेक्टर पाण्डेय ने अरुण ठाकुर, रामकिशन तोकस तथा अनिता से अलग-अलग जानकारियां हासिल कीं। इसके अतिरिक्त जांच-अधिकारी ने 'शकुंतला' के मालिक अनिल टेकरीवाल, 'कनक मंदिर ज्वेलर्स' के शिवेश नारायण, 'बंगलोर सिल्क हाउस' के अमित चाण्डक, 'बंगलोर साड़ी हाउस' के अशोक चाण्डक, 'स्वीटी गारमेंट्स' के अरविंद कुमार सिंह, ऑफ बड़ौदा के बॉब कार्ड मैनेजर अवधेश प्रसाद, होटल सम्राट इंटरनेशनल के मुलाजिम गोपाल से भी कई महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त कीं। तब इस जालसाज तिकड़ी की जो कहानी सामने आयी, वह इस प्रकार है :

अनिता त्यागी भले घराने की लड़की थी। उसके पिता दयानंद त्यागी आरके पुरम पुलिस स्टेशन, नई दिल्ली में सब-इंसपेक्टर थे। मां का नाम सुनीता त्यागी था। अनिता उनकी इकलौती संतान थी।

बचपन से ही अनिता चंचल थी। खुले माहौल में वह पली थी। अपनी जिंदगी अपने ढंग से जीने की चाह उसके मन में सयानी होते ही घर कर गयी थी। पिता पुलिस सेवा में थे, इसलिए घर में न सुख-सुविधाओं की कमी थी, न पैसे की। मिराण्डा हाउस जैसे माडर्न कालेज में पढ़ने से वह स्मार्ट हो गयी थी। मौज-मस्ती का चस्का भी उसे लग गया था। ऐसी हरकतें कौन से माता-पिता पसंद करते? उन्होंने उसे बार-बार समझाया। घर की इज्जत की दुहाइयां दीं। वह एक कान से सुनती, दूसरे कान से निकाल देती।

आहिस्ते-आहिस्ते अनिता ने कोई भी ऐसा बंधन मानने से इंकार कर दिया, जो उसकी निजी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाता था। मां अपना सिर पीटती। पिता दयानंद समझाते रहते। फिर भी वह नहीं सुधरी, तो उन्होंने अनिता का दाखिला गौतम बुद्ध डेंटल कालेज, पटना में करा दिया। यह १९९२ की बात है।

पटना में अनिता आशियाना नगर, राजा बाजार स्थित जगत एनक्लेव में किराये के एक कमरे में रहने लगी। कुछ ही दिनों बाद उसकी मुलाकात रामकिशन तोकस से हुई। खूबसूरत और वाक्पटु तो थी ही वह। लिहाजा तोकस के दिलो-दिमाग पर छा गयी।

तोकस वसंत विहार, दिल्ली का निवासी था। वह भी पटना के आशियाना नगर में रहता था और प्लास्टिक का व्यवसाय करता था। फिर कुछ समय बाद पटना में अनिता ने रामकिशन तोकस से शादी कर ली। तोकस के पिता स्वर्गीय उमराव सिन्हा दिल्ली में व्यवसाय करते थे। वर्षों पूर्व उनका देहावसान हो गया था। रामकिशन तोकस की मां अपने बड़े बेटे के साथ हरियाणा में रहती थी। रामकिशन पहले से शादीशुदा था। पहली पत्नी मीरा से एक पुत्र प्रदीप था। अनिता से विवाह के वक्त रामकिशन तोकस ने यह बात उसे बता भी दी थी। तब अनिता ने कहा था, "मुझे तो तुमसे मतलब है। तुम सिर्फ मेरे हो, मेरे रहोगे।"

रामकिशन तोकस अनिता को पाकर अपने को भाग्यवान मानने लगा। अनिता को प्यार से उसने 'लक्ष्मी' कहना शुरू कर दिया। कभी-कभी वह अनिता को 'ज्योति' नाम से भी पुकारता था। अनिता ने इस बाबत उससे पूछा, तो हंसते हुए रामकिशन ने बताया, "अनिता! संसार में दौलत से बढ़कर कुछ भी नहीं है। दौलत कमाने के लिए तुम्हारी जैसी खूबसूरत बीवी का होना निहायत जरूरी है। मेरे दिमाग में जो योजना है, उसकी बदौलत हमारे यहां लक्ष्मी की वर्षा होने लगेगी और इस लक्ष्मी को हासिल करने के लिए

तुम राह की ज्योति साबित होगी। इसी लिए तुम मेरी ज्योति हो, लक्ष्मी हो। मुझे पक्का विश्वास है कि जरूरत पड़ने पर तुम शालीनता के दायरे को भी लांघने में हिचकिचाओगी नहीं।"

यह सुनकर अनिता को खुशी ही हुई।

अनिता ने पढ़ाई छोड़ दी और जल्द ही उसने एक बिटिया को जन्म दिया। लड़की का नाम अनिता ने मीनू रखा। मीनू की देखभाल के लिए उसने एक आया रख ली। उधर उसके माता-पिता को जब यह पता लगा कि अनिता ने शादी कर ली, तो उन्होंने उससे रिश्ता तोड़ लिया।

अनिता अब स्वच्छंद थी। रामकिशन तोकस ने ज़नवरी १९९३ में अपनी योजना अनिता को बतायी, "डार्लिंग, भारत में तुम्हारी जैसी बोल्ड लड़कियां कम ही होती हैं। मैं जिस धंधे की चर्चा करने जा रहा हूं, वह बेशक गलत धंधा है। चंद मिनटों का काम होगा और तुम पूरी तरह सुरक्षित भी रहोगी। बॉब कार्ड के जरिये हम बड़े-बड़े दुकानदारों को ठगेंगे। सोने-चांदी के जेवरात, कपड़े, साड़ियां वगैरह इस कार्ड से हमें व्यवसायी दे देंगे। जिस शहर के व्यापारी को हम चूना लगाएंगे, उससे काफी दूर के दूसरे नगर में उस माल को हम बेच देंगे।

"मेरी जान, तुम इस जालसाजी की नायिका रहेगी। हसीन हो, जवान हो, लोग तुम पर फिदा हो जाएंगे। सिर्फ दस्तखत करने में तुम्हें प्रवीण होना पड़ेगा, फर्स्ट क्लास नकलची बनना पड़ेगा। इसमें जोखिम भी नहीं है, खतरे की गुंजाइश न के बराबर हैं। पकड़े जाने पर हल्की-फुल्की सजा होगी। समझीं?"

अनिता सहर्ष तैयार हो गयी।

बस यहीं से शुरू हो गयी अनिता की जालसाजी, ठगी की कहानी। सर्वप्रथम फरवरी १९९३ में पटना के गांधी मैदान स्थित केनरा बैंक के तत्कालीन शाखा प्रबंधक गंगेश्वर प्रसाद से अनिता ने सम्पर्क किया। गंगेश्वर प्रसाद के हस्ताक्षर से उस बैंक में 'मेसर्स स्टेट्स डिस्ट्रीब्यूटर्स' का एक करेंट एकाउण्ट खुला। गंगेश्वर प्रसाद इस खाते के इंट्रोड्यूसर थे। कुछ दिनों के बाद अनिता ने बैंक से पांच-पांच हजार के दो डी०बी० लिये। नियम के तहत बैंक का एक डी०बी तो उसने चुकता कर दिया, मगर पांच हजार का जो दूसरा डी०बी० था, उसकी एक भी किस्त बैंक को नहीं दी और पटना से फरार हो गयी। खाता खोलते वक्त उसने अपना पता भी बैंक में गलत लिखा था।

अंत में गंगेश्वर प्रसाद इस मामले में उलझ गये। सूद समेत पांच हजार का जुर्माना तो उन्हें भरना ही पड़ा, साथ ही उनके खिलाफ बैंकिंग विजिलेंस की जांच भी हुई।

पटना से भागकर अनिता तथा रामकिशन दिल्ली में जम गये। वहीं अनिता ने नर्सिंग का कोर्स किया और दिल्ली के एक कॉस्मेटिक एण्ड प्लास्टिक सर्जन की क्लीनिक में काम शुरू किया। डाक्टर-सर्जन की पत्नी भी डाक्टर थीं।

साल भर तो सब कुछ ठीक-ठाक चला, किंतु अनिता को लेकर डाक्टर दम्पति में तकरार होने लगी। पटना पुलिस के मुताबिक, डाक्टर ने अनिता की तनख्वाह दो हजार से सीधे बढ़ाकर छह हजार कर दी। इस छह हजार के अलावा भी अपनी कमाई का काफी हिस्सा डाक्टर साहब अनिता पर लुटाने लगे। कोई पत्नी भला इसे कैसे बरदाश्त कर सकती थी? अंततः उस क्लीनिक से अनिता का पत्ता कट गया। डाक्टर साहब अनिता को दुलार से मंजू कहा करते थे।

दिल्ली में रहते हुए अनिता की जिन्दगी में स्मार्ट नौजवान अरुण ठाकुर का प्रवेश हुआ। अरुण मूलतः बिहार के दरभंगा जिले का निवासी था। दिल्ली की एक सेल्यूलर फोन कंपनी में वह सेल्स एक्जीक्यूटिव था। वह अविवाहित था और अकेले रहता था।

उधर अनिता की आमदनी से रामकिशन को शराब पीने तथा ड्रग लेने की आदत पड़ गयी थी। अतः पुलिस के अनुसार, अनिता धीरे-धीरे अरुण ठाकुर की होकर रह गयी।

अब अनिता, रामकिशन तोकस एवं अरुण ठाकुर की तिकड़ी ने लखपत सिंह, सी०बी० विज्ञान, दीपक गुप्ता तथा अपने-अपने नाम अनिता, रामकिशन, अरुण ठाकुर और आर० के० चौधरी के नाम से बैंक ऑफ बड़ौदा के बॉब कार्ड बना लिये। महानगर मुंबई के कई बड़े कपड़ा व्यापारियों और एक आभूषण विक्रेता को इस तिकड़ी ने सन् १९९४ में चूना लगाया। इनकी खासियत यह थी कि एक दुकान से माल लेने के बाद उससे काफी फासले पर स्थित दूसरे व्यवसायी के यहां पधारते थे। आम तौर से जालसाजी का यह धंधा ये लोग शाम चार बजे के बाद करते थे। उस समय तक बैंक बंद हो जाता था और चार्ज स्लिप दुकानदार अगले दिन संबंधित बैंक को भेजते थे। तब वहां उन्हें पता चलता था कि क्रेडिट कार्ड फर्जी थे।

इस तरह काफी कमाई करने के बाद इन तीनों ने हिमाचल प्रदेश के मनाली में एक होटल 'पाइन व्यू' ९९ वर्ष की लीज पर खरीद लिया। ठगी के सिलसिले में देश के विभिन्न शहरों के होटलों में तीनों टिकते थे, इसलिए उन होटलों के मैनेजर से लेकर वेटर तक से परिचय हो गया था। बेयरा तथा रूम-सर्विस के सभी मुलाजिमों को पटाने की अद्भुत क्षमता थी अनिता में। होटल छोड़ते वक्त अनिता उन्हें उपहार बांटती थी। इसके एवज में होटल के कर्मचारी उसकी खातिर किया करते थे। इसी का लाभ उठाकर अनिता कई होटलों से स्टाफ को फोड़कर अपने होटल में ले आयी थी। पटना के सम्राट इंटरनेशनल होटल के मुलाजिम गोपाल के दो अनुज कुंदन तथा मदन भी 'पाइन व्यू' में काम करते थे।

वर्ष १९९५ में कनाट प्लेस दिल्ली, पालिका बाजार दिल्ली समेत नागपुर, जमशेदपुर, रांची और धनबाद के अनेक व्यापारियों को डराकर अनिता की तिकड़ी ने खूब दौलत बटोरी। दौलत के नशे में रामकिशन तोकस इस कदर नशे में भी डूबता गया कि 'फोर्टविन' का इंजेक्शन रोज लगवाने लगा। शराब तो वह पीता ही था। फिर इस तिकड़ी की निगाह पटना पर पड़ी। दिसंबर, १९९६ में जाली क्रेडिट कार्डो पर 'शकुंतला' से चार हजार के कपड़े एवं 'शकुन्तला' के सामने 'स्वीटी गारमेंट्स' से ढाई हजार के वस्त्र लेकर इत्मीनान से अनिता एण्ड कंपनी उड़ गयी थी। तभी से 'शकुन्तला' के मालिक अनिल टेकरीवाल इस फिराक में लगे थे कि अगर वह ठग-सुंदरी पटना में कभी आयी, तो उसे वह जेल भिजवाकर ही दम लेंगे। यह मौका छह फरवरी १९९८ को उनके हाथ लग ही गया।

६ फरवरी १९९८ की सुबह थी वह। साढ़े छह बजे दिल्ली से चलकर राजधानी एक्सप्रेस पटना पहुंची। उसमें से अनिता, रामकिशन तोकस एवं अरुण ठाकुर उतरे। प्लेटफार्म से बाहर होते ही तीनों ने भाड़े की चमचमाती मारुति कार की और सीधे पटना के एक्जीबिशन रोड स्थित रिपब्लिक होटल पहुंचे। वहां कमरा नंबर दो सौ बारह में फ्रेश होने के बाद तीनों अपने धंधे में जुट गये।

ठीक साढ़े दस बजते ही अनिता, रामकिशन तोकस और अरुण ठाकुर ने अशोक राजपथ में पीरबहोर पुलिस स्टेशन के समक्ष 'कनक मंदिर ज्वेलर्स' में कदम रखे। दुकान के मालिक शिवेश नारायण ने उनका स्वागत किया। अनिता ने चार हजार की सोने की एक चेन पसंद की और बॉब कार्ड के जरिये उसे खरीद लिया।

फिर यह टोली वहां से सटे पटना मार्केट में घुसी। बंगलोर सिल्क हाउस एवं बंगलोर साड़ी हाउस से उन्होंने क्रेडिट कार्ड पर २९९६ तथा १७७४ रुपये की साड़ियां सलवार सूट और कोट के कपड़े की खरीदारी की। वेश-भूषा और बातचीत करने की तहजीब उनकी ऐसी थी कि तनिक भी किसी को संदेह नहीं हुआ। दिन के ढाई बजे के करीब चार्ज सिल्प लेकर जब दुकानदार बैंक ऑफ बड़ौदा डाकबंगला रोड गये, तो वहां उन्हें बैंक प्रबंधक अवधेश प्रसाद ने जानकारी दी कि फर्जी बॉब कार्ड से उन्हें ठग लिया गया था। फिर उसी दिन शाम के साढ़े चार बजे 'शकुन्तला' में दोबारा बॉब कार्ड की बदौलत कपड़ा खरीदते वक्त अनिता और तोकस पकड़े गये थे।

पुलिस ने तीनों अभियुक्तों को दण्डाधिकारी पटना की अदालत में पेश किया। मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी ने उन्हें केंद्रीय कारागार बेऊर, पटना भेजने का आदेश जारी कर दिया। पन्द्रह अप्रैल को जांच अधिकारी ने तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध न्यायालय में आरोपपत्र दाखिल कर दिया। ●

(पृष्ठ ८ का शेष)

वे समझ पायीं, तब तक गाय ने तड़प-तड़पकर प्राण त्याग दिये।

प्राणाधिक प्रिय गाय की मौत से साध्वी शैव्या को ऐसा आघात लगा कि उन्होंने उसी क्षण अन्न-जल तक त्याग दिया। वे स्वयं को नंदिनी की हत्यारिन मानने लगीं। आश्रम की साध्वियों ने उन्हें बहुत समझाया, लेकिन वे अन्न-जल ग्रहण करने को तैयार नहीं हुई। बाद में जब यह बात दूसरे आश्रमों तक फैली तो बहुत से संत और मनीषी उन्हें समझाने आये। उन्होंने उन्हें गोहत्या के पाप से मुक्त होने के उपाय भी बताये, लेकिन साध्वी शैव्या ने अपना अनशन नहीं छोड़ा। अंततः एक दिन अनशन-अवस्था में ही उन्होंने प्राण त्याग दिये।

समय के प्रवाह में यह घटना पता नहीं कहां खो गयी। साध्वी शैव्या के आश्रम का अस्तित्व भी समाप्त हो गया। अलबत्ता जनश्रुतियों और चंद उपनिषदों में यह घटना जरूर दर्ज हो गयी।

हजारों साल बीत गये।

बीसवीं सदी के आठवें दशक के उत्तरार्द्ध का एक साल। सलीकेदार साड़ी, ब्लाउज जैसे परम्परागत वस्त्र पहने एक विदेशी महिला पंजाब प्रांत के होशियारपुर बस-अड्डे पर उतरी। महिला के साथ एक भारतीय भी था। जैसा कि आमतौर पर होता है, विदेशी महिला को देखते ही रिक्शा, तांगावालों ने उसे घेर लिया। लेकिन एक भारतीय के साथ होने की वजह से वे लूट-खसोट से बच गयीं। उस महिला को साथ लेकर उनका साथी एक हवेली में पहुंचा। हवेली के मालिक चोटी और जनेऊधारी ब्राह्मण थे। भृगुसंहिता विशेषज्ञ के रूप में उनकी दूर-दूर तक धाक थी।

औपचारिक अभिवादन के उपरान्त महिला ने धाराप्रवाह संस्कृत में पंडितजी को बताया कि वे अपना भूत और भविष्य जानने के उद्देश्य से उनके पास आयी हैं। महिला की इच्छा जानकर पंडितजी उन्हें अपने विशिष्ट कक्ष में ले गये और एक महाकाय पोथी के पृष्ठ पलटते हुए पूछा, "आपकी जन्मतिथि?"

"५ अगस्त १६४६। जन्म स्थान-बुडापेस्ट, हंगरी।" महिला ने उत्तर दिया।

इसके बाद कोई कुछ नहीं बोला। अगले दो घंटे तक पंडितजी अपनी पोथी, कागज और कलम से जूझते रहे। इस दौरान उन्होंने एक बार भी नजरें उठाकर नहीं देखा। पूरे दो घंटे बाद जब पंडितजी ने गर्दन सीधी की तो प्रसन्नता से उनका चेहरा खिला हुआ था। शायद उन्होंने उस महिला के भूत-भविष्य का रहस्य पा लिया था। आसन के पास रखी तिपाई से गिलास उठाकर, दो घूंट पानी पीकर वह महिला की आंखों में झांककर मुस्कराते हुए बोले, "तो आप शैव्या हैं?"

"कौन शैव्या पंडितजी।" महिला ने उत्सुकता से पूछा, तो पंडितजी बोले, "बद्रिकाश्रम में साध्वियों के आश्रम की अधिष्ठात्री साध्वी शैव्या।"

"मैं कुछ समझी नहीं पंडितजी?" महिला ने असमंजस भरे स्वर में पूछा, तो पंडितजी बोले, "मैं तुम्हें वे घटनाएं याद तो नहीं दिला सकता देवी शैव्या, परंतु बद्रिकाश्रम में तुम्हारा आश्रम था, जहां अनजाने में तुमसे एक गाय की हत्या हो गयी थी। उसी पाप के फलस्वरूप इतने युगों तक तुम्हारी आत्मा भटकती रही और तुम्हें विधर्मी के रूप में जन्म लेना पड़ा। लेकिन गोहत्या से पूर्व तुमने जो पुण्य किये थे, उन्हीं के फलस्वरूप तुम अपने मूल धर्म में लौटने का प्रयास कर रही हो।"

"आप ये सब बातें कैसे जानते हैं?" महिला ने उत्सुकता से पूछा, तो पंडितजी शांत स्वर में बोले, "मैं कुछ नहीं जानता देवी। मैं तो गणक हूं। शास्त्र में जो लिखा है, मैंने उसकी गणना करके व्याख्या कर दी। असल प्रश्न है कि क्या ये बातें सत्य हैं?"

"अक्षरशः सत्य हैं पंडितजी," महिला बोली, "पर प्रश्न यह है कि क्या मुझे मुक्ति मिलेगी?"

"अवश्य।"

"कैसे?"

"मुक्ति का मार्ग साधना के मरुस्थल से होकर जाता है देवी। साधना करो। प्रभु तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करेंगे," पंडितजी ने समझाते हुए कहा, "आप अपना नाम बताइये।"

"मेरा नाम रोजालिया राधिकाप्रिया है। मेरे साथ हैं आचार्य श्रीराम शर्मा।" महिला अपना और अपने साथी का परिचय देतीं हुई बोली।

रोजालिया और पंडितजी काफी देर तक बातें करते रहें। इस दौरान उनके बीच भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन पर बड़े विस्तार से बातें हुई। रोजालिया की विद्वता देखकर पंडितजी अभिभूत हो गये। चलते समय रोजालिया ने पंडितजी से पूछा, "आपकी फीस कितनी हुई पंडितजी?"

"देवी रोजालिया, तुम तो साध्वी हो। पूर्वजन्म में भी थीं, और इस जन्म में भी हो। फीस देकर मुझे पाप का भागीदार मत बनाओ।" पंडितजी ने स्नेहासिक्त स्वर में कहा।

रोजालिया होशियारपुर से लौटीं तो उनका मन एकदम शांत था। आंखों में चमक थी और हृदय में दृढ़ विश्वास, कि अब वे भारत में ही रहेंगी। होशियारपुर से रोजालिया और आचार्य श्रीराम मथुरा लौटे। कुछ दिन मथुरा में रहकर रोजालिया अकेले ही उदयपुर चली गयीं।

रोजालिया राधिकाप्रिया उदयपुर घूमने के मकसद से नहीं गयी थीं। दरअसल उदयपुर में श्रीकृष्ण भगवान का प्रसिद्ध नाथद्वारा मंदिर है। पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय के प्रवर्तक तेलुगू के उद्भट विद्वान और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त श्रीवल्लभाचार्य ने नाथद्वारा मंदिर की स्थापना ५०० वर्ष पूर्व की थी। स्वः के सम्पूर्ण समर्पण का दूसरा नाम ही पुष्टिमार्ग है। श्रीकृष्ण के विश्वमोहिनी स्वरूप को आत्मसात करके प्रेमी के रूप में उनकी आराधना करना ही पुष्टि मार्ग का सिद्धांत है। कीर्तन, स्मरण, सेवा और दर्शन इस सम्प्रदाय की आराधना विधि का मूल है।

अस्तु, उदयपुर पहुंचने के बाद रोजालिया नाथद्वारा मंदिर के कीर्तन में शामिल हुई। कीर्तन में श्रीवल्लभाचार्य द्वारा रचित मधुराष्टकम का गायन भी होता है। उस दिन भी मंदिर में मुख्य पुजारी दाऊ बाबा गोस्वामी ने मधुराष्टकम का सस्वर पाठ शुरू किया–'मधुरम्...मधुरम्...'

भक्तजन पाठ में लीन हो गये–'मधुरम्...मधुरम्...'

कीर्तन के दौरान रोजालिया भी कब 'मधुरम...मधुरम...' गाने लगीं, उन्हें पता ही नहीं चला। कीर्तन की समाप्ति पर जब रोजालिया वापस लौटीं तो उनके कानों में वही शब्द गूंज रहे थे। रोजालिया पर मधुरम् शब्द का ऐसा जादू चला कि वे रोज कीर्तन में भाग लेने लगीं। उसी दौरान उनकी भेंट वीरेन्द्र राणावत और विजयलक्ष्मी से हुई।

कुछ ही दिनों में रोजालिया कृष्णभक्ति में इतना रम गयीं कि उन्होंने पुष्टिमार्ग में दीक्षा लेने का फैसला कर लिया। उन्होंने अपनी इच्छा के बारे में वीरेन्द्र राणावत और विजयलक्ष्मी को बताया, तो वे उन्हें दाऊ बाबा गोस्वामी के पास ले गये। रोजालिया की इच्छा जानकर दाऊ बाबा ने उन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर लिया। गुरुमंत्र के रूप में उन्होंने उन्हें मधुराष्टकम् यमुनाष्टकम् और गायत्री जाप की सलाह दी। दीक्षा पाने के उपरान्त रोजालिया का अधिकांश समय नाथद्वारा मंदिर में बीतने लगा। मात्र एक सप्ताह बाद ही उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति एक कविता की रचना की। यह कविता थी–

चन्द्र नहीं, एक चिबुक जड़ा हीरा है तेरा
तेरा हास उतरकर आया
मोती के मोहक स्वरूप में
पूर्ण चन्द्रिका, और नहीं कुछ
चमक तुम्हारे चिबुक जड़े हीरे की केवल
तेरी वंशी का मीठा स्वर-नृत्य रास का,
चितवन तेरी नव सर्जन,
चाह तुम्हारी बता रही है।
प्यार भरे मीठे शब्दों में वह आमंत्रण आलिंगन का,
सच्चे मोती की डिबिया वह और नहीं कुछ
मात्र खिलौने दिव्य प्रेम के
सकल सृष्टि है एक खिलौना
तेरे कुण्डल का कम्पन ही
सुन्दरतम श्रीनाथ हमारे
अमर ज्योति तुम अमर प्रेम हो।

दाऊ बाबा गोस्वामी ने कविता सुनी, तो वह न केवल प्रभावित हुए, बल्कि उन्होंने रोजालिया को बधाई दी। इसके कुछ दिन बाद रोजालिया को स्वदेश लौटना पड़ा।

रोजालिया का जन्म ४ अगस्त १९४६ को हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में हुआ था। उनके पिता सरकारी सेवा में थे। रोजालिया ने उच्च शिक्षा पेरिस (फ्रांस) में पायी। सन् १९७० में उन्होंने पेरिस में जिलेदी नामक युवक से शादी कर ली। कुछ दिन बाद वे एक बेटे की मां भी बन गयीं। रोजालिया जिलेदी ने अपने कैरियर की शुरुआत सरकारी नौकरी से की थी। इस दौरान उन्हें कई देशों में घूमने का अवसर मिला। रोजालिया को चित्रकारी का शौक था। पिकासो और शांगल जैसे विख्यात चित्रकार उनके आदर्श थे। बाद में उन्होंने नौकरी छोड़ दी और पूरी तरह चित्रकारी को समर्पित हो गयीं।

पाश्चात्य संस्कृति के रहनुमा, खुलेपन के प्रतीक और सौंदर्य के प्रतिमानों के शहर पेरिस में रहते हुए भी रोजालिया उस संस्कृति को आत्मसात नहीं कर पायीं। मांस-मदिरा, सिगरेट और उन्मुक्तता से वे कोसों दूर थीं। भारतीय संस्कृति की सात्विकता के बारे में उन्होंने सुना जरूर था, लेकिन तब तक वे इस बारे में अधिक नहीं जानती थीं। अधिक जानने की चाह में उन्होंने पेरिस स्थित श्रीकृष्ण के अंतर्राष्ट्रीय भक्तों की संस्था 'इस्कान' के मंदिर जाना शुरू कर दिया। इस्कान का मूल मंत्र भी कीर्तन है। रोजालिया को कीर्तन में शांति मिली, तो वे नियमित रूप से मंदिर जाने लगीं।

इस्कान मंदिर में रोजालिया को शांति जरूर मिली, लेकिन भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी ज्ञान-पिपासा शांत नहीं हुई। इसलिए सन् १९७९ में वे भारत आ गयीं। रोजालिया चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावन, काशी और हरिद्वार जैसे कई स्थानों पर घूमीं। इस दौरान वे सैकड़ों लोगों के संपर्क में आयीं। भारतीय संस्कृति को निकट से देखने, जानने और तादात्म्य स्थापित करने का भी उन्हें अवसर मिला।

सन् १९८१ में रोजालिया जिलेदी पुनः भारत आयीं। इस बार वे सीधे चित्रकूट पहुंची। चित्रकूट में मंदाकिनी नदी के किनारे उनकी भेंट रामभद्राचार्य से हुई। रामभद्राचार्य जन्मांध थे, लेकिन थे संस्कृत के प्रकांड पंडित। वे अपने दायें हाथ में हमेशा बाल-राम की मूर्ति रखते थे। रोजालिया ने एक साल तक रामभद्राचार्य के सान्निध्य में रहकर संस्कृत सीखी।

जब संस्कृत पढ़ने और समझने में वे पारंगत हो गयीं तो उन्होंने गीता का अध्ययन शुरू किया। ज्यों-ज्यों वे गीता का अध्ययन करनें लगीं, त्यों-त्यों उनके मन की वे गुत्थियां सुलझती गयीं, जिन्हें लेकर वे युवावस्था से ही उद्विग्न रहती थीं।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है, 'मैं ही ईश्वर हूं, देवाधिदेव हूं, तीनों लोकों का स्रष्टा भी हूं मैं, और संहारक भी मैं। तीनों लोक मुझमें हैं और मैं तीनों लोकों में विद्यमान हूं।'

जब संस्कृत पढ़ने और समझने में वे पारंगत हो गयीं तो उन्होंने गीता का अध्ययन शुरू किया। ज्यों-ज्यों वे गीता का अध्ययन करने लगीं, त्यों-त्यों उनके मन की वे गुत्थियां सुलझती गयीं, जिन्हें लेकर वे युवावस्था से ही उद्विग्न रहती थीं

गीता के इसी सार ने रोजालिया की जीवन-धारा बदल दी। वे पूरे जोश-खरोश के साथ धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में लग गयीं। चित्रकूट में रहते हुए उन्होंने रामायण, हनुमान चरित, शिव पुराण और विष्णु पुराण आदि पवित्र ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। इसके बाद वे पश्चिम बंगाल स्थित नवद्वीप चली गयीं।

नवद्वीप स्थित चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन संस्थान में उनका काफी समय बीता। वहीं पर श्रीधर महाराज ने उन्हें हिन्दू धर्म की दीक्षा दी और उनका नामकरण किया– राधिकाप्रिया। नवद्वीप से वे पेरिस चली गयीं।

इसके बाद तो कभी पेरिस, कभी भारत, उनका आना-जाना लगा रहा। इस बीच में गया समेत उत्तर भारत के समस्त प्रमुख मंदिरों में गयीं। मथुरा निवासी श्रीराम शर्मा आचार्य उनके मार्गदर्शक बन गये थे।

इतना सब जानने-समझने के बावजूद रोजालिया राधिकाप्रिया के मन का कोई कोना खाली था। हालांकि वे रोजाना भगवान श्रीकृष्ण की पूजा और गायत्री मंत्र का जप करती थीं, लेकिन उन्हें यही महसूस होता था कि उन्हें कुछ और करना चाहिए। क्या करना चाहिए, यह वह समझ नहीं पा रही थीं।

इसी उहापोह की स्थिति में सन् १९८८ में जब वे भारत आयीं, तो उन्होंने श्रीराम शर्मा आचार्य से मन की बात बतायी। उनके मन की बेचैनी को भांपकर आचार्य श्रीराम शर्मा उन्हें होशियारपुर ले गये। वहां भृगुसंहिताविद् एक पंडित को उनके पूर्व और इस जन्म का वृतान्त बताया। उन्होंने ही रोजालिया को नाथद्वारा जाने की सलाद दी थी। रोजालिया नाथद्वारा पहुंची तो उन्हें 'मधुरम्' का महामंत्र मिला। इस एक शब्द ने उनकी जीवन-धारा को उस डगर की ओर मोड़ दिया, जिसकी उन्हें लम्बे अरसे से तलाश थी।

पेरिस प्रवास के दौरान रोजालिया को कई गिरजाघरों में जाना पड़ा। गिरजाघरों को बड़े सुरुचिपूर्ण तरीके से बनाया जाता है। सुंदर बेल-बूटे, फूल-पत्तियों, ईसा मसीह और मां मरियम की मूर्तिशिल्पों से गिरजाघरों को भव्य रूप प्रदान किया जाता है। पेरिस के गिरजाघरों की चित्रकारी देखकर रोजालिया राधिकाप्रिया के मन में आया, कि क्यों न वे भी श्रीकृष्ण की प्रिया यमुना की वन्दना में श्रीवल्लभाचार्य द्वारा रचित यमुनाष्टकम् के श्लोकों को रंग और तूलिका के माध्यम से चित्राकार देकर अपने आराध्य को समर्पित करें।

मन में यह विचार आते ही रोजालिया राधिकाप्रिया अपनी यात्रा बीच में छोड़कर उदयपुर लौट आयीं। उदयपुर लौटकर उन्होंने दाऊ बाबा गोस्वामी, देवाशंकर शर्मा, घनश्याम शर्मा, विजयलक्ष्मी और वीरेन्द्र राणावत के सहयोग से यमुना चरित और यमुनाष्टकम् का विशद अध्ययन किया। अध्ययन पूरा हो जाने पर उन्होंने यमुनाष्टकम् के पदों को चित्ररूप देना शुरू किया।

सूर्यपुत्री-यमुना के कृष्ण प्रेम से संबंधित ३६ चित्रों को कैनवस पर उतारते समय राधिकाप्रिया ने प्रभु के प्रति हृदय में भरे प्रेम को पूरी तरह उंड़ेल दिया।

यमुनाष्टकम् को चित्राकार देने के साथ-साथ राधिकाप्रिया ने मधुराष्टकम् का भी अध्ययन-मनन किया, और उसे भी चित्राकार देने लगीं। राधिकाप्रिया को चित्रकारी का कोई विशेष अनुभव नहीं था, लेकिन उनके चित्रों को देखकर कोई नहीं कह सकता कि ये चित्र किसी विदेशी महिला ने बनाये हैं। उनके चित्रों में राजस्थानी शैली की छाप अवश्य है, लेकिन उनका स्वरूप पूर्णतया भारतीय है।

यमुनाष्टकम् को पूरा करने में रोजालिया राधिकाप्रिया को चार वर्ष लगे। अक्टूबर १९९३ में उन्होंने इस चित्र शृंखला को नई दिल्ली स्थित फ्रांस दूतावास में प्रदर्शित किया। अगले वर्ष उनका मधुराष्टकम् पूरा हो गया। नवम्बर १९९४ में उन्होंने मधुराष्टकम् को भी हंगरी दूतावास में प्रदर्शित किया। मधुराष्टकम् के आठ पदों को उन्होंने ४८ रूपों में चित्रांकित किया है।

मधुराष्टकम् और यमुनाष्टकम् को चित्र-स्वरूप देने के दौरान राधिकाप्रिया ने कठिन साधना की थी। चालीस दिनों तक वे तूलिका और रंगों से जूझती रहीं। इस साधना का प्रतिफल उन्हें मिल चुका है। उनका मन प्रेम और शांति से ओत-प्रोत है। चित्र-साधना द्वारा वे अपने प्रिय आराध्य को अपना सर्वस्व अर्पित कर चुकी हैं। अब वे राधिकाप्रिय हैं।

रोजालिया राधिकाप्रिया अब तक २५ लाख गायत्री मंत्रों का जाप कर चुकी हैं। बताया जाता है, उन्हें वह स्थिति प्राप्त हो चुकी है, जिसे कुंडलिनी जागरण कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त पश्चिम की यह महिला अब कृष्ण-भक्ति के प्रचार में लगी है। उसे दुख है कि भारत के लोग धर्म से दूर जा रहे हैं, जबकि विदेशी लोग हिन्दू धर्म को अपना रहे हैं। ●

जुनून

–विशेष संवाददाता



[illegible] उर्फ सुनीता

इंसपेक्टर के०जी० त्यागी के सामने जो चुनौती मुंह बाये खड़ी थी, उससे जूझना आसान नहीं था। लेकिन सवाल पूरी उत्तरी जिला पुलिस और अधिकारियों की इज्जत का था, इसलिए उन्होंने फैसला किया कि जैसे भी होगा, मामले की तह तक पहुंचकर रहेंगे।

केस बेहद पेचीदा था। एक-एक करके तीन युवकों की लाशें मिली थीं। हत्या के बाद तीनों युवकों के सिर मूंडकर लाशों को नंगी करके फेंका गया था। मृतकों में तीनों युवक दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र थे और तीनों की हत्या गला घोंटकर की गयी थी। तीनों छात्रों की लाशें बेशक अलग-अलग मिलीं, पर उन्हें मारा एक ही तरीके से गया था। इससे जाहिर होता था कि तीनों का हत्यारा

एक ही है। हत्या के इस केस में एक और जो खास बात पुलिस का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही थी, वह यह थी कि तीनों मृतक बिहार के रहनेवाले थे। उनमें आदित्य और अगस्त्य सगे भाई थे। ये दोनों भाई पढ़ाई के साथ-साथ सिविल सर्विसेज की तैयारी कर रहे थे।

तीनों छात्रों में अजय की लाश १६ अप्रैल को समयपुर बादली के पास बरामद हुई थी। उसकी हत्या का केस भी थाना समयपुर बादली में ही दर्ज हुआ। जबकि आदित्य झा और अगस्त्य झा की लाशें २६ अप्रैल को समयपुर बादली क्षेत्र के टिगड़ीपुर गांव और तीमारपुर इलाके से अलग-अलग बरामद हुई। उनकी हत्या के केस थाना समयपुर बादली और थाना तीमारपुर में दर्ज हुए थे।

स्थानीय पुलिस जब इन मामलों में किसी नतीजे पर नहीं पहुंच पायी तो जिला पुलिस उपायुक्त एस०एन० श्रीवास्तव और अतिरिक्त पुलिस उपायुक्त अनीता राय ने विचार-विमर्श के बाद सहायक पुलिस आयुक्त टी० शेरिंग, अनुराग कुमार, के०जी० त्यागी, संदीप बयाला, जान मोहम्मद खान आदि की एक टीम बनाकर उसे इस मामले की तह तक पहुंचने का काम सौंपा। के०जी० त्यागी को केस का जांच अधिकारी नियुक्त किया गया।

के०जी० त्यागी ने अपनी पुलिस टीम के साथ जब इस केस की जांच शुरू की, तो उन्हें पता चला कि मृतक आदित्य झा, अभय कुमार, अगस्त्य झा जिला सीतामढ़ी (बिहार) के रहनेवाले थे। ये तीनों बिहार में भारतीय खाद्य निगम में ए०डी०एम० के पद पर सेवारत सर्वेश्वर झा के पुत्र थे। दिल्ली में ही रहकर अभय चार्टर्ड एकाउंटेंट का कोर्स करने के साथ-साथ किसी प्राइवेट फर्म में नौकरी भी कर रहा था। वह डेढ़-दो माह पहले अपने सीतामढ़ी स्थित गांव चला गया था।



अरशद जाफरी



शादाब

मृतक अजय वैशाली का रहनेवाला था। वह अभय, आदित्य और अगस्त्य का दोस्त था। ये सब लोग मुखर्जी नगर के पास ढाका गांव में किराये के मकानों में रहते थे।

इंसपेक्टर के०जी० त्यागी की टीम ने ढाका गांव के लोगों तथा अजय, अभय, आदित्य और अगस्त्य के दोस्तों से पूछताछ की, तो जानकारी मिली कि इन लोगों के संबंध ढाका गांव में रहनेवाली एक युवती शमीम उर्फ सुनीता से थे। चारों उसके पास आते-जाते भी थे।

के०जी० त्यागी ने सुनीता के बारे में पता लगाया तो मालूम हुआ कि बाईस-तेईस वर्षीया खूबसूरत सुनीता प्रॉपर्टी डीलर प्रेमसिंह उर्फ फौजी की रखैल थी। वह उसी के साथ दूसरी पत्नी के रूप में रहा करती थी। पैंतालीस वर्षीय प्रेमसिंह का 'फौजी एसोसिएट' के नाम से प्रापर्टी डीलिंग और दूध की डेयरी का व्यवसाय था। यह भी जानकारी मिली कि जबसे अभय सिंह दिल्ली से गायब है, तभी से शमीम उर्फ सुनीता को भी नहीं देखा

(शेष पृष्ठ १२० पर)



प्रेमसिंह फौजी

राजू

पुलिस की हिरासत में अभियुक्त

पिजारो शुरू से वैसा नहीं था। एक अनपढ़ मजदूर की अनपढ़ बेटी के गर्भ से जन्मा जारज पुत्र वैसा हो भी कैसे सकता था? फिर स्वाभाविक था, अनपढ़ मजदूर की बेटी अनपढ़ मजदूरनी होती और उसकी कोख से जन्मे बेटे के नसीब में भी मजदूरी ही होती। लिहाजा किशोरावस्था की उम्र तक पिजारो को मजदूरी करनी पड़ी। पढ़ाई-लिखाई से कोसों दूर भेड़ तथा सुअर चराने की मजदूरी। अड़ोस-पड़ोस के हमउम्र लड़के भी यही करते थे। एक दिन उसने मां से पूछा, "मेरे पिता कहां रहते हैं? दोस्तों के पिताओं की तरह कभी घर क्यों नहीं आते?"

मां क्या जवाब देती! चुपचाप आंखों में उभरे आंसू पोंछकर रह गयी।

जब उम्र थोड़ी और बढ़ी, पिजारो की समझ में आया, पिता प्यार करने क्यों नहीं आते। मां उनकी ब्याहता पत्नी तो थी नहीं। कुंवारी मां की कोख से जन्मी संतान कहे जाने का दुख उसे तिलमिलाकर रख गया।

पिजारो पंद्रह साल का हुआ, तो मां ने एक दिन बताया, "मेरे गर्भ में तुम्हें छोड़ जानेवाले का नाम डॉन गिन्जेलो पिजारो है। फौज का वह रुतबेदार जवान है। उसकी जांबाजी पर खुश होकर राजा ने ढेरों सम्मान बख्शें हैं, और चाहकर भी तुम उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

"और जो किसी दिन उससे भी ज्यादा रुतबेदार जवान बन जाऊं?" पिजारो ने जानना चाहा।

"बन जाओ, फिर क्या पूछना। तब उससे यह भी पूछ सकते हो कि मेरा क्या कुसूर था, जो जन्म देकर एक बार पूछने तक नहीं आये—नाना के घर आंसू बहाती मां के साथ किस हाल में हूं? और चाहो तो इस अपराध के लिए उसे सजा भी दे सकते हो।" मां ने बताया, तो जवानी की दहलीज पर पांव रख रहे पिजारो के मन में उसी घड़ी फौज का रुतबेदार जवान बनने के बीज पड़ गये। फिर उन बीजों को खाद-पानी देने का काम परिस्थितियों ने किया।

उस वक्त तक पिजारो का असल नाम फ्रांसिस्को था। फ्रांसिस्का उसकी मां का नाम था, और अपने नाम में हल्की तब्दीली लाते हुए मां ने नाम दिया—फ्रांसिस्को। सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने के लिए तब स्पेन में पैतृक सम्पत्ति का वारिस होना सबसे बड़ी शर्त थी। जन्म के बाद जिस पिता ने एक नजर पलटकर देखना तक गवारा नहीं किया, अपनी सम्पत्ति का वारिस घोषित करना कैसे गवारा करता। मगर फ्रांसिस्को ने जिद में आकर अपने नाम के साथ जन्म देनेवाले मर्द का उपनाम जोड़ा और फ्रांसिस्को पिजारो नाम से पुकारे जाने में एक हद तक सुकून का अनुभव किया।

जो पैतृक सम्पति के हकदार नहीं होते थे, उनके लिए सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने के दो दूसरे विकल्प थे—या तो आपकी शादी हो जाये, या फौज में भर्ती होकर किसी लड़ाई में आप विजय हासिल करिए। गरीब घर का अनपढ़ तथा नाजायज होने के कारण कोई बाप पिजारो के हाथ अपनी लड़की भला क्यों सौंपना चाहता? लिहाजा उसके लिए एक ही रास्ता बच रहा था कि वह फौज में भर्ती हो जाये। इस एक तीर से वह दो शिकार कर सकता था। पहला, किसी दिन जन्म देनेवाले मर्द से बदला लेना, और दूसरा समाज में प्रतिष्ठा हासिल करना।

उन्नीस साल की उम्र में स्पेन की फौज में भर्ती होने पिजारो इटली चला गया। कद-काठी का पूरे छह फुट लंबा, हृष्ट-पुष्ट शरीर, बलिष्ठ भुजाओं, अदम्य साहस तथा उत्साह का धनी वह था ही, और स्पेन की

(शेष पृष्ठ११२पर)

ईश्वर सब देखता है

—भूपेन्द्र अबोध



हाथों की छपाई :
दुनिया में छाई

भारत में हस्त-छपाई का बड़ा ही गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। इतिहास के पन्ने पलटने पर जानकारी मिलती है कि सदियों पूर्व जब विश्व के अनेकानेक देश जंगली सभ्यता में जी रहे थे, उस समय भारत के कई लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा बनायी जा रही वस्तुओं ने विश्व में ख्याति अर्जित कर ली थी।

विश्वभर को आश्चर्य में डाल देनेवाले इन हस्तशिल्पियों की छपाई-कला का सबूत प्राचीन भारत के भित्ति चित्र हैं। भारतीय महिलाएं व पुरुष प्रारंभकाल से ही रंग-बिरंगे कपड़े पहनने के शौकीन रहे हैं। यही नहीं, उनके द्वारा वस्त्रों पर की जानेवाली रंगाई कला का भी प्रमाण मिलता है, सिन्धु घाटी में प्राप्त लाल रंग के एक कपड़े के अवशेष से।

मध्ययुग में भारत में बड़े पैमाने पर छपाई होने लगी थी। हस्त-छपाई कलाकारों के जादुई हाथों से छपने वाले कपड़ों के रंग आदि आकर्षक हुआ ही करते थे, साथ ही वे वस्त्र इतने सस्ते होते थे कि देखते-ही-देखते विश्व के बाजारों में बिक जाते थे। इसके साथ ही सृजनशील कारीगरों में दूसरे देशों की कला, संस्कृति, सभ्यता और इतिहास को भी आसानी से समझ लेने की अद्‌भुत क्षमता थी। अतः जिस किसी देश को कपड़े निर्यात किये जाते थे, वे वहां के देशवासियों की पसंद आदि के अनुकूल हुआ करते थे।

किसी जमाने में गुजरात कलात्मक छपाई का प्रमुख राज्य था। यहां से भारी मात्रा में छपे कपड़े एशिया एवं अफ्रीकी देशों को निर्यात किये जाते थे। बारहवीं सदी में विदेश व्यापार से संबंधित चीन देश के चाऊ-ज-चाऊ नामक एक उच्च अधिकारी ने भारत की यात्रा के दौरान जहां कच्छ के रंग-बिरंगे कलात्मक कपड़ों की सराहना की थी, तो वहीं सिंध में छपने वाले फूलदार वस्त्रों की तारीफ।



ठप्पे से छपाई करती एक महिला



चादर पर सांगानेरी छपाई

कपड़ों पर पहले हाथों से ही छपाई की जाती थी। तत्पश्चात लकड़ी के ठप्पों से छपनेवाले बहुरंगी कपड़े सत्रहवीं सदी में डच, पुर्तगाल, फ्रांस आदि मुल्कों के व्यापारियों के लिए आकर्षण का केंद्र बने। इसलिए नहीं कि वे केवल आकर्षक ही थे, बल्कि यहां के बने अद्‌भुत डिजाइनों वाले सूती कपड़े यूरोपीय देशों की जलवायु और वहां के रहन-सहन के मुताबिक अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए थे।

भारत में अंग्रजों के शासनकाल के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी हाथों से छपे वस्त्रों का भारी मात्रा में निर्यात करती थी। इन कलात्मक कपड़ों के निर्यात से ईस्ट इंडिया कंपनी को बेशुमार आय होती थी।

विश्व के कई मुल्कों ने यहां के वस्त्रों को ऊंची कीमतों पर मंगवाना प्रारंभ कर दिया है। इससे न केवल हमारे देश को विदेशी मुद्रा की आय होने लगी है, बल्कि हजारों लोगों की रोजी-रोटी भी चल रही है।

विदेशों में लगनेवाले भारत महोत्सवों आदि में भी लकड़ी के ठप्पों की मदद से हाथों से वस्त्रों की छपाई करनेवाले कुशल कारीगरों को सरकार की ओर से अलग-अलग मुल्कों में भेजा जाता है, इसलिए कि विदेशी मुद्रा की आय का मजबूत स्रोत बनी यह कला दुनिया में सदा-सदा के लिए छाई रहे।

—कन्हैया अगनानी



संकट में कठपुतलियां

सबसे पहले कठपुतलियां किसने बनायी और ये किसके इशारों पर नाचीं, यह बहस एवं शोध का विषय है। लेकिन कठपुतली कला सदियों से चली आयी है, इस बारे में कोई दो राय नहीं है। आज भले ही कठपुतली कला समय के हाथों की कठपुतली बनी है, लेकिन पुराने समय में मनोरंजन की एक समृद्ध परम्परा कठपुतलियों से जुड़ी रही है। विश्व के तकरीबन हर देश में इस प्राचीन लोककला का अस्तित्व रहा है, और कठपुतली-संसार को विभिन्न नामों से पुकारा गया है। महाभारत में कठपुतली कला के लिए 'रूपजीवन' शब्द का उपयोग किया गया है। संस्कृत ग्रंथों में कठपुतली को 'पुत्तुल कला' कहा गया है। अंग्रेजी में इसे 'पपेट शो' का नाम दिया जाता है।

कुछ विद्वान जहां कठपुतली कला को यूरोप की देन मानते हैं, तो कुछ विद्वानों का मत है कि कठपुतली खेल की उत्पत्ति भारत में हुई, और यह खेल फिर यहां से अन्य मुल्कों में गया। प्रमुख विद्वान डा० पिशेल का मानना है कि कठपुतलियों का चलन भारत में ही हुआ। यहीं से यह कला एवं इसकी पौराणिक कथाएं दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में फैली। आज रूस, चेकोस्लोवाकिया, ब्राजील, चीन, और जापान में कठपुतली कला न केवल जिंदा है, बल्कि इस कला में नये-नये प्रयोग भी हो रहे हैं।

चेकोस्लोवाकिया का विख्यात 'मैक्सिम गोर्की थियेटर' तो कठपुतली कला का स्वर्ग कहा जाता है। वियतनाम का 'जल पुत्तल थियेटर' पुत्तुल कला का मक्का माना गया है। इसी तरह ब्राजील की कठपुतली कला भी काफी नाम कमा रही है। यूरोप में तो कठपुतली कला को रंगमंच से भी जोड़ा गया है।

भारत में कठपुतली कला का इतिहास बहुत पुराना है। पौराणिक ग्रंथों में इसका जिक्र कई बार आया है। विक्रमादित्य का 'सिंहासन बत्तीसी' तो कठपुतलियों का विश्व विख्यात आख्यान है। 'सिंहासन बत्तीसी' की ३२ पुतलियां रात को अपने मोहक नृत्य से सम्राट को रिझाती थीं। पंचतंत्र में भी पुतलियों का उल्लेख कई जगह आया है। यह पुतलियां इंसानी करतब दिखाने के लिए मशहूर थीं। कुछ विद्वान कठपुतली कला को वेदों के समय का मानते हैं। 'वीरकरीता' नामक प्राचीन ग्रंथ में एक जगह उल्लेख है कि पार्वती के पास एक ऐसी मोहिनी पुतली थी, जिसे उन्होंने भगवान शिव से छिपाकर रखा था। इसके अलावा भारतीय साहित्य में भी कठपुतली कला का वर्णन मिलता है। सिंधु घाटी की सभ्यता से मिले अवशेषों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि भारत में इस कला का प्रचलन हजारों वर्षों से रहा है।

विद्वानों की धारणा है कि भारत में इस प्राचीन लोक कला का उद्‌गम स्थल राजस्थान है। राजस्थान को अनेक लोककलाओं की जननी माना जाता है। विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि कठपुतली कला राजस्थान से ही विदेशों तक गयी। आज भी राजस्थान के कठपुतली नचानेवाले कलाकार इस कला में सिद्धहस्त माने जाते हैं। राजस्थान के अलावा उड़ीसा, तमिलनाडु, मैसूर, आंध्र प्रदेश, केरल, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल की कठपुतली

कला भी काफी नाम कमा चुकी है। इनमें से हर प्रांत की कठपुतली कला भी अपनी अलग शैली व पहनावा है।

डोरी से चलनेवाली पुतलियों की परम्परा तमिलनाडु, राजस्थान, मैसूर, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश में प्रचलित है, लेकिन उंगलियों पर चलनेवाली पुतलियों की परम्परा अब केरल, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल तक ही सिमटकर रह गयी है। चमड़े की पुतलियों का छायानाटक केरल, मैसूर और उड़ीसा में देखा जा सकता है। छायानाटकों का विषय भी पौराणिक महाकाव्यों पर आधारित प्रसंग है।

सभी शैलियों में पुतलियों की निर्माण व संचालन प्रक्रियाएं अलग-अलग होती हैं। राजस्थान की कठपुतलियां काठ के टुकड़े से बनी होती हैं, लेकिन इनके हाथ कपड़े के बनाकर जोड़ दिये जाते हैं। इन कठपुतलियों ने लंबे लटकते लहंगे पहन रखे होते हैं और इन्हें सिद्धहस्त हाथों से जब राजस्थानी कलाकार नचाते हैं, तो पलकें झपकना भूल जाती हैं। सिंहासन बत्तीसी, पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह, अमर सिंह राठौर, राजा विक्रमादित्य सिंह, अकबर के किस्से व ऐतिहासिक प्रेम-कहानियां और पौराणिक कथाएं इन कठपुतली कलाकारों के पसंदीदा विषय रहे हैं।

कुछ विद्वान दस्ताना पुतलियों को आधुनिक कठपुतलियों का जनक मानते हैं। ये पुतलियां दस्तानों की तरह हाथों में पहनी जाती हैं। दोनों हाथों की पुतलियों के अलग-अलग नाम होते हैं। ये शैली आमतौर पर केरल, उड़ीसा व प० बंगाल में प्रचलित है। केरल में तो दस्ताना पुतली के कथानक कथकली नाटकों के ही कथानक होते हैं, जबकि उड़ीसा में इसका कथानक राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग पर आधारित होता है। बम्बोलेटम पुतलियां भारत की सबसे बड़ी कठपुतलियां मानी जाती हैं। इन पुतलियों को डोर द्वारा संचालित किया जाता है। आमतौर पर इन कठपुतलियों की लंबाई तीन फुट होती है, लेकिन कहीं-कहीं तो आदमकद पुतलियां भी देखने को मिलती हैं। अगर पुतलियों की शैली की बात की जाये, तो छाया पुतलियों के संसार की प्राचीनतम शैलियों में से एक माना जाता है। इन पुतलियों पर कृत्रिम प्रकाश फेंककर उनकी छाया से चूंकि खेल दिखाया जाता है, अतः इस खेल का नाम ही छायापुतली पड़ गया है। इंडोनेशिया में इस प्रकार की कठपुतली कला ही प्रचलित है।

समय के साथ-साथ कठपुतली कला में कई नये प्रयोग हुए हैं। नाटकों में भी कठपुतली कला का इस्तेमाल किया गया है। यूरोप के कई देशों में तो कठपुतली नाट्य इतने प्रभावी और लोकप्रिय हुए हैं कि इन नाट्यों के आयोजन के दौरान हॉल में तिल रखने की जगह नहीं रहती।

कठपुतली कला के जनक माने जानेवाले भारत में इस प्राचीन कला की स्थिति संतोषजनक नहीं है। एक राजस्थानी कठपुतली कलाकार शामपाल भट्ट बड़ी निराशा से कहता है कि टेलीविजन संस्कृति के बढ़ते प्रभाव से कठपुतली कला दम तोड़ने के कगार पर आ खड़ी हुई है।

भट्ट विदेशों में भी कठपुतली शो दे चुका है। उसका कहना है कि इस भारतीय प्राचीन लोककला के विदेशी दीवाने हैं, हमें वे सिर-आंखों पर बैठाते हैं, लेकिन अपने ही मुल्क में हमारी यह कला बेमानी और उपेक्षित होती जा रही है, ऐसे में हम कब तक अपनी रोजी-रोटी के लिए इस कला पर आश्रित रहेंगे।

शामपाल भट्ट की तरह अनेक कठपुतली कलाकार बेझिझक स्वीकार करते हैं कि उनकी कला समय के हाथों कठपुतली बनकर रह गयी है और इशारों पर नाचने वाली निर्जीव कठपुतलियां भी हमसे यह सवाल करती दिखती हैं, कि कब तक आपके हाथों में हमारी डोर रहेगी?

आज कठपुतली कला को संरक्षण दिये जाने की आवश्यकता है। अगर ऐसा न हुआ तो इस कला के बचे-खुचे फनकार भी जीवनयापन के लिए अन्य धंधे अपना लेंगे, और कभी इतिहास की पुस्तकों में पढ़ने को मिलेगा कि भारत में एक प्राचीन लोककला थी और उसका नाम था—कठपुतली।

—परमजीत कौर बेदी

व क्त के साथ-साथ मुझे किस्मत से शिकायत बढ़ती जा रही थी। मेरी किस्मत में क्लर्की लिखी थी, और क्लर्की भी ऐसे विभाग की, जहां ऊपर की आमदनी का सवाल ही नहीं था। सूखी तनख्वाह में गुजारा हो रहा था। वह तो यह कहिए कि मुझ पर वह कहावत चरितार्थ होती है, 'जोरू न जाता, अल्लाह मियां से नाता', वरना तनख्वाह में गुजारा मुश्किल हो जाता। अकेला था। अतः शानदार कपड़े बनाने का मौका मिल जाता था। चचा की कोठी से निकलता था, तो देखने वालों पर रोब भी पड़ता था।

मेरे वालिदैन का इंतकाल मेरे बचपन में ही हो गया था। मैं इतना छोटा था कि मुझे अपने मां-बाप की शक्ल भी याद नहीं। चचा की कोई औलाद नहीं थी, इसलिए मैं यतीमखाने में पलने से बच गया और चची ने मुझे गोद ले लिया। बचपन में उन्होंने मेरे नाज भी उठाये होंगे। मेरी अच्छी तरह देखभाल भी की होगी, लेकिन जब मैं दस साल का हुआ, तो किस्मत मुझ से रूठ गयी। चची की गोद हरी हो गयी। जब अपनी औलाद हो गयी, तो मेरी जरूरत खत्म हो गयी। उनकी अल्लाह ने ऐसी सुनी कि एक-एक करके चार औलादें हो गयीं। हर औलाद के बाद मैं उनकी ममता की नजरों से ओझल होता चला गया। चचा की जिद से मजबूर हो कर उन्होंने

जिन्हें मुहब्बत नहीं मिलती

-जहीर अहमद

"इस गुनाह का प्रायश्चित यही है कि तुम अपनी बीवी को कुबूल कर लो। देख लो, जिन्हें मुहब्बत नहीं मिलती, उनका हाल यह हो जाता है।"



मुझे घर से तो नहीं निकाला, लेकिन नौकर से ज्यादा अहमियत न दे सकीं। पहले मैं घर के बच्चों की तरह सोता था। फिर उन्होंने मेरे लिए घर से अलग, लॉन में एक कमरा बनवा दिया। वह कमरा घर के चौकीदार के बराबर था, मानों उन्होंने अब मुझे बाकायदा नौकर स्वीकार कर लिया था। मुझे याद है, चचा ने विरोध किया था, लेकिन चची की जिद के आगे मजबूर हो गये थे।

मैं छोटा था, लेकिन अकेले कमरे में सोने पर मजबूर हो गया था। दिन-रात चची और उनके बच्चों की सेवा में व्यस्त रहता था। यही मेरी नौकरी थी। चचा घर पर होते, तो अलबत्ता कुछ आराम मिल जाता था। उन्हें दिखाने के लिए चची कुछ नरमी से बात कर लिया करती थीं। मैं चची से डरता भी बहुत था, इसलिए कभी चचा से उनकी शिकायत नहीं की। चचा शायद यही समझते रहे हों कि मैं मजे में हूं, या कम-से-कम इतनी तकलीफ में नहीं कि शिकायत की नौबत आये।

इस बेरहम रवैये के बावजूद चची ने मेरी पढ़ाई का विरोध नहीं किया। इसी लिए उन्होंने मेरे मैट्रिक कर लेने के बाद मेरी पढ़ाई से हाथ उठा लिये। मुझे याद है कि इस बात पर चचा से उनका जबरदस्त झगड़ा हुआ था। बात यह थी कि चचा उनसे उम्र में १५ बरस बड़े थे, फिर यह कि वह बहुत दौलतमंद घराने की थीं। सच्ची बात यह है कि चचा के पास जो कुछ था, उन्हीं का दिया हुआ था। उनकी दौलत ही से चचा ने अपना कारोबार जमाया था। यही वजह थी कि चचा उनसे झगड़ तो लेते थे, लेकिन होता वही था, जो चची चाहती थीं। इस झगड़े की समाप्ति भी इस फैसले पर हुई कि अब मुझे आगे नहीं पढ़ना है। प्रतिरोध की शक्ति मुझ में भी नहीं थी और फिर पढ़ने का मुझे कोई ऐसा शौक भी नहीं था, इसलिए मैंने जिद भी नहीं की। मैं इसी पर संतुष्ट था कि मुझे खाने को मिल जाता है, पहनने को मिल जाता है। मैं चची के बच्चों को नहलाने के लिए बाहर ले जाता। उनकी जरूरतों का खयाल रखता। इसके बदले में मुझे रहने-खाने का ठिकाना मिला हुआ था।

चचा मेरी इस हालत को देखते और कुढ़ते थे। वह जब अपनी शानदार गाड़ी में बैठने लगते और चची के हुक्म पर मैं उनकी गाड़ी के शीशे साफ करता, तो उन्हें कतई अच्छा नहीं लगता। उनके अपने बच्चे जब कीमती कपड़े पहनते और मेरे बदन पर मामूली कपड़े होते, तो वह मुझसे आंखें चुराने लगते। मुझे उन दिनों इतनी समझ तो थी नहीं कि मैं उनकी बातों का कोई जवाब देता, लेकिन यह एहसास होने लगा था कि मेरे साथ ज्यादती हो रही है।

एक दिन मैं अपनी कोठरी में सो रहा था कि चचा आ गये। उन्हें शायद उसी समय मौका मिला था, मुझसे बात करने का, "मैंने तेरे लिए नौकरी का बंदोबस्त किया है।" उन्होंने कहा, मैं समझा कि अब मुझे किसी और कोठी में काम करना पड़ेगा।

"मैं किसी और बंगले में काम नहीं करूंगा, मुझे तनख्वाह नहीं चाहिए।" मैं रोने लगा।

"मेरे बच्चे, मैं तुझे किसी बंगले पर नहीं भेज रहा हूं। मैंने तेरे लिए एक दफ्तर में नौकरी की बात की है। मुझे अच्छा नहीं लगता कि अपने ही घर में तुझे नौकर की शक्ल में देखूं।"

"मैं आफिस में काम कर सकता हूं?" मैंने खुश होते हुए कहा था।

"क्यों नहीं कर सकते।"

"मगर मैंने तो सिर्फ मैट्रिक पास किया है।"

"तो क्या हुआ। दो-चार महीने काम करोगे, सब सीख जाओगे।"

चचा का अपना बिजनेस था, अपना आफिस था। वह मुझे अपने आफिस में रख सकते थे। मुझे बाद में मालूम हुआ कि चची ने विरोध किया था। उनके खयाल में चचा के बिजनेस पर सिर्फ उनके बेटों का हक था, चाहे नौकरी ही क्यों न हो।

मेरी जिंदगी का वह बेहतरीन दिन था, जब मैं पहली बार आफिस गया। मैं सोच रहा था कि जिस प्रकार आदमी आदमी में अंतर होता है, उसी प्रकार नौकरी नौकरी में भी कितना अंतर होता है। मैं जब पहले दिन कुर्सी पर बैठा, मेज पर फाइलें रखी हुई देखीं, और मुझसे बड़ी उम्र के चपरासी ने मुझे सलाम किया, तो मैं किसी और ही दुनिया में पहुंच गया। चपरासी ने मेरी मेज साफ की। यह पहला मौका था, जब मेरा काम किसी और ने किया था।

दफ्तर की छुट्टी हो गयी थी, लेकिन मेरा जी नहीं चाह रहा था कि मैं कुर्सी से उठूं, लेकिन जाहिर है, अकेला तो नहीं बैठ सकता था। उठा भी और बस में लटककर घर भी आया।

"पंखे बहुत गंदे हो गये हैं। कपड़ा उठाओ और सभी पंखे साफ करो।" चची जान ने कहा और मैं पंखे साफ करने खड़ा हो गया।

यह और इस जैसे अन्य काम रोजमर्रा के नियम थे, लेकिन आज मुझे काम करते हुए वहशत हो रही थी। बार-बार वह चपरासी याद आ रहा था, जिसने बड़े आदर से सलाम किया था और मेरी मेज साफ की थी। रात के खाने पर जब मुझे सिर्फ इसलिए खड़ा होना पड़ा कि जिसे प्यास लगे, मैं उसे पानी पेश करूं, तो मुझे दफ्तर का चपरासी फिर याद आ गया।

दूसरे दिन मैं दफ्तर गया और चपरासी ने पानी का गिलास पेश किया। मैं अजीब कशमकश में गिरफ्तार हो गया। यह मैं हूं या वह मैं हूं, जो घर पर नजर आता हूं? अपने घर में तो सभी काम करते होंगे। चची अगर मुझसे काम कराती हैं, तो क्या हुआ। उन्होंने मुझे पाला भी तो है। उन्होंने मेरे कितने काम किये होंगे। अब मेरी बारी है। पाला तो उन्होंने अपने बच्चों को भी है, लेकिन उनको तो हिल कर पानी भी नहीं पीने देतीं। फिर मैं यह सोच कर आश्वस्त हो गया कि अपने और दूसरों के बच्चों में कुछ तो अंतर होता होगा।

मैं बड़ी लगन से दोनों नौकरियां साथ-साथ कर रहा था। दफ्तर की भी, घर की भी।

चचा की कोशिशों से मेरी जिंदगी में एक परिवर्तन और आ गया था। मैं नौकरों के कमरे से उठकर घर के एक कमरे में पहुंच गया था। चचा ने बड़ी होशियारी से मेरा कमरा अपने ड्राइवर को दिलवा दिया और मुझे घर की दूसरी मंजिल पर कमरा दे दिया।

ईमानदारी की बात यह है कि चची ने मेरी तनख्वाह पर कभी नजर नहीं रखी। जो तनख्वाह मुझे मिलती थी, वह मैं अपने ऊपर ही खर्च करता था। एक लिहाज से बड़े ठाठ की जिंदगी बिता रहा था।

समय के साथ-साथ चची के रवैये में परिवर्तन आता चला गया। अब उनकी नजर में मैं नौकर तो नहीं था, लेकिन गरीब रिश्तेदार फिर भी था। उनके बच्चे भी मुझे उपेक्षा ही की नजर से देखते थे। अलबत्ता बाहर वाले समझते थे कि मैं चचा के पैसों पर ऐश कर रहा हूं। एक यही लालच था, जो मुझे उस घर में रखे हुए था। मैं किराये का मकान लेकर रह सकता था, लेकिन फिर यह बाहरी शानो-शौकत खत्म हो जाती। मैंने निश्चय कर लिया था कि चची हाथ पकड़कर निकाल दें, तो अलग बात है, वरना मैं यह घर हरगिज नहीं छोड़ूंगा।

मेरी उम्र अब पच्चीस साल की हो गयी थी। मेरी जवानी चची के लिए ईर्ष्या का कारण बन गयी थी। मैं अब कमजोर नहीं था कि वह मुझे अपने इशारों पर नचा सकें, इसलिए मेरी तरफ नफरत से देखकर अपना गुस्सा प्रकट किया करती थीं। यह महज उनका भय था, वरना मैं अंदर से अब भी उतना ही कमजोर था।

मैंने बचपन से जवानी तक किसी को अपनी तरफ मुहब्बत से देखते हुए नहीं देखा था। जिस शख्स की जिंदगी मुहब्बत से इतनी खाली हो, वह या तो बागी बन जाता है या बुजदिल। मैं बुजदिल बन गया था। मुझमें वह हिम्मत ही नहीं रही थी, जो आगे बढ़ने के लिए जरूरी होती है।

बुजदिल और कमहिम्मत लोग किसी शार्ट-कट की तलाश में रहते हैं। मैं भी अपनी तरक्की के लिए किसी चमत्कार की प्रतीक्षा में रहता था। चचा की दौलतमंद जिंदगी मेरे सामने थी। समुद्र मेरे सामने था, लेकिन मुझे एक बूंद भी मुहैया नहीं थी। मैं चाहता था कि मैं भी सुखदायक जिंदगी बिताऊं, लेकिन मुझे कोई रास्ता नहीं सूझता था। यह फलसफा बड़ा अजीब लगता था कि तकदीर में जो कुछ होता है, मिलता है, लेकिन तकदीर बदलने के लिए जिस अमल की जरूरत होती है, उसकी हिम्मत भी मुझे में नहीं थी। मैं इस इंतजार में था कि तकदीर अपने आप बदल जायेगी। चचा की मिसाल मेरे सामने थी। वह भी मेरी तरह गरीब थे। चचीजान बड़े घर की थीं। चचा ने उनसे शादी की और अपनी जिंदगी को बदल लिया।

सोचते-सोचते मैं भी इसी नतीजे पर पहुंचा कि कि कोई सहारा ही मुझे सहारा दे सकता है। खयाल अच्छा, लेकिन सवाल यह था कि यह रंगीन सहारा मिलेगा कहां? मेरी तो किसी लड़की से दोस्ती भी नहीं थी। अब एक ही रास्ता था कि मैं चचा से अपनी शादी के लिए कहूं। मुझ में हिम्मत ही नहीं थी और फिर यह तो बेशर्मी की बात थी कि मैं अपनी शादी की बात उनसे करता। ऐसी बात चची से की जा सकती थी, लेकिन वह चची कम, मालिक ज्यादा नजर आती थीं।

उन दिनों मुझ पर अज़ीब धुन सवार थी। वैवाहिक विज्ञापन बाकायदगी से पढ़ रहा था। दो-एक रिश्तों के लिए खत भी लिखे, इंटरव्यू भी दिये, लेकिन बात नहीं बनी।

इस तरफ से मायूस होने के बाद मैंने दूर-दराज के रिश्तेदारों की सूची बनानी शुरू की, कि शायद कोई मालदार घराना नजर में आ जाये। उस तरफ भी मायूसी ही मायूसी थी। जितने रिश्तेदारों के हालात मुझे मालूम थे, मेरे स्तर से भी कम थे। इन रिश्तेदारों से मुझे यूं ही नफरत थी। किसी ने कभी आकर पूछा तक नहीं था कि मैं किस हाल में हूं। चचा के हालात बदल गये थे, इसलिए वह भी किसी से मिलते-जुलते नहीं थे। मुझे अपने रिश्तेदारों के बारे में पूरी मालूमात भी नहीं थी। यह मालूमात चचा से मिल सकती थी। मैंने उनसे जिक्र किया। उनकी जुबानी कई रिश्तेदारों से मेरा गोपनीय परिचय हो गया।

मैंने अपनी नफरत को बाला-ए-ताक रखा और ऐसे रिश्तेदारों की तलाश में निकल पड़ा, जिनकी बेटियां मुझे दौलतमंद बना सकें।

मैंने रिश्तेदारों के घरों की परिक्रमा शुरू कर दी। मुझे बहुत जल्दी मालूम हो गया कि जो हालात मेरे हैं, वही उनके है। सब-के-सब औसत दर्जे के खुशहाल थे। मुझे तो किसी और ही दुनिया की तलाश थी।

मैं किसी भूले हुए सपने की तरह सब को याद आने लगा था। हर जगह मेरा स्वागत हो रहा था। दफ्तर के चपरासी की तरह सब मेरी सेवा के लिए प्रयत्नशील थे। जिन घरों में लड़कियां थीं, वहां तो मेरे स्वागत का अंदाज़ ही कुछ और था।

ऐसे ही एक घर में जहांआरा को मैंने देखा। उसकी आंखें मुझे देखते ही चमकने लगी थीं। उसके दो भाई सऊदी अरब में थे। मुझे उम्मीद थी कि वे अपनी बहन की खातिर मेरी मांगों को नजरअंदाज़ नहीं कर सकते। लिहाज़ा मैंने जहांआरा के घर जाना शुरू कर दिया। उस घर से मेरा करीबी रिश्ता था, इसलिए एतराज़ का सवाल ही पैदा नहीं होता था। मैं अपना खयाल प्रकट करने में जल्दबाजी करना नहीं चाहता था। मैं चाहता था, अच्छी तरह देख लूं कि वे लोग कितने पानी में हैं।

उस घर में मेरा आना-जाना बढ़ा, तो जहांआरा मुझ पर मर-मिटी। वह मासूम लड़की नीयत को जांचे बगैर मेरे इश्क में गिरफ्तार हो गयी। मैंने भी उसके शौक को हवा देने के लिए सच्चे आशिक का रूप धारण कर लिया था। उसकी मां इस खेल को देख रही थीं, लेकिन वह बेटी की मां थीं। उन्हें मेरी सूरत में एक अच्छा रिश्ता मिलने की उम्मीद हो गयी थी, लिहाज़ा वह ख़ामोश थीं।

मैंने एक खास मकसद के तहत जहांआरा से मुहब्बत जताई थी, लेकिन उसकी सहृदयता में कुछ ऐसा प्रभाव था कि मैं अपने दिल को उसके लिए धड़कता हुआ महसूस करने लगा। कभी सोचता, वह जिस हाल में भी है, मुझे कुबूल है। कभी सोचता, जब मकसद ही पूरा नहीं हुआ, तो क्या फायदा। कभी मुहब्बत भारी पड़ जाती, कभी मकसद।



मैं किसी भूले हुए सपने की तरह सब को याद आने लगा था। हर जगह मेरा स्वागत हो रहा था। दफ्तर के चपरासी की तरह सब मेरी सेवा के लिए प्रयत्नशील थे। जिन घरों में लड़कियां थीं, वहां तो मेरे स्वागत का अंदाज ही कुछ और था।

बहुत दिन से दोनों ओर से एक अज्ञात-सा मौन छाया हुआ था। मैं कुछ पूछते हुए डरता था। वह कुछ कहते हुए हिचकिचा रही थी। आखिरकार उसी ने यह मौन तोड़ा, "हम कब तक यूं गैरों की तरह मिलते रहेंगे?"

"जब तक हम अपनों की तरह नहीं मिलने लगते।"

"वह दिन कभी आयेगा भी? अब तो मुझसे आपकी जुदाई बरदाश्त नहीं होती।"

"सऊदी अरब में तुम्हारे दो भाई हैं न?" मैंने बात की दिशा बदलते हुए कहा।

"हां, मगर यह कौन-सा मौका है यह बात पूछने का?"

"यही तो मौका है, जहांआरा। मैं अपनी थोड़ी-सी तनख्वाह पर तुम्हें कैसे खुश रख सकता हूं?"

"मैं तुम्हारे साथ हर हाल में गुज़ारा करूंगी। मुझे सिर्फ तुमसे गर्ज़ है, तुम्हारी अमीरी-गरीबी से नहीं!"

"लेकिन मुझे है। भाइयों की दौलत तुम्हारे काम नहीं आयेगी, तो किसके काम आयेगी?"

"ज़हीर, इस मामले में तुम मुझे बदनसीब ही समझो। मेरे दोनों भाई बस इतना ही भेजते हैं कि जैसे-तैसे घर चल जाता है। मेरी हालत भी तुम से अलग नहीं। तुम्हारे चचा के पास कितनी दौलत है, मगर तुम क्या हो? सबसे बड़ी दौलत तो मुहब्बत होती है, जो हम एक-दूसरे से करते हैं।"

मैंने उस समय यह कहना उचित नहीं समझा कि दौलत के बगैर वह मुझे कुबूल नहीं है, बल्कि अपनी बात ऊंची रखने के लिए यही प्रकट किया कि यह बातें मैं उससे मजाक में कह रहा था, वरना किसी की दौलत से मुझे क्या गर्ज़।

"मुहब्बत कहीं दौलत की मोहताज होती है।" मैंने उससे कहा था।

"तुम कितने अच्छे हो, जहीर," जहांआरा ने मेरे गले में बांहें डालते हुए कहा, "हर चीज मुकद्दर से मिलती है। हमारी किस्मत में ऐश होगा, तो किसी तरह भी मिल जायेगा। नहीं होगा, तो नहीं मिलेगा। इंसान कितनी ही कोशिश कर ले, मिलेगा वही, जो मुकद्दर में होगा।"

मैं उसकी दलील से सहमत नहीं था, लेकिन मैं बहस करने तो आया नहीं था। मैंने उसकी हां में हां मिलायी और वहां से उठ गया। मुझे अफसोस हो रहा था कि जहांआरा के चक्कर में कितने दिन बरबाद हो गये।

मैंने इस सफर में वापसी का रास्ता तलाश नहीं किया था। सोचा ही नहीं था कि वापसी भी होगी। मैं तो यही समझकर आगे बढ़ता रहा था कि जहांआरा मुझे इतना चाहती है कि मेरी हर मांग की पूर्ति के लिए अपने भाइयों से बात करेगी। मुझे यह मालूम नहीं था कि उसके भाई हाथी के दांत की तरह हैं।

वापसी क्या मुश्किल थी, लेकिन जहांआरा से मिलने रहने की आदत-सी पड़ गयी थी। एक दिन उससे मिलने नहीं जाता था, तो जैसे एक सदी गुजर जाती थी। मैंने बहुत चाहा कि जहांआरा से एकदम संबंध-विच्छेद कर लूं, लेकिन उसी समय मेरे अंदर स्वार्थ और प्रेम के बीच जंग छिड़ गयी। मेरे स्वार्थ पर चोट पड़ी थी, लेकिन प्रेम का तकाज़ा था कि मैं जहांआरा से मिलता रहूं। मैं उस से शादी नहीं कर सकता था, लेकिन मिलते रहने में क्या हर्ज है। मैंने उसके घर जाना शुरू कर दिया। वह खिल उठी। वह यही समझी हुई थी कि उसकी मुहब्बत जीत गयी। जहांआरा की मुहब्बत बार-बार शादी का तकाज़ा कर रही थी। अब तो उसकी मां भी दबे शब्दों में तकाज़े करने लगी थी। मैंने तंग आकर अपनी मुहब्बत को लालच की छुरी से कत्ल कर दिया। मुझे किसी ऐसी लड़की की तलाश थी, जो

दौलतमंद बाप की बेटी हो। जहांआरा मेरे मतलब की नहीं थी, इसलिए मैंने आंखें फेर लीं।

जहांआरा इतनी आसानी से मुझे नहीं भुला सकती थी। उसने कुछ दिन तो इंतज़ार किया, फिर अचानक मेरे घर आ गयी। वह पहली रिश्तेदार थी, जो उस घर में आयी थी। चची उसे क्या जानें, और जब उसने कहा कि वह ज़हीर की रिश्तेदार है, तो वह बिलकुल ही हत्थे से उखड़ गयीं। उन्होंने उसे ऊपर भेज दिया। मैं अपने कमरे में था कि वह आ गयी। उसकी हालत ऐसी हो रही थी जैसे बरसों बाद मैंने उसे देखा हो। मुझे देखते ही उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। पहली नज़र में तो मैं घबरा गया। मैं समझा, किसी हादसे की सूचना लेकर आयी है।

"खैरियत तो है?" मैंने पूछा।

"तुम्हें अगर मुझसे मुहब्बत होती, तो यह पूछने की जरूरत न पड़ती। तुम्हें खुद ही एहसास होता कि तुम्हारी जुदाई में मुझ पर क्या गुज़र रही होगी।"

"तुम पागल तो नहीं हो। मैं चंद दिनों तुमसे नहीं मिला, तो तुमने यह हालत बना ली। जरूरी तो नहीं कि मैं सब काम छोड़कर तुम्हारे पास बैठा रहूं।"

"इससे पहले आखिर आते ही थे।"

"जब्र वक्त होगा, अब वक्त नहीं है।"

"वक्त की बात नहीं है। तुम्हें यह मालूम हो गया है कि मैं गरीब हूं।"

"जो बात मैं नहीं कहना चाहता था, तुमने कह दी।"

"तकदीर से कहां तक भागोगे...किसी अमीर लड़की से शादी कर लो। वह गरीब निकले या गरीब हो जाये, तो क्या कर लोगे?"

"मैं तुमसे मुहब्बत कर सकता हूं, लेकिन शादी नहीं कर सकता।"

"मैं भी यही करूंगी, हालांकि मुझे यह भी नहीं करना चाहिए, लेकिन क्या करूं, दिल से मजबूर हूं। खुदा करे, आपको मेरी बद्दुआ न लगे।" उसने कहा और मुझे हैरान छोड़ कर कमरे से निकल गयी।

मैंने खुदा का शुक्र किया कि मुसीबत टली।

रात को चचा आये, तो चची ने अपना गुस्सा उतारा। यह झगड़े तो अकसर होते थे, इसलिए मैं इत्मीनान से बैठा था। मैं समझ रहा था कि उनका आपस का झगड़ा होगा, लेकिन जब मुझे बुलाया गया, तो मैं चौंका। मेरी छठी संज्ञा कह रही थी कि जरूर जहांआरा का मामला बीच में आया है।

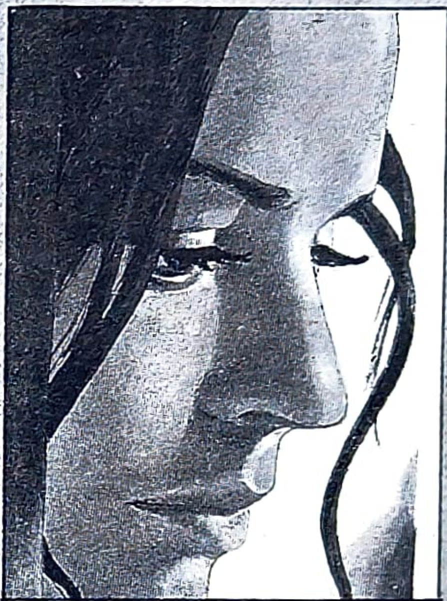
"तुम ही बड़ी मुश्किल से यहां रह रहे हो, अब तुम्हारे रिश्तेदार भी यहां आया करेंगे?" चची ने कहा।

"मेरा यकीन करें, चचीजान, मैंने उसे बुलाया नहीं था। वह खुद ही आयी थी।"

"इससे पहले तो किसी ने आकर नहीं झांका। तुमने ताल्लुकात बढ़ाये, तो आयी। मैं अपने घर में इन फकीरों को बरदाश्त नहीं कर सकती। आज एक आयी है, कल दूसरी कोई आ जायेगी।"

चचा ने भी मुझे समझाया कि हमारे गरीब रिश्तेदार इस घर में आते हुए अच्छे नहीं लगते। मुहल्लेवाले क्या सोचेंगे हमारे बारे में? मेरा खयाल भी यही था, इसलिए झगड़ा ज्यादा बढ़ा नहीं। बस मुझे यह वायदा करना पड़ा कि आइंदा किसी रिश्तेदार के घर नहीं जाऊंगा। यह वायदा करना मेरे लिए कष्टकारक नहीं था, क्योंकि रिश्तेदारों में कोई भी घर मेरे मतलब का नहीं था।

प्रकट में मामला खत्म हो गया था, लेकिन



हंसने से उसके गले में गड्ढा पड़ गया था। लगता था, अभी यह गढ़ा चिराग बनकर लौ दे उठेगा। हंसते-हंसते उसने गर्दन घुमाकर मेरी तरफ देखा और हंसी उसके होंठों पर जमकर रह गयी।

जहांआरा की याद मुझे रह-रह कर सता रही थी। उसकी बेइज़्ज़ती का खयाल आ रहा था। बिस्तर पर सोने के लिए लेटा, तो बेचैन हो गया। चचीजान के जुमले रह-रहकर याद आ रहे थे और गुस्सा बढ़ता जा रहा था। मुझसे बरदाश्त नहीं हो रहा था कि कोई जहांआरा को बुरा कहे। यह अजीब भावना थी, जिसे मैंने महसूस किया था।

जिस रास्ते पर चलना नहीं, उसके कोस क्या गिनना! मैं जहांआरा से मिलने के बजाय उसे भूलने की कोशिशों में व्यस्त रहने लगा। शाम का समय और छुट्टी का दिन खास तौर पर कठिन गुज़रते थे कि यही समय था, जब मैं जहांआरा से मिलने जाया करता था। समय बिताने के लिए शाम के वक्त मैं घूमने के लिए जाने लगा। कोई निश्चित मंजिल तो थी नहीं। यूं ही बेमकसद घूम-फिरकर समय बिता लेता था।

एक दिन टहलते हुए घर से बहुत दूर निकल गया। सामने कोई पार्क था। मैं पार्क में जाकर एक खाली बेंच पर बैठ गया। कुछ बच्चे उन फूलों के बीच तितलियों की तरह खेल रहे थे। मैं बड़ी उत्सुकता से उन निश्चिंत चेहरों को देख रहा था। सहसा मेरी नज़र एक बेंच की ओर उठ गयी। उस बेंच पर एक लड़की बैठी थी। उसके गाल गुलाब के फूलों की तरह सुर्ख थे। मैं सोच रहा था, अभी कोई तितली आयेगी, और उसके गालों पर बैठ जायेगी। फिर खयाल आया, अगर मैं उसके बराबर जाकर बैठ जाऊं, तो गुलाब की खुशबू से महक उठूंगा। इसी दौरान वह किसी बच्चे की किसी हरकत पर ज़ोर से हंसी। हंसने से उसके गाल में गड्ढा पड़ गया था। लगता था, अभी यह गढ़ा चिराग बनकर लौ दे उठेगा। हंसते-हंसते उसने गर्दन घुमाकर मेरी तरफ देखा और हंसी उसके होंठों पर जमकर रह गयी। फिर वह किसी और तरफ देखने लगी। मैं अभी तक उसी को देख रहा था। यह जरूर किसी दौलतमंद घराने की लड़की है, वरना चेहरे पर ऐसी ताज़गी नहीं होती। गरीबों के चेहरे तो अलम नज़र आ जाते हैं। अगर इससे किसी तरह दोस्ती हो जाये, तो शायद मैं अपनी स्कीम पर अमल कर सकूं। खयाल अच्छा था, लेकिन दोस्ती हो कैसे?

"मखमूर," तभी उसने किसी को आवाज़ दी, "चलो, खेल चुके। बहुत देर हो गयी!"

चार-पांच साल का एक बच्चा, जो अभी कुछ देर पहले घास पर कलाबाज़ियां खा रहा था, वही मखमूर था। वह अब उस लड़की की तरफ आ रहा था। मुझे उस लड़की के साथी की उम्र देखकर हंसी आ गयी, लेकिन फौरन ही मैं उदास भी हो गया। यह लड़की तो शादीशुदा है। शक्ल से तो शादीशुदा नहीं लगती। यह भी तो हो सकता है, यह उसका छोटा भाई हो। वह अब उठने ही वाली थी। उसने एक नज़र मुझ पर डाली। मेरी हिम्मत बढ़ी। मैं उसके नज़दीक पहुंच गया, "माशाअल्लाह, आपका बच्चा बहुत प्यारा है।"

"मेरा बच्चा," उसने हंसते हुए कहा, "मेरी तो अभी शादी भी नहीं हुई।"

"ओह! सॉरी, तो फिर...?"

"मेरे चचा का बेटा है। इसके साथ कभी-कभी यहां आ जाती हूं।" उसने कहा और आगे बढ़ गयी।

"इसका मतलब है, आप कल भी आयेंगी।"

"शायद!" उसने मेरी तरफ देखे बगैर कहा।

इससे आगे कोई और बात की भी नहीं जा सकती थी। मैंने उसके पीछे जाना मुनासिब नहीं समझा। अब दूसरे दिन तक मुझे इंतज़ार करना था, ताकि उसके बारे में और मालूमात हासिल हो सके।

दूसरे दिन मैं पार्क में पहुंचा, तो वह मुझसे पहले वहां बैठी हुई थी। उसी बेंच पर उदास, रंजीदा।

मुझ पर नज़र पड़ते ही उसने अपने चेहरे का रंग बदल लिया।

"मैं यहां बैठ सकता हूं?" मैंने शिष्टाचारवश पूछा। उसने कोई जवाब नहीं दिया, मैं फिर भी बैठ गया, "आपका भाई बहुत प्यारा है।"

"यह बात आप कल मुझे बता चुके हैं।" उसने कुछ इस अदा से कहा कि मुझे हंसी आ गयी।

"इसका नाम क्या है?"

"मखमूर!"

"बहुत अच्छा नाम है, और आपका?"

"शाइस्ता," उसने अनजाने में अपना नाम बता तो दिया, लेकिन फिर उसे एहसास हुआ, "आपने मेरा नाम क्यों पूछा?"

"आपसे जान-पहचान के लिए। हम दोनों जिस क्लास से ताल्लुक रखते हैं, वहां यह बुरा नहीं समझा जाता। क्या मैं आपको दोस्त समझ सकता हूं?"

"किसी की सोच पर पहरा तो नहीं लगाया जा सकता!"

"आप पढ़ती हैं?"

"मैंने इसी साल बी०ए० किया है।"

"आपके डैडी?"

"उद्योगपति हैं!"

"आपका मकान?"

"अभी यह बताने का वक्त नहीं आया।"

"मेरा नाम ज़हीर है। वालिद का इंतकाल हो गया है। उनकी दौलत का अकेला वारिस हूं। अपना बिज़नेस है। अकेला हूं। ठाठ से गुजर रही है।"

उसके बाद हम देर तक बातें करते रहे। उसकी बातों से जो तफ्सील मैंने निकाली, उसका खुलासा यह था कि उसका बाप बेहद दौलतमंद है। वह इकलौती बेटी है और बाप की लाडली है। उसका बाद उसकी कोई बात नहीं टालता। उसके बाप और चचा एक ही घर में रहते हैं। उसकी मां का इंतकाल हो चुका है। घर का पता उसने नहीं बताया, लेकिन मेरा अंदाज़ा था कि वह करीब ही कहीं रहती है, वरना बड़े घर की लड़की पैदल क्यों आती? उसके पास गाड़ियों की क्या कमी होगी!

मैंने अपने बारे में शाइस्ता से कई झूठ बोले थे। महज़ इसलिए कि वह अगर दोस्ती रखेगी, तो अपने बराबरवाले से रखेगी। अगर कभी जरूरत पड़ गयी, तो चचा की कोठी दिखा दूंगा। उसे यकीन आ जायेगा। दोस्ती पक्की हो गयी, तो हकीकत जाहिर भी कर दूंगा।

"आप तो अपनी गाड़ी पर आते होंगे?" उसने पूछा।

"अरे नहीं," मैंने हंसते हुए कहा, "इंसान को पैदल भी चलना चाहिए। इससे अगर एक तरफ सेहत ठीक रहती है, तो दूसरी तरफ उन गरीबों का एहसास भी दिल में पैदा होता है, जिन बेचारों के पास अपनी कार नहीं।"

"आपके खयालात बड़े नेक हैं। इसका मतलब है, आपको गरीबों का बहुत खयाल रहता है।"

"मेरा तो बस नहीं चलता, वरना मैं दुनिया के सब गरीबों को अपने घर में ठहरा लूं। फिर भी जो कुछ हो सकता है, उनके लिए करता हूं!"

"कल आप अपनी गाड़ी पर आइएगा!"

"वह क्यों?" मैंने घबराकर पूछा।"

"मैं भी तो गरीब हूं।"

"छोड़िए भी, क्यों मज़ाक करती हैं। एक-से-एक गाड़ी होंगी आपके पास।"

ज़ाहिर है, यह मज़ाक था। हम दोनों देर तक हंसते रहे। मैंने उसका ध्यान गाड़ी की तरफ से हटाने के लिए दूसरी बातें शुरू कर दीं। इतनी देर में वह बच्चा भी खेल से उकताकर उसके पास चला आया, जो उसके साथ आता था। कुछ देर बाद हम दोनों उससे बातें करते रहे और फिर चलने का समय आ गया। हम दोनों पार्क से बाहर आये। वह अपनी राह चल दी, मैं अपने रास्ते पर चल पड़ा।

घर पहुंचा, तो एक सुनहरा मौका मेरा इंतजार कर रहा था। चची के किसी रिश्तेदार की शादी थी, लिहाजा सब घर वाले दूसरे दिन हैदराबाद जानेवाले थे। यह लोग एक-दो दिन के लिए नहीं, बल्कि पूरे पंद्रह दिन के लिए जा रहे थे। इसका मतलब यह था कि आधे महीने के लिए पूरा घर मेरे अधिकार में था। दूसरे नौकरों पर बहरहाल मुझे यह तरजीह तो हासिल थी कि मैं उस घर के मालिक का भतीजा था।

चचा ने चलते-चलते अपने दफ्तर के कुछ काम मेरे सुपुर्द कर दिये और गाड़ी की चाबी भी दे दी। मैं सिर्फ एक दिन में शाइस्ता के सामने सुर्खरू हो जाऊंगा, मुझे उम्मीद नहीं थी। मैंने सोचा, अगर शाइस्ता यही देखना चाहती है कि मेरे पास गाड़ी है या नहीं, तो अब मैं उसकी यह ख्वाहिश भी पूरी कर सकता हूं।

शाम हुई, तो मैंने बड़े ठाठ से गाड़ी बाहर निकाली और पार्क पहुंच गया। वह रोज की तरह मेरा इंतजार कर रही थी। मुझे देखते ही खिल उठी।

"तुम कल गाड़ी के लिए कह रही थीं न।"

"हां, कह तो रही थी।"

"आज मैं गाड़ी में बैठकर हुज़ूर के पास आया हूं।"

"अरे! आप संजीदा हो गये, मैं तो मजाक कर रही थी।"

"मैंने सोचा, एक गरीब लड़की को अपनी गरीब-परवरी दिखा ही दूं।"

"इस अहद पर हमेशा कायम रहिएगा।"

"जिंदगीभर मुझे ऐसा ही पाओगी," मैंने बेअख्तियार उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, "आओ, कहीं चलते हैं।"

"मखमूर बातें करना जानता है, घर जाकर कह सकता है। वह तो कल भी अपनी मम्मी से कह रहा था कि एक अंकल रोज पार्क में मिलते हैं।"

"फिर...फिर क्या हुआ?"

"मैंने कह दिया, बेचारा कोई गरीब-सा आदमी है। मैंने दस का नोट क्या दे दिया, अब रोज सलाम करने आ जाता है।"

"आज कह देना, वह गरीब आदमी आज अपनी गाड़ी में बैठाकर दस का नोट वापस करने अपने घर ले गया था।"

"जी नहीं, मैं इतना बड़ा झूठ नहीं बोल सकती।"

"तो क्या हम पूरी जिंदगी इसी बेंच पर बैठकर गुजार देंगे?"

मैंने देखा, वह इस सवाल पर उदास हो गयी थी। मुमकिन है, कुछ कहती भी, लेकिन उसी समय मखमूर आ गया।

"अंकल, क्या आप गरीब हैं?" बच्चे ने विस्मय से मुझे देखते हुए कहा।

"हां, बेटा, बहुत गरीब।"

"आप तो इतने अच्छे कपड़े पहने हुए हैं। गरीब लोग तो फटे-पुराने कपड़े पहनते हैं।"

"हमें एक अमीर लड़की मिल गयी है, जो अच्छे-अच्छे कपड़े बनाकर देती है।"

"फिर शाइस्ता बाजी से दस रुपये क्यों लेते हैं?"

"वह तो हम अपने खर्चे-पानी के लिए लेते हैं।"

बच्चा आश्वस्त होकर एक बार फिर अपने खेल में मग्न हो गया।

"मैं कल आपके साथ घूमने चलूंगी।" शाइस्ता ने कहा।

"कल भी तो मखमूर तुम्हारे साथ होगा।"

"मैं कल कोशिश करूंगी कि अकेली आऊं।"

अब मुझे दूसरे दिन का इंतजार करना था।

गाड़ी भी मेरे पास थी और कोई पूछने वाला भी नहीं था। मैंने नौकरों से दफ्तर के काम का बहाना किया और ठीक दस बजे पार्क में पहुंच गया। शाइस्ता अपने वायदे की पक्की निकली। मुझे वहां पहुंचे कुछ ही देर हुई थी कि वह भी आ गयी।

मुझे यह देख कर ताज्जुब हो रहा था कि वह मेरे साथ गाड़ी में बैठ कर इतनी खुश हो रही थी, जैसे उसे ऐसे अवसर बहुत कम मिले हों। वह हर मंजर को बड़े विस्मय से तक रही थी। सबसे अधिक ताज्जुब मुझे उस समय हुआ, जब मैं उसे लेकर फाइव स्टार होटल में पहुंचा। वह वहां के बहुत-से मैनर से नावाकिफ थी। वह इतनी नर्वस हो रही थी कि किसी भी बड़े घर की लड़की से यह आशा नहीं की जा सकती थी। मुझे उसके मां-बाप पर गुस्सा आ रहा था, जिन्होंने दौलत होने के बावजूद उसे इन जगहों से अनभिज्ञ रखा था। वैसे मुझे इन बातों की कोई खास परवाह नहीं थी। मुझे तो एक दौलतमंद ससुराल चाहिए थी और वह अब मुझे मिलने वाली थी।

वापसी में उसे मैं अपने घर ले आया। उस पर रोब डालने का इस से बेहतर मौका नहीं मिल सकता था।

"यह है मेरा गरीबखाना।"

"आप इसे गरीबखाना कहते हैं?"

"इसलिए कि मैंने देखा नहीं है, लेकिन

दौलतखाना तो आपका होगा।"

"नहीं, आपकी कोठी बड़ी शानदार है।"

"मैं आपको अंदर ले कर जाता, लेकिन तमाम घरवाले हैदराबाद गये हुए हैं। नौकर देखेंगे, तो ख्वाहमख्वाह बातें बनाएंगे।"

"चलिए, फिर कभी सही।"

"इसका मतलब है, ऐसा आना-जाना लगा रहेगा।" मैंने कहा और वह शरमाकर रह गयी।

शाइस्ता फिर उसी पार्क के करीब गाड़ी से उतर गयी। वह मेरे कहने के बावजूद मुझे अपने घर लेकर नहीं गयी। मैंने भी उसकी मजबूरी को महसूस करते हुए अधिक आग्रह नहीं किया।

पंद्रह दिन पलक झपकते में बीत गये। इन पंद्रह दिनों में हमने बहुत-सा समय साथ बिताया। मुझे यह अंदाजा हो गया था कि अगर मैं शादी के लिए कहूंगा, तो शाइस्ता इनकार नहीं करेगी, लेकिन अब तक मैंने खुलकर इजहार नहीं किया था।

सोलहवें दिन चचा-चची आ गये। इसका मतलब यह था कि अब पैदल चलकर मुझे पार्क तक जाना पड़ता। इन पंद्रह दिनों में यह मैंने सोचा ही नहीं था। मुझे खेद हो रहा था कि इस फुरसत से फायदा उठाकर मैंने शाइस्ता से शादी की बात क्यों नहीं कर ली।

चचा को आये दो दिन हो गये थे और यह दो दिन मुझ पर इसलिए कयामत बनकर गुजर गये थे कि मैं शाइस्ता से मिलने नहीं जा सका था। दो दिन से बराबर यह हो रहा था कि मुझे किसी-न-किसी काम में उलझा दिया जाता था और मैं बेबस होकर रह जाता था। मुझे तो यह महसूस होने लगा था, जैसे बाकायदा मंसूबे के तहत मुझे रोका जा रहा है, लेकिन जब तीसरे दिन मुझे मौका मिला, तो मेरी गलतफ़हमी दूर हो गयी। अब मुझे शक हो रहा था कि मायूस होकर शाइस्ता ने आना ही न छोड़ दिया हो। मेरा यह शक भी गलतफहमी पर आधारित साबित हुआ, जब वह हमेशा की तरह उसी बेंच पर बैठी मिली। वह कुछ देर मेरी तरफ देखती रही, फिर उसकी आंखें छलक पड़ीं। उसने दोनों हाथों से अपना चेहरा छुपा लिया और सिसकने लगी।

"बेवकूफ लड़की, रो क्यों रही हो?" मैंने कहा।

"दो दिन से कहां थे? यही देखना चाहते थे न, कि आप नहीं आते, तो मुझ पर क्या गुजरती है?"

"मैं बीमार था भई! तुमने तो अपना फोन नंबर तक नहीं दिया।"

"खुदा खैर करे। आपकी खैरियत तक नहीं पूछी, और लगी आप पर शक करने।"

अब मुझे अपनी बात कहने का मौका मिल गया था।

"क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम दोनों को एक-दूसरे के टेलीफोन नंबर की जरूरत ही न पड़े। क्या हम दोनों एक नहीं हो सकते?" मैंने देखा, उसके चेहरे पर शर्म की सुर्खी उभर आयी थी, लेकिन वह चुप थी। मैंने फिर कहा, "क्या तुम मुझे अपने काबिल नहीं समझतीं?"

"आप मेरी मजबूरियां नहीं समझते।"

"मैं तुम्हारी हर मजबूरी को अपने अख्तियार से शिकस्त दे दूंगा। तुम मुझ पर विश्वास तो करो।"

"मेरे घरवाले चाहते हैं, मेरी शादी किसी दौलतमंद आदमी से न हो। वे समझते हैं, किसी गरीब लड़के से मेरी शादी होगी, तो वह मेरी कद्र करेगा और एहसानमंद रहेगा। है न अजीब-सी बात। मगर आप दौलतमंद हैं। हो सकता है, आप उनकी अपेक्षा पर पूरे न उतरें।"

मेरी मंजिल अपने आप नजदीक आती जा रही थी। मैं तो उससे शादी की बात करते हुए इसी लिए झिझक रहा था कि चची उसके घर रिश्ता लेकर जायेंगी, तो मेरी हकीकत खुलकर रहेगी। मैं तो यह सोचने लगा था कि मैं उसे कोर्ट-मैरिज के लिए तैयार करूंगा, लेकिन उसने तो खुद ही मेरा मसला हल कर दिया था। अब मेरी हकीकत खुल भी गयी, तो वह उसे मेरा बहाना समझेगी।

"इस में क्या मुश्किल है," मैंने कहा, "मैं थोड़ी देर के लिए गरीब आदमी का रूप धारण कर लूंगा। मैं तुम्हारे घर क्लर्क बनकर आऊंगा।"

"और आपकी वह कोठी...आपके घरवाले?"

"मैं तो यूं भी चचा-चची के साथ रहता हूं। वह कह देंगे कि उन्होंने रहम खाकर मुझे अपने घर रखा हुआ है। उनकी दौलत से मेरा कोई वास्ता नहीं। मैं तो एक दफ्तर में क्लर्क हूं।"

"शादी के बाद तो हकीकत खुल जायेगी।"

"जब शादी हो ही जायेगी, तो फिर हकीकत खुले या रहे, इस से क्या फर्क पड़ेगा। खैर, तो फिर भेजूं किसी को?"

"मैं जल्दी ही आपको बताऊंगी।"

"अब भी सोचने की जरूरत है?"

"मैं घर में जिक्र कर दूं, ताकि इनकार की गुंजाइश ही न रहे।"

बात माकूल थी, लिहाजा मुझे चुप होना पड़ा। उस रोज मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था। मैं भी चचा की तरह बड़े घर का दामाद बननेवाला था। मुझे अपने शानदार भविष्य की तस्वीर साफ नजर आ रही थी। बहुत दिन तकलीफें उठा लीं, अब चैन-ही-चैन मुहैया होनेवाला था।

रविवार का दिन था। मैं शाइस्ता के खयाल में रातभर जागता रहा था। शाम को होनेवाली बातचीत को कभी फैलाता, कभी समेटता, कि चचाजान आ गये।

"बेटा, मुझे हमेशा तुम्हारे भविष्य की फिक्र रहती है," उन्होंने बातचीत शुरू करते हुए कहा, "मेरे होते हुए तुम महज क्लर्क बनकर रह जाओगे, यह मैंने सोचा भी नहीं था। लेकिन इस घर में मेरी जो हैसियत है, वह तुम समझते हो। अब मैं चाहता हूं, तुम्हारी शादी हो जाये।"

शादी का सुनते ही मेरे होश उड़ गये। चचा को भी इसी समय यह खयाल आना था। मैं शाइस्ता के सिवा किसी के बारे में सोच भी नहीं सकता था।

"चचाजान, इतनी कम आमदनी में किस तरह शादी कर सकता हूं?"

"मुझे एहसास है। इसी लिए मैंने तुम्हारे लिए ऐसी लड़की को चुना है, जिसके पास दौलत की कमी नहीं। मैं तुम्हारी शादी बहुत बड़े घर में तय कर रहा हूं।"

चचा इतने खुश थे कि उन्हें मायूस करने की मुझमें हिम्मत न हो सकी। अगर वह यह पेशकश कुछ दिन पहले करते, तो मेरे एतराज की गुंजाइश ही नहीं थी। मैं तो खुद यह चाहता था कि मेरी शादी किसी बड़े घर में हो, लेकिन अब परिस्थितियां दूसरी थीं। शाइस्ता से मैं वायदा कर चुका था। अगर दौलत ही मेरा मकसद है, तो उसको हासिल करने के लिए शाइस्ता का सहारा क्यों न लूं। किसी अजनबी लड़की का आभारी होने का क्या फायदा। चचा की पेशकश में सिर्फ एक खूबी थी। यहां मुझे किसी झूठ का सहारा लेना नहीं पड़ता। चचा उन लोगों को पहले ही बता चुके थे कि मैं एक क्लर्क से ज्यादा कुछ नहीं। यहां मुझे अपना झूठ खुलने का अंदेशा नहीं था। एक तरफ यह सुविधा थी, दूसरी तरफ शाइस्ता थी, जिस से मुझे मुहब्बत भी थी। मुझे यकीन था कि अगर शादी के बाद झूठ खुल भी गया, तो शाइस्ता मुझे माफ कर देगी। मैंने तो इस बेदर्दी से भी सोचा था कि अगर माफ नहीं भी किया, तो भी वह क्या कर लेगी। शादी तो हो चुकी होगी। हमारे बीच अगर झूठ की दीवार होगी भी, तो प्रेम की भावना उस दीवार को गिरा देगी।

चचा मुझे सोचने का मौका देकर चले गये, लेकिन मेरी लालची तबीयत मुझे किसी एक जगह टिकने नहीं दे रही थी। कभी जी चाहता था, चचा की पेशकश कुबूल करके बेपनाह दौलत का मालिक बन जाऊं, कभी शाइस्ता का चेहरा आंखों के सामने घूम जाता था। खयालात के इसी हुजूम में मुझे जहांआरा भी याद आती थी। मुहब्बत तो मुझे उससे भी थी, लेकिन वहां दौलत की उम्मीद नहीं थी। उसे भुलाना मेरे लिए आसान हो गया था, लेकिन शाइस्ता की बात अलग थी। वह मेरी मुहब्बत थी और उसके पास दौलत भी थी। बहुत सोचने के बाद मेरे दिल ने शाइस्ता के हक में फैसला दे दिया।

अब प्रश्न यह था कि चचा की ख्वाहिश को रद कैसे करूं? उन्होंने हमेशा मेरी बेहतरी सोची थी, हमेशा मेरी तरफदारी की थी। अब भी वह शायद मेरे भले के लिए ही सोच रहे थे। कोई और मौका होता, तो मैं कुरबानी दे भी देता, लेकिन यह मेरी जिंदगी का सवाल था।

मैंने चचा से बात की। वह अपनी व्यावसायिक सोच के कारण चाहते थे कि मैं उनके बताये हुए घर में शादी करके अपना भविष्य उज्ज्वल कर लूं, लेकिन जब मैंने शाइस्ता के बारे में उन्हें बताया, तो वह भी सोच में पड़ गये। दौलत दोनों तरफ थी, मगर एक तरफ मेरी मुहब्बत का वजन भी था। उन्होंने मेरे चुनाव की दाद दी। चची के सामने मसला आया। उन्हें भी क्या एतराज हो सकता था।

शाइस्ता के जरिये जो दौलत आती, वह भी इसी घर में आ रही थी।

मैं शाइस्ता के जवाब का इंतजार कर रहा था। जैसे ही उसने इजाजत दी, मैंने चची से बात करके शाइस्ता का पता उन्हें समझा दिया। यह भी कहा, "वहां आपको यह बताना है कि मैं आपका गरीब भतीजा हूं, क्लर्क हूं।"

"हकीकत जानने के बाद वह शादी कर देंगे?"

"उनकी तो शर्त ही यह है कि दामाद गरीब होना चाहिए।"

"मगर मेरी भी शर्त है। मैं तुम्हें घर-दामाद नहीं बनने दूंगी। वह लोग घर-दामाद ढूंढ़ ही इसलिए रहे हैं कि गरीब होगा, तो उनके दर पर पड़ा रहेगा।"

"आपने यह कैसे सोच लिया कि मैं घर-दामाद बनूंगा। वह ब्याहकर यहीं आयेगी।"

"शादी होने तक मैं तुम्हारी सुनूंगी, मगर समझ लो, शादी होते ही इस घर में मेरी चलेगी।"

"चची जान, मैं आपके अख्तियार से बाहर थोड़ी हूं।"

"शादी होते ही उसके बाप से कहना, तुम अपने चचा के साथ मिलकर कारोबार करना चाहते हो।"

"यही तो मैंने सोचा है।"

मैं चचीजान को जितना आश्वस्त कर सकता था, कर दिया। वह रिश्ता ले जाने पर रजामंद हो गयीं। मैंने उनसे आखिरी बात यह भी कह दी थी कि वह अभी यही जाहिर करें कि हमें कुछ नहीं चाहिए, बाद में उनकी जेब खाली कराना मेरा काम है।

चची और चचा शाइस्ता के घर गये और मैं दुआएं मांगने लगा कि बात यहां तक पहुंची है, तो आगे भी कामयाबी हो। कोई नया मसला न उठ खड़ा हो। तरह-तरह के अंदेशे सिर उठा रहे थे, लेकिन शाइस्ता की तरफ से इत्मीनान भी था। यह सब उसी की मर्जी से हो रहा था। अगर कोई गड़बड़ हुई, तो वह खुद संभाल लेगी।

चची वापस आयीं, तो अपनी कामयाबी पर खुश थीं। वे लोग तैयार हो गये थे, लेकिन चची कुछ चिंतातुर भी थीं। मुझसे बोलीं, "वह तो बिन मां-बाप की लड़की है। चचा के पास रहती है। मुझे महसूस हुआ कि उसके साथ उन लोगों का सुलूक भी अच्छा नहीं। क्या देंगे वह उसे?"

मुझे हंसी आ गयी। इसका मतलब है, उन लोगों ने पूरा ही ड्रामा कर डाला। मैंने चची को पूरा मसला समझाकर आश्वस्त कर दिया। मैंने उन्हें बता दिया कि शाइस्ता मुझे पहले ही बता चुकी है। वे लोग सिर्फ यह जानने के लिए ऐसी बातें कर रहे हैं कि मुझे दौलत की तलब है या शाइस्ता की?

चची निश्चिंत हो गयीं। उसके बाद शाइस्ता के चचा और चची मुझे देखने आये। उस समय मैं भी चौंका था कि शाइस्ता के बाप की जगह उसके चचा क्यों आये? मैंने सोचा, जब शाइस्ता मिलेगी, तो पूछ लूंगा कि इसकी वजह क्या है।

चची ने ऐसी फुर्ती दिखाई कि एक सप्ताह बाद की तारीख तय हो गयी। अब कोई मौका नहीं था कि शाइस्ता से मुलाकात होती। मैं शादी की तैयारियों में लग गया। शाइस्ता भी अब कहां बाहर निकल सकती थी। चची को धड़का लगा हुआ था कि शाइस्ता के साथ दौलत आती भी है या नहीं। मैं उन्हें बराबर तसल्लियां दे रहा था।

शादी से एक दिन पहले शाइस्ता का एक खत किसी जरिये से मुझे मिला। उसने लिखा था, "हमारे घर से आपकी शान के मुताबिक दहेज नहीं मिलेगा। इसे अपनी आजमाइश समझिएगा।



शाइस्ता के डैडी आयेंगे, तो इस कमरे से क्या, इस मकान से भी जान छूट जायेगी। उन्हें अपनी बेटी को खुश देखना होगा, तो उन्हें मुझे खुश रखना पड़ेगा।

आपका इम्तिहान लेने के लिए घर के लोग ऐसा कर रहे हैं। आप अगर इस इम्तिहान में पूरे उतरे, तो जो कुछ मेरा है, वह आप ही का तो होगा।"

मैंने यह खत चचीजान को भी पढ़वा दिया। जो अंदाजा मेरा था, वही उस खत में भी लिखा था।

मैं बिल्कुल आश्वस्त होकर शाइस्ता को ब्याहने उसके घर चला गया। एक सादा-से समारोह में निकाह हुआ और शाइस्ता दुल्हन बनकर मेरे घर आ गयी। मैं खुश हो रहा था कि आखिरकार मेरी तदबीर कामयाब हुई। इतने बड़े घर की लड़की को ब्याहकर मैं अपने घर ले आया। एक कांटा अलबत्ता मेरे दिल में खटक रहा था। शाइस्ता के मां-बाप समारोह में भी नहीं थे। आखिरकार क्यों?

शाइस्ता का घूंघट उठाते ही पहला सवाल मैंने उससे यही पूछा।

"आपको मेरे डैडी की इतनी फिक्र क्यों है?" वह हंसने लगी।

"कोई बाप अपनी बेटी की शादी में शरीक न हो, कितने ताज्जुब की बात है।"

"वालिदा तो मेरी हैं नहीं। उनका इंतकाल तो जब मैं बहुत छोटी थी, तब ही हो गया था। वालिद इन दिनों विदेश में हैं। उन्होंने फोन पर कह दिया था कि उनकी वापसी में देर हो सकती है। अगर शादी हो जाये, तो कोई हर्ज नहीं।"

"ठीक है, ऐसा ही होगा, लेकिन है ताज्जुब की बात। तुम उनकी इकलौती बेटी हो। इसका मतलब है, उन्हें तुमसे जरा भी मुहब्बत नहीं।"

"अरे नहीं, कारोबारी व्यस्तता है।"

यह मेरी सुहागरात थी। उस रात को मैं इन बातों में बरबाद नहीं करना चाहता था। मैंने मुनासिब नहीं समझा कि बात को तूल दूं।

चची ने मुझे अपने कमरों में से एक कमरा दे दिया था, इसलिए शाइस्ता को भी यह एहसास न हो सका कि उस घर में मेरी क्या हैसियत है।

चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात। मेरी चांदनी चार दिन की नहीं, पंद्रह दिन की थी। चची ने एक रोज हुक्म सुना दिया कि बस बहुत हो चुकी मेहमानदारी। अब तुम अपने कमरे में जाओ।

मैं इतने दिन में भूल ही गया था कि इस घर में सब से अलग-थलग मेरा भी एक कमरा है, जिसकी हालत नौकरों के कमरों से कुछ ही बेहतर है। फिर मुझे याद आया कि एक दिन यही होना था। शाइस्ता के डैडी आयेंगे, तो इस कमरे से क्या, इस मकान से भी जान छूट जायेगी। उन्हें अपनी बेटी को खुश देखना होगा, तो उन्हें मुझे खुश रखना पड़ेगा। मैं अपने कमरे में शिफ्ट हो गया। शाइस्ता यह तमाशा बड़े गौर से देख रही थी। मैं उसे यह बताने के लिए बिल्कुल तैयार थी कि मैंने शादी क्यों की है। वह भी कुछ पूछने के लिए बेचैन थी। दिनभर नौकरों के साथ मिलकर सामान सजाने के बाद जब मैं थककर बिस्तर पर लेटा, तो उसकी परेशानी शब्दों का रूप धारण करने लगी।

"आपने तो बताया था कि आप बहुत दौलतमंद हैं, मगर मैं तो यहां कुछ और ही देख रही हूं।"

"जब सब कुछ देख रही हो, तो पूछती क्यों हो?"

"कोई यह भी कह रहा था कि आप किसी दफ्तर में क्लर्क हैं।"

"बिल्कुल ठीक कह रहा था।" मैंने लेटे-लेटे जवाब दिया।

"इतने बेदर्द क्यों बन गये हैं आप? जवाब क्यों नहीं देते?" उसने मुझे लगभग झिंझोड़ डाला।

"देखो शाइस्ता," मैं उठकर बैठ गया, "वक्त आ गया है कि मैं तुम पर हकीकत जाहिर कर दूं।"

मैंने अपनी जिंदगी की कहानी विस्तारपूर्वक उसको सुना दी। वह आंखें फाड़े मेरी बातें सुन रही थी।

मैं कह चुका था। अब उसकी बारी थी। कुछ देर पहले जो घबराहट उसके चेहरे पर थी, अब नहीं रही थी।

"मैंने आपको माफ किया और अपनी किस्मत पर खुश हूं।"

"तुम कितनी अच्छी हो," मैंने उसके दोनों हाथ थाम लिये, "मेरी जिंदगी का मकसद ही यह था कि मैं किसी दौलतमंद घराने में शादी करूं। मेरी यह आरजू पूरी हो गयी। अब मेरे पास इतनी दौलत होगी, कि मैं भी ऐश करूंगा, तुम भी ऐश करोगी।"

"क्या इसे लालच नहीं कहते?" उसने मेरी समझ में अजीबोगरीब सवाल किया।

"इसमें लालच की क्या बात है? जो चीज मेरे पास नहीं, वह तुम हीं से लूंगा।"

"अगर मेरे पास भी न हो, तो...?"

"तुम इतने बड़े बाप की बेटी हो, तुम्हारे पास क्या नहीं है।"

शाइस्ता का चेहरा अचानक उतर गया। वही घबराहट जो कुछ देर पहले छा गयी थी, उसके चेहरे पर फिर नजर आने लगी।

"मैं समझी थी, आपको मुझसे मुहब्बत है, पर आपको तो मेरे बाप की दौलत से मुहब्बत है।"

"खाली पेट मुहब्बत क्या अच्छी लगेगी।"

"आप जो कुछ कमाते हैं, मेरे लिए बहुत है।"

"मगर मेरे लिए बहुत नहीं है। मैंने यहां तक पहुंचने के लिए बहुत कुछ गंवाया है।"

मेरा यह दो-टूक फैसला सुनकर शाइस्ता रोने लगी थी। मेरे बार-बार पूछने के बावजूद वह रोने का कारण नहीं बता पा रही थी, लेकिन आखिरकार वह मजबूर हो गयी।

"मुझे जो कुछ आप समझते रहे हैं,मैं वह नहीं हूं। जिस तरह आप वह नहीं निकले, जो मैंने समझा था। मैंने आपसे झूठ बोला था। मेरे मां-बाप जिंदा नहीं, मेरी परवरिश चचा के घर हुई है। मैं चचा के घर रही जरूर, लेकिन भतीजी बनकर नहीं, नौकरानी बनकर। चची के बच्चे पाले, उनके पांव दबाये, तब जाकर दो रोटियां मिलीं। वे लोग मेरी शादी करना तो चाहते थे, लेकिन किसी गरीब लड़के से, ताकि मैं शौहर के घर जाकर भी उनकी बराबरी न कर सकूं। इसी लिए मैंने आपसे कहा था कि आप खुद को क्लर्क जाहिर करें। आप वाकई क्लर्क निकले।"

"दौलत तो तुम्हारे चचा के पास भी है। वे कभी नहीं चाहेंगे कि उनकी भतीजी शादी के बाद भी उनके घर रहे। वह मेरी हर मांग पूरी करेंगे।"

"खुदा के लिए, जहीर, ऐसा मत करना," उसने मेरे पांव पकड़ लिये, "उन्हें मुझसे कोई हमदर्दी नहीं होगी। उन्होंने दुनिया को दिखाने के लिए मेरी शादी कर दी। आपने मुझे छोड़ दिया, तो उन्हें कोई तकलीफ नहीं होगी। वह समझेंगे, उन्हें वह नौकरानी फिर मिल गयी, जो कुछ दिन के लिए चली गयी थी। आपके हाथ कुछ नहीं आयेगा। मैं दर-ब-दर हो जाऊंगी। अब जो कुछ हो गया, उसे किस्मत का फैसला समझकर कुबूल कर लीजिए। मैं आपके हाथ जोड़ती हूं।"

"तुमने मेरे साथ इतना बड़ा धोखा किया है कि मैं तुम्हें माफ करने की कल्पना भी नहीं कर सकता," मेरा गुस्सा मेरी आवाज से जाहिर हो रहा था, "तुमने खुद को एक उद्योगपति की बेटी जाहिर किया, जबकि तुम अपने चचा के घर में नौकरानी की जिंदगी बिता रही थीं।"

"आपका कुसूर भी तो यही है। इसके बावजूद मैंने आपको माफ कर दिया।"

"तुम कर सकती हो, मगर मैं तुम्हें माफ नहीं करूंगा। मेरा मकसद तुम्हारे जरिये दौलत हासिल करना था।"

"मेरा मकसद भी यही था, और औरत की हैसियत से यह मेरा हक था। औरत को किसी मजबूत सहारे की तलाश होती है, मगर आप तो मर्द हैं। आपने क्यों सहारा ढूंढ़ा? मेरी गलती, मेरी मजबूरी थी, मगर आपकी गलती सरासर अय्यारी है। इसके बावजूद मैंने आपको माफ कर दिया।"

"मेरा मकसद भी यही था, और औरत की हैसियत से यह मेरा हक था। औरत को किसी मजबूत सहारे की तलाश होती है, मगर आप तो मर्द हैं। आपने क्यों सहारा ढूंढ़ा? मेरी गलती, मेरी मजबूरी थी, मगर आपकी गलती सरासर अय्यारी है। इसके बावजूद मैंने आपको माफ कर दिया।"

"मैं तुम्हें तलाक दे दूंगा।" मैं चिल्लाया।

"सिर्फ इसलिए, कि मैं आपको दौलत नहीं दे सकी?"

"हां, सिर्फ इसलिए।"

"दौलत तो आपको फिर भी नहीं मिल सकेगी, क्योंकि चचा मुझे बचाने के लिए एक पैसा भी खर्च नहीं करेंगे।"

"मेरा दिल तो ठंडा हो जायेगा।"

"दिल को सुकून मिलता है किसी की मदद करने से। आपको याद है, आपने एक बार कहा था, आपके दिल में गरीबों के लिए बड़ा दर्द है। आपने यह भी कहा था कि आप एक गरीब लड़की को गाड़ी में बैठाकर सैर कराना चाहते हैं। वह गरीब लड़की मैं ही तो थी। वही गरीब लड़की हाथ जोड़कर आपसे रहम की भीख मांग रही है। मुझे गाड़ी नहीं चाहिए, इस छोटे-से कमरे में रहने का ठिकाना चाहिए।"

वह लड़की, जिसे मैं अमीरजादी समझता था, वह मेरे सामने हाथ जोड़े खड़ी थी, और मेरे छोटे-से कमरे में रहने की भीख मांग रही थी। मुझे जहांआरा याद आ गयी, जिसने कभी कहा था, 'तकदीर से कहां तक भागोगे...किसी अमीर लड़की से शादी कर लो। वह गरीब निकले या गरीब हो जाये, तो क्या कर लोगे...,' उसकी बद्दुआ थी या मेरी तकदीर, कि मैं आज एक ऐसे ही मोड़ पर खड़ा था। मैंने जहांआरा की मुहब्बत ठुकरा दी, लेकिन हासिल क्या हुआ? मुझे वह लड़की याद आयी, जिसका रिश्ता मेरे लिए मेरे चचा ले कर आये थे। उसकी दौलत मेरे नसीब में नहीं थी, इसलिए मैंने इनकार कर दिया था।

तकदीर ने सारे राज मुझ पर खोल दिये थे। इसके बावजूद शाइस्ता को माफ करने को दिल नहीं चाहता था। मुझमें एक जंग छिड़ी हुई थी। मैं बहुत दिन तक अपने आपसे लड़ता रहा। शाइस्ता को छोड़ भी नहीं रहा था, माफ भी नहीं कर रहा था। चचीजान को एक नौकरानी मिल गयी थी। शाइस्ता यहां रहने के बदले चची की चाकरी कर रही थी।

मैं अभी किसी फैसले पर नहीं पहुंचा था कि एक रोज जहांआरा के घर पहुंच गया। उसे देखकर मैं सांस लेना भूल गया। चारपाई पर चंद हड्डियां रखी थीं। यह जहांआरा है? मेरी जुदाई ने उसे इस हालत पर पहुंचा दिया। उसकी आंखों में मेरे लिए मुहब्बत थी। वह अपनी कमजोर आवाज में अब भी मुझे दुआएं दे रही थी। उसे मेरी शादी के बारे में मालूम हो चुका था। जो धोखा मेरे साथ हुआ, वह मैंने उसे बता दिया। उसके वीरान होंठों पर मुस्कराहट आ गयी। बोली, "तकदीर से भाग कर कहां जाओगे, जहीर? दौलत के पीछे मत भागो।"

"तुम्हारा गुनहगार हूं, जहांआरा।"

"इस गुनाह का प्रायश्चित यही है कि तुम अपनी बीवी को कुबूल कर लो। देख लो, जिन्हें मुहब्बत नहीं मिलती, उनका हाल यह हो जाता है।"

उससे मुलाकात के बाद मैं घर पहुंचा, तो किसी फैसले पर पहुंच चुका था। शाइस्ता इस घर की नौकरानी नहीं, मेरी बीवी है, मैंने पहली बार यह भावना अपने दिल में महसूस की। मैंने शाइस्ता को साथ लिया और चची का घर छोड़ दिया।

दौलत मेरे नसीब में नहीं थी। अब भी मैं एक औसत दर्जे की जिंदगी बिता रहा हूं, लेकिन शाइस्ता की मुहब्बत मेरी दौलत है, और मुहब्बत से बड़ी कोई दौलत नहीं। ●

–प्रस्तुति : सुरजीत

(चित्रांकन चित्रकार की कल्पना से)

–ईश्वर सब देखता है–

(पृष्ठ १०० का शेष)

तत्कालीन राजशाही को ऐसे नौजवानों की जरूरत थी। उपनिवेशवाद की स्थापना का दौर था। उस दौर में पुर्तगाल तथा स्पेन पूरे यूरोप का नेतृत्व कर रहे थे।

सन् १५०२ में पच्चीस साल की उम्र में पिजारो फौजी जहाज पर सवार हो अमरीका चला गया। टैन इंडियन के खिलाफ हिस्पानियोला की खूनी लड़ाई में अलोन्सो-डे-ओजेडा के नेतृत्व में जमकर हिस्सा लिया तथा अलोन्सो की रणनीति का अनुसरण किया। अलोन्सो जिस तरह निहत्थे टैन इंडियन्स पर तेजी के साथ तलवार नचाता हुआ घुसता और बेरहमी के साथ खून की होली खेलते निकलता, पिजारो ने भी लगातार वैसा ही किया। उस पहली ही लड़ाई में उसकी जांबाजी की धाक जम गयी तथा रणक्षेत्र में उसकी मांग बढ़ गयी। मांग बढ़ी, तो अभिलाषाएं जगीं और ऊंचे सपने आने शुरू हुए। लगा, पिता से बदला लेने जैसी जिद, भावी आकांक्षाओं के मुकाबले बेहद नगण्य तथा छोटी चीज रह गयी है और उसे मील के नये-नये पत्थर गाड़ने हैं। पूरे दस साल उसने रणभूमि की एक-एक बारीकी का अध्ययन किया, खुद को बनाने-संवारने में लगाया और उसके परिणाम भी सामने आये। सन् १५१३ ई० में स्पेन के विख्यात आक्रमणकारी योद्धा वास्कोनुनेज-डे-बाल्कोआ ने पनामा नहर को पारकर जब एशिया तथा अमरीका महादेशों के बीच स्थित महासागर की तटवर्ती सम्पन्नता की तलाश तथा स्पेन का झंडा लहराने का मंसूबा बनाया, अपने प्रथम सहयोगी के रूप में पिजारो को चुना। पिजारो ने भी बाल्कोआ की उम्मीदों की रक्षा की। हथेली पर जान लेकर अभियान दल में शामिल हुआ और जब विजय हासिल हुई, वीरता के लिए उसे सम्मानित किया गया। सम्मानित करने के साथ पनामा नगर के प्रथम श्रेणी नागरिकों वाली फेहरिस्त में उसका नाम दर्ज हुआ, जमीन-जायदाद दी गयी। सेवा करने के लिए नौकर-चाकरों की फौज मुहैया करायी गयी, और यहां तक कि पनामा नगर का मेयर तक मनोनीत किया गया। पिजारो खुश हुआ।

पिजारो अब सुखी-सम्पन्न तथा रुतबेदार आदमी था। उम्र पैंतालीस पार कर चुकी थी। पौरुष की बदौलत उसे जो सम्पन्नता हासिल हुई थी, कोई दूसरा होता तो मरने के दिन तक सुख-चैन की जिंदगी गुजारना चाहता, मगर पिजारो की फितरत में यह नहीं था।

उसकी नजर में जीवन जुए का खेल था, दांव लगाने पर वह भरोसा करता था। कुछ साल चैन के कटे जरूर, मगर दांव लगानेवाला खून फिर से रगों में जोर मारने लगा–खून के साथ अंदर की महत्वाकांक्षाएं भी। एक जाबांज तथा महत्वाकांक्षी फौजी के नाते उसे इस बात की जानकारी हो चुकी थी कि हजारों वर्गमील तथा दर्जनों नगरों तक सीमा फैलाये इंका साम्राज्य के पास अकूत धन-सम्पदा है। अगर थोड़ी बहादुरी तथा चालाकी से काम लिया जाये, तो वह खुद भी साम्राज्य का मालिक बन सकता है।

साहस, रणकौशल तथा रणनीति के मामलों में पिजारो का आत्मविश्वास दृढ़तर होता गया था। किस्मत भी एक लिहाज से मेहरबान थी। जरूरत सिर्फ मुट्ठीभर मित्रों तथा सहयोगियों की थी। अगर समर्पित तथा विश्वसनीय मित्र मिल जाते हैं, तो साम्राज्य हासिल करना कुछ भी मुश्किल नहीं। यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पिजारो ने अपने एक विश्वसनीय व्यवसायी मित्र डियेगो-डे-अलमाग्रो से बात की। समझाया, "किस्मत ने साथ दिया, तो हम मालामाल हो जायेंगे।"

अलमाग्रो के अतिरिक्त एक ईसाई धर्मोपदेशक मित्र सरनांडो-डे-लुक्यू से भी पिजारो ने बात की, "इंका साम्राज्य सूर्य-पूजक है। सूर्य की पूजा करता है और अपने राजा हुआयना केपेक को सूर्य-पुत्र समझता है। अपनी बुद्धि की बदौलत अगर हम उसे पराजित कर सकें, तो न केवल अकूत सोना-चांदी हाथ लगेगा, बल्कि साम्राज्य की करोड़ से ज्यादा की आबादी को हम सूर्य-पूजक से ईसाई बना लेंगे।"

उन दिनों ऐसा प्रचलन भी था। धर्म-प्रचारकों को ऐसी जगहों की तलाश रहती थी, जहां वे ईसाई धर्म का प्रचार कर सकें।

पिजारो के दोनों मित्र उसके अभियान में साथ देने के लिए तैयार हो गये। अलमाग्रो तथा लुक्यू ने अपनी-अपनी संस्था की जेब से पूंजी निकाली। थोड़ी पूंजी पिजारो ने भी लगायी और समुद्र में तैरनेवाले बड़े-छोटे दो जहाज खरीदे। बोलने-चालने में तेज़ तथा व्यवहारकुशल तो वह था ही। उसने डेढ़ सौ विश्वसनीय तथा समर्पित सहयोगियों का एक दल तैयार किया और १४ नवम्बर १५२४ को पनामा शहर से रवाना हो गया। पूरे दस महीने की कठिन तथा थका देनेवाली यात्रा करके सब इस्ला-डेल-गालो नामक रेतीले द्वीप पर पहुंचे। इरादा गालो द्वीप पर अचानक आक्रमण करके फतेह करने का था, मगर अभियान दल के अधिकांश सदस्य उन दस महीनों में पूरी तरह खस्ताहाल हो चले थे। भूख तथा बीमारी ने उन्हें घेर लिया था। ऊपर से जो चीज सबसे बुरी लगी, वह थी पिजारो की नीयत। सदस्यों को इस बात की गंध लग गयी थी कि पिजारो स्पेन से अलग अपनी खुद की राजशाही स्थापित करने के सपने देखने लगा है। जिस स्पेन की धरती ने जन्म दिया, खिला-पिलाकर बड़ा बनाया, वहां के लिए उसके मन में कोई खास सम्मान नहीं बचा। दल के सदस्य जो जान की बाजी लगाने को तैयार पूरे उत्साह के साथ रवाना हुए थे, गालो पहुंचने के बाद पस्त हो गये।

गालो द्वीप ऊन के लिए प्रसिद्ध था। पिजारो को लगा, कुल डेढ़ सौ सहयोगियों के बूते गालो को हासिल करना असम्भव है। सो अलमाग्रो को उसने इस बात पर सहमत कराया कि वापस पनामा लौटकर रसद-पानी तथा धन समेत कुछ और लोगों की व्यवस्था करके, जितनी जल्दी हो वापस आ जाये। स्पेन की राजशाही के प्रति सम्मान तथा आदर-भाव प्रदर्शन के खयाल से पनामा के गवर्नर की पत्नी के लिए उसने ऊन का बड़ा-सा गट्ठर खरीदा और अलमाग्रो से कहा कि उसे भी साथ लेता जाये, और पनामा पहुंचकर गवर्नर-पत्नी को पहुंचा दे।

जिन सहयोगियों का पिजारो की असली नीयत से मोहभंग हो चुका था, उन लोगों ने गवर्नर के नाम एक संदेश लिखकर ऊनवाले गट्ठर के अंदर छिपाकर रख दिया, ताकि पत्नी की मार्फत गवर्नर तक पहुंच जाये। उस संदेश में सहयोगियों ने पिजारो के लिए 'पागल' तथा 'कसाई' जैसे शब्द इस्तेमाल किये थे।

छोटे-से जहाज से अलमाग्रो के विदा होने के बाद पिजारो को जब उस संदेश की हल्की जानकारी हुई, मारे गुस्सा के वह सचमुच पागल हो गया। मगर कुछ कर पाना उसके लिए संभव नहीं था, क्योंकि डेढ़ सौ सदस्योंवाले दल में ऊबे हुओं की संख्या काफी ज्यादा थी। गुस्से के आलम में तलवार की नोक से बलुआही जमीन पर पूरब-पश्चिम उसने एक बड़ी लकीर खींची। खुद लकीर के दक्षिण में खड़ा हुआ और सहयोगियों को उत्तर खड़ा करके समझाने की कोशिश की, "मित्रों तथा सहयोगियों! लकीर के उस तरफ यानी उत्तर स्पेन है, पनामा शहर है, जहां से हम सभी आये हैं। मगर उधर मृत्यु, भूख, बेरोजगारी, वर्षा, गरीबी तथा ढेरों दूसरे दुख और तकलीफें हैं। लकीर के इस तरफ यानी दक्षिण में विशाल इंका साम्राज्य है, धन-दौलत के अकूत भंडार हैं तथा मनचाही सुख-समृद्धि है। मेरी दिली इच्छा रही है कि आप सब सुखी समृद्ध बनें और इसी लिए अभियान दल में एक-एक को जांच-परखकर अपने लिए आपके विश्वास तथा समर्पण-भाव देखकर शामिल किया था। मुझे अपने लिए क्या चाहिए? उम्र के सैंतालीसवें में पहुंच चुका हूं। जो यश समृद्धि हासिल होनी थी, हो चुकी है। चाहता तो पनामा में चैन की जिंदगी जीता, मगर मन बेचैन रहा कि आप लोग भी मेरी जैसी सुख-सुविधा में जी सकें। जिन्हें मेरा साथ देना मंजूर है, लकीर के दक्षिण तरफ आ जायें, यानी जिधर मैं खड़ा हूं। जिन्हें मंजूर नहीं, वे बेशक उत्तर की तरफ ही रहें।"

लकीर पारकर दक्षिण तरफ आने को सिर्फ तेरह जोड़ी पांव उठे–यानी कुल तेरह लोग। डेढ़ सौ की संख्या वाले अभियान-दल के बाकी एक सौ सैंतीस सदस्य पिजारो से विमुख हो गये। साथ होने का निर्णय जतानेवाले सदस्यों को पिजारो ने गले से लगा लिया, "अपने अभियान से जो कुछ हासिल होगा, हम सब का उस पर बराबरी का हक होगा। इंका साम्राज्य

को सोने-चांदी की खान कहा जाता है। जहाजों में भरकर सोना-चांदी हासिल करेंगे, और आपस में बराबर बांटेंगे। अपने हक से ज्यादा लेकर मैं क्या करूंगा? सोने-चांदी की रोटी बनती नहीं कि ज्यादा खाने की भूख जग जाये। आदमी खाता अन्न-सब्जी ही है और खानेभर को अन्न-सब्जी पैदा करने को मेरे पास वैसे ही जरूरत से ज्यादा जमीन-जायदाद है। आप मुझे निष्ठा देंगे, मैं आपको मालामाल कर दूंगा।"

संदेश मिलने के साथ गवर्नर ने गालो द्वीप के लिए एक जहाज भेजा और एक सौ सैंतीस सदस्यों की टोली वापस पनामा शहर लौट आयी। पिजारो का सोना-चांदी उन्हें नहीं चाहिए था।

बाकी बचे तेरह सदस्यों के साथ पिजारो का मन उदास हो गया। गालो द्वीप को जीतने की तो बात ही अलग, वहां टिकने से भी मन घबराने लगा और अपने जहाज पर सवार हो वहां के उत्तर पैसिफिक ओसियन के तटवर्ती दूसरे द्वीप गोरगोना पर चले आये।

गोरगोना द्वीप पर तेरह सदस्यीय अभियान दल के दुख की अलग कहानी है। साथ का रसद-पानी खत्म हो रहा था और 'आगे क्या होगा' की चिंता खाये जा रही थी। दिन सप्ताह में गुजरा, सप्ताह महीनों में और महीना साल में। पिजारो के सपने पूरे करने के लिए तेरहों सदस्य ने क्या-क्या कष्ट नहीं झेले। द्वीप पर भूखे रहे, पिजारो समेत अपने पेट भरने के लिए भिक्षाटन तक किये, सिर्फ इसी उम्मीद में, कि आज न कल अलमाग्रो रसद-पानी समेत पनामा से लौटेगा, तब आगे की यात्रा शुरू होगी और अच्छे दिन पलटेंगे।

पिजारो चौबीस घंटे उनके उत्साहवर्द्धन में लगा रहता। उसके प्रति हद दर्जे की निष्ठा के मारे सदस्य उसकी एक-एक बात को पूरे भरोसे के साथ स्वीकार कर रहे थे।

पूरे तीन साल बाद अलमाग्रो का जहाज पनामा से वापस लौटता नजर आया। उसे पता था, पिजारो दल के सदस्यों के साथ अभी तक गालो द्वीप पर ही होगा। मगर गालो से पहले गोरगोना के समुद्र तट पर जहाज नजर आया, तो अलमाग्रो ने अपना जहाज उधर ही मोड़ लिया। उसे जान कर हैरानी हुई कि तेरह सदस्यों को छोड़ बाकी सबके-सब कब के पनामा लौट गये, मगर हैरानी उसने जाहिर होने नहीं दी। सब के उत्साह बढ़ाये, "चिंता की बात नहीं। जितने वापस हुए हैं, उनसे दस ज्यादा लोगों को लेकर मैं लौटा हूं।"



पिजारो के अभियान दल के सहयोगी पेरू की उत्तरी सीमा से दक्षिण की तरफ बढ़ रहे थे। एक सौ साठ सदस्यीय अभियान दल के साथ इस बार खास बात यह थी कि सदस्यों में सिर्फ स्पेनवासी नहीं थे, बल्कि ग्रीक, इटालियन, यहूदी आदि भी थे

इस तरह अभियान दल में डेढ़ सौ के बदले फिर से एक सौ साठ सदस्य हो गये। पिजारो खुश हुआ। जहाज आगे की तरफ बढ़ता, उससे पहले सबों को बताया, "इंका साम्राज्य मुख्यालय पेरू पर चढ़ाई के पहले स्पेन की राजशाही की स्वीकृति का लाइसेंस चाहिए। उसके बिना हम चढ़ाई नहीं कर सकते।"

लाइसेंस लेने के लिए वह खुद स्पेन वापस हुआ। स्वीकृति मिलने में ज्यादा परेशानी नहीं हुई, फिर वापस लौटकर पेरू की यात्रा शुरू हुई।

पेरू अभियान की शुरुआत बहुत अच्छी रही। उसके जहाज दो सप्ताह में ही भूमध्य रेखा के उत्तरी हिस्से में पहुंच गये। आगे की यात्रा जरूर कठिन रही। अप्रैल १५३२ में वे पेरू महाद्वीप के टुम्बास शहर के किनारे पहुंचे। मगर दुर्भाग्य! धन-दौलत के लिए प्रसिद्ध शहर टुम्बास लगभग उजड़ चुका था। कुछ दिन पहले उठे चेचक के भयानक प्रकोप ने शहर तथा वहां की आबादी को तहस-नहस कर दिया था। इसके अलावा समूचा पेरू गृहयुद्ध की आग में जल रहा था। पूर्व इंका राजा कैपेक के दो बेटों अताहुल्पा तथा हुआस्कर के बीच उत्तराधिकार को लेकर जबरदस्त लड़ाई जारी थी।

पिजारो के अभियान दल के सहयोगी पेरू की उत्तरी सीमा से दक्षिण की तरफ बढ़ रहे थे। एक सौ साठ सदस्यीय अभियान दल के साथ इस बार खास बात यह थी कि सदस्यों में सिर्फ स्पेनवासी नहीं थे, बल्कि ग्रीक, इटालियन, यहूदी आदि भी थे। इस अभियान दल की जानकारी अताहुल्पा को मिली, लेकिन पहली बात कि अपने छोटे भाई से गृहयुद्ध में उलझा हुआ था, दूसरे उसके एक जासूस ने आश्वस्त किया कि डेढ़ सौ के करीब सदस्योंवाला यह दल डाकू-लुटेरों का है और उससे आसानी से निबटा जा सकता है।

साल का अंत आते-आते अताहुल्पा को छोटे भाई पर विजय हासिल हुई। तब उसके राज्याभिषेक का समय आ पहुंचा।

पिजारो को पता चला कि राज्याभिषेक कुजको नामक शहर में होगा, जो उन दिनों पेरू की राजधानी थी। छोटे भाई पर विजय हासिल कर कुजको पहुंचने के लिए अताहुल्पा भूमध्य रेखा के पास विक्टो नामक स्थान से दक्षिण की तरफ बढ़ रहा था। वहां पहुंचने का रास्ता एक पहाड़ी दर्रे से गुजरता था। पिजारो को लगा, यही मौका है जब अताहुल्पा के साथ बढ़ रही फौज पर अपने सहयोगियों के साथ अचानक गुरिल्ला ढंग की छापेमारी के साथ अताहुल्पा को कब्जे में ले सकता है। वैसी ही रणनीति बनायी गयी और बीच रास्ते में अताहुल्पा के काफिले को घेर लिया गया। हालांकि अताहुल्पा के साथ लोगों की संख्या कम नहीं थी। इस लिहाज से वे पिजारो के दल पर भारी पड़ते थे, मगर खुशकिस्मती थी कि अताहुल्पा के मुकाबले पिजारो के साथ ज्यादा तेज व घातक हथियार थे और घुड़सवारों की संख्या तीन दर्जन से ज्यादा थी। भारी खून-खराबा मचा और अंततः अताहुल्पा को गिरफ्तार कर लिया गया। खून-खराबे में बेशक पिजारो के भी अनेक सहयोगियों ने अपने बलिदान दिये।

अताहुल्पा को पहले से मालूम था कि महासागर पार से आया यह दल मूलतः डाकुओं-लुटेरों का है और मूल मंशा सोना-चांदी लूटना है, सो गिरफ्तारी के बाद उसने पिजारो से कहा, "सोने-चांदी की सिल्लियों से हम तुम्हारे जहाज भर देंगे।"

सुनकर पिजारो अंदर-अंदर मुस्कराया, मगर तत्काल मन की बात उजागर नहीं की। अताहुल्पा से सहमति जतायी, "भरवा दीजिए, हम आपको मुक्त कर देंगे।"

अताहुल्पा ने अपने सेनापतियों को आदेश दिये, 'सोने-चांदी लाये जाएं।' और जब लाये जाने शुरू हुए, पिजारो की आंखें चौंधिया गयीं। खून-खराबे में बलिदान होने के बाद उसके जो सहयोगी बच रहे थे, उनकी खुशी का भी ठिकाना नहीं था। सोने-चांदी के ढेर में अपनी हिस्सेदारी की उम्मीद से वे पागल हो रहे थे। होते भी क्यों नहीं! पिजारो के इसी आश्वासन पर तो जान हथेली पर लिये हजारों कष्ट झेलकर इतनी दूर पहुंचे थे कि जो कुछ हासिल होगा, उसमें हिस्सेदारी मिलेगी।

मगर न तो अताहुल्पा को, न ही पिजारो के सहयोगियों को रत्तीभर अनुमान था कि पिजारो की असली मंशा क्या है, या कि उसके विचारों में परिवर्तन की कैसी आंधी चल रही है, जिसके वेग पर सवार किये गये वादे भूल जाने जैसा निर्णय लेने की सोचने लग गया है।

पेरू साम्राज्य से प्राप्त सोने-चांदी के भंडार भर अब उसकी नजर में काफी नहीं रह गये थे। वह पूरे साम्राज्य का अधिपति बनने के सपने देखने लगा था। सपने पूरे हो सकें, इसके लिए अताहुल्पा को रास्ते से हटाना जरूरी हो गया था। मगर रास्ते से उसके हटाने की योजना फिलहाल इतनी गुप्त रखी थी कि किसी को गंध तक नहीं लगी। पिजारो

ने अलमाग्रो से कहा, "पनामा से कुछ और समर्पित सहयोगियों को ले आओ, उनकी जरूरत पड़ेगी, और अभी जितना हासिल हुआ है, उससे हजार गुना ज्यादा हासिल कर वापस लौटेंगे। फिर अपने-अपने हिस्से का बंटवारा करेंगे।"

अलमाग्रो जब चलने को हुआ, पिजारो ने यह भी याद दिलाया कि पनामा से उसकी पत्नी, दोनों बच्चों तथा छोटे मौसेरे भाई मार्टिन-डे-अलकांट्रा को भी साथ लेता आये। फिर उसने अताहुल्पा को समझाया, "जहाज के पनामा से लौटते ही हम वापस हो जायेंगे और आपको पूरी तरह मुक्त कर देंगे।"

अलमाग्रो जब सैकड़ों समर्पित सहयोगियों के अतिरिक्त पिजारो की पत्नी, दोनों बच्चों तथा मौसेरे भाई अलकांट्रा के साथ वापस हुआ, पिजारो अपनी योजना को अंतिम रूप दे रहा था। अलकांट्रा के नेतृत्व में सहयोगियों की एक गुप्त बैठक बुलवाकर बंदी सम्राट अताहुल्पा के खिलाफ सजा-ए-मौत की घोषणा करवा दी और तत्काल उसे फांसी पर लटकवा दिया।

किये गये वादे से मुकरने का सिलसिला पिजारो के जीवन में यहीं से शुरू होता है। कहां तो अताहुल्पा को मुक्त कर देने का वादा था और कहां दी गयी मौत। पिजारो का रास्ता अब साफ था। पेरू की राजधानी कुजको की गद्दी पर आसीन होते ही खुद को उसने नया सम्राट घोषित कर दिया। इकसठ साल की उम्र में अब वह पूरे इंका साम्राज्य का एकछत्र शासक था। स्वाभाविक था—इंका सम्राट जिन सुविधाओं के उपभोग के आदी थे, पिजारो की लालसा भी उनके उपभोग की होती और यहीं से उसके पतन की भूमिका शुरू होती है।

कहा गया है कि आदमी में चरित्र संबंधी जो कमजोरियां एक बार जन्म लेती हैं, उनका खात्मा बड़ी मुश्किल से होता है। वह भी तब, जब खात्मे की नीयत खुद उस आदमी की हो, वरना कमजोरियां बढ़ती चली जाती हैं।

अताहुल्पा के साथ वादाखिलाफी कर पिजारो ने अपने अंदर उस कमजोरी को जन्म दे दिया था। सोने-चांदी से भरपूर विशाल इंका साम्राज्य का जब उसने खुद को सम्राट घोषित कर दिया, तो अभियान के पहले सहभागी अलमाग्रो ने किये गये वादे की याद दिलायी, "हजार यातनाएं झेलते हुए जिन्होंने अभियान को सफल बनाया और तुम्हें सिंहासनारूढ़ कराया, अब उनके हक-हिस्सेदारी की सोचो।"

"तुम अपने हक-हिस्सेदारी की बात करो", पिजारो ने कुटिल मुस्कराहट के साथ सलाह दी, "उन सबको छोड़ो। हमारे अभियान-दल में शामिल होना उनकी मजबूरी थी। वैसे भी पनामा में वे भूखे मर रहे थे। अभियान-दल में शामिल होकर उन्हें आशा बंधी थी कि पेटभर रोटी और तन ढंकने को कपड़े मिल जायेंगे। इतना हम उन्हें देंगे। भूखे-नंगे, परेशानहाल आदमी को दो वक्त की रोटी, तन ढंकने को कपड़ा मिल जाये, यही क्या कम है। रही तुम्हारी बात, तो साम्राज्य में तुम्हें हिस्सेदारी मिलेगी।"

"हिस्सेदारी का आश्वासन उन लोगों को भी दिया गया था। फिर लड़ाई में जो लोग बलिदान हो गये, उनका भी घर-परिवार है, पत्नी-बच्चे हैं।"

"अपने सिर पूरी दुनिया की चिंता तुम क्यों ले रहे हो? तुम्हारा क्या फायदा होगा? लड़ाई के मैदान में आदमी बलिदान की बात सोचकर ही जाता है। बलिदान होने से जो बच जाये, उसकी किस्मत होती है। सबसे बड़ी बात अलमाग्रो, कि लड़ाइयां सिर्फ तलवारों के भरोसे नहीं लड़ी जातीं। तलवार लेकर लड़ने से ज्यादा महत्वपूर्ण रणनीति होती है, और जीत का सेहरा रणनीति जाननेवाले के सिर पर होता है। तुम क्या सोचते हो कि एक सौ साठ लोगों की बदौलत इंका साम्राज्य पर कब्जा हासिल हो सकता था, अगर मेरा साहस तथा मेरी रणनीति जबरदस्त नहीं होती?"

"और तुम्हारा साहस तथा तुम्हारी रणनीति चाहे जितनी भी जबरदस्त होती, एक सौ साठ लोगों का मनोबल तथा सहयोग हासिल नहीं होता, तो अगले एक सौ साठ वर्षों तक भी तुम इंका साम्राज्य की गद्दी तक नहीं पहुंच सकते थे। अब पहुंच गये तो उन्हीं का उपहास उड़ाते हो कि पनामा में वे भूखे-नंगे मर रहे थे, या उनकी जरूरत दो वक्त की रोटी और तन ढंकने के कपड़ों तक ही सीमित है।"

पढ़ा-लिखा चाहे न रहा हो, पिजारो की बुद्धि मगर कम तेज नहीं थी। समझते देर नहीं लगी कि अलमाग्रो अभियान दल के सदस्यों के प्रति सहानुभूतिशील है और कुजको में उसका बने रहना अच्छा नहीं है। पूरी आत्मीयता के साथ उसको बगल में बैठाया। कहा, "दरअसल मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था कि बहैसियत इतने बड़े साम्राज्य के हिस्सेदार अभियान में शामिल लोगों के प्रति तुम्हारा मन बदला तो नहीं। तुम्हारा मन नहीं बदला, यह मेरे लिए खुशी की बात है। सब को बराबर की हिस्सेदारी मिलेगी। कम-से-कम इतनी तो जरूर, कि सपरिवार कई पीढ़ियों तक वे सुख-चैन तथा सम्मान की जिंदगी जी सकें। हिस्सेदारी की शुरुआत तुम्हीं से करना चाहूंगा। तुम कल ही लेपाज के लिए जहाज से रवाना हो जाओ और वहां की गवर्नरी सम्हालो।"

सुदूर दक्षिण स्थित लेपाज इंका साम्राज्य का आखिरी प्रांत था और कुजको से समुद्री जहाज का रास्ता छह महीने का था। अलमाग्रो ने लेपाज जाना स्वीकार कर लिया, मगर जाते-जाते वादे की याद दिला गया, "दो-दो बार पनामा से जहाज भरकर अभियान दल के सदस्यों को लाने की जिम्मेदारी मेरी थी, और मेरे यहां नहीं रहने पर उनके साथ नाइंसाफी न हो। वफानुसार, उनका जो भी हक होता है, देना मत भूलना।"

"कैसे भूलूंगा।" पिजारो ने आश्वासन दिया, और अलमाग्रो लेपाज के लिए रवाना हो गया। लेपाज पहुंचने के बाद पता चला, उसके साथ कैसी धोखाधड़ी की गयी। वह एक उजाड़ तथा श्रीविहीन प्रदेश था। मन खिन्न हो गया। उसने वापस कुजको लौट जाने का फैसला किया। छह महीने वहां पहुंचने में लगे थे, छह महीने वापस लौटने में। पूरा एक साल इसी में निकल गया।

सालभर बाद कुजको आकर जो कुछ देखने-सुनने, समझने को मिला, अलमाग्रो अंदर तक हिल गया। इंका सम्राटों की तरह पिजारो भी खूबसूरत लड़कियों-औरतों का रसिया बन गया था। साम्राज्य के कोने-कोने से उसके लिए खूबसूरत लड़कियां-औरतें लायी जाती थीं। पिजारो उन्हीं के बीच मस्त था। अभियान-दल के सहयोगी सदस्य अपनी किस्मत को रो रहे थे, और ईश्वर का नाम लेकर संतोष कर रहे थे—ईश्वर सब देखता है। ईश्वर पिजारो को सब्जबाग, झूठे आश्वासन तथा वादाखिलाफी की आज-न-कल जरूर सजा देगा।

सजा जैसी किसी कल्पना से परे पिजारो अपनी ही रंगीनियों में मुब्तिला था। लेपाज से लौटने के बाद अलमाग्रो ने मिलना चाहा, तो पिजारो के मौसेरे भाई अलकांट्रा के चेहरे पर तनाव खिंच आया, "सम्राट का आदेश मिले बगैर आप लेपाज से वापस कैसे आ गये?"

"लेपाज मुझे पसंद नहीं आया", अलमाग्रो ने बताया, "और पसंद नहीं आया तो वापसी के लिए पिजारो के आदेश की जरूरत पड़ेगी, ऐसा मैं नहीं समझता।"

"सम्राट के लिए आपके मुंह से बदजुबानी निकल रही है।" अलकांट्रा के चेहरे पर गुस्सा चमका।

"बदजुबानी," अलमाग्रो समझ नहीं सका, "कैसी बदजुबानी?"

"साम्राज्य के एक मामूली गवर्नर का सम्राट को नाम लेकर संबोधित करना बदजुबानी नहीं तो और क्या है?"

अलमाग्रो की समझ में आया। लोग गलत नहीं कहते थे कि पिजारो अब पहलेवाला पिजारो नहीं रहा। सम्राट का रुतबा हासिल कर चुका है और गुरबत के दिनों के सहयोगी उसकी नजर में बोझ साबित होने लगे हैं। बुद्धि, साहस या लड़ाई जीतने की रणनीति चाहे उसकी अपनी रही, भूखे-प्यासे रहकर रणनीति को क्रियान्वित तो हमी लोगों ने किया। और आज वह हमें दो वक्त की रोटी तथा वायदे के साथ पहचानने से भी परहेज बरतने लगा है।

"सम्राट चाहे वह तुम्हारे लिए हो", अलमाग्रो की आवाज में हल्का व्यंग्य सुनायी दिया, "मेरे लिए तो पिजारो ही है और रहेगा।"

अलकांट्रा जोरों से गरजा, "मालूम है, पिजारो कहकर संबोधित

करनेवालों की मैं जुबान काट लेता हूं।"

उसके गरजने की आवाज़ शायद पिजारो के कान तक पहुंची। उसे अंदर बुलवाया। थोड़ी देर पहले अलमाग्रो को अलकांट्रा ने जैसा अभद्र व्यवहार किया था, जैसे अपशब्द कहे थे, अलमाग्रो का मन उससे क्षुब्ध था ही, सम्राट के नाते पिजारो को झुककर सलाम करने की याद नहीं रही। रहती भी तो शायद वह नहीं करता। पहले कभी किया हो तब तो। मगर सामने बैठने के बाद महसूस हुआ कि नाम लेकर खुद को पुकारे जाने तथा अदब के साथ झुककर सलाम नहीं करने का पिजारो ने बुरा माना है। कहने लगा, "सच है कि मैं आज भी तुम्हारे लिए वही पिजारो हूं, मगर अब इंका साम्राज्य का सम्राट भी हूं। इसलिए तुमसे भी तहजीब की उम्मीद तो की ही जानी चाहिए। फिर लेपाज से वापस लौटने के पहले मेरा आदेश लेना चाहिए था। ऐसा नहीं करना सम्राट तथा साम्राज्य के कानून की अवहेलना माना जायेगा।"

अलमाग्रो सन्न! उसका दिमाग चकरा गया, "क्या सचमुच...सचमुच मैंने अवहेलना जैसा कोई अपराध किया है?"

"इसमें भी संदेह है?" पिजारो के मुंह से निकला।

"अभियान दल गठित करने से पहले हम दोनों के बीच कोई करार हुआ था?" अलमाग्रो ने पूछा।

"उस करार की याद करना, याद दिलाना आज जरूरी है?"

"इसलिए जरूरी है कि उसी करार से बंधा निष्ठापूर्वक मैं वर्षों अभियान को सफल बनाने में लगा रहा। घर-परिवार छूट गया। पनामा का जमा-जमाया मेरा कारोबार चौपट हो गया, और उसी करार की उम्मीद में जो कुछ कहा गया, सारा कुछ करता रहा कि ईश्वर ने चाहा तो ज्यादा अच्छे दिन देखने को मिलेंगे।'

"करार के मुताबिक वे दिन मिले", पिजारो ने पूरी तरह गंभीर होते हुए कहा, "मैंने तुम्हें लेपाज का गवर्नर बनाकर भेजा।"

"उसे उजड़े तथा श्रीहीन प्रदेश का?"

"प्रदेश उजड़ा हो कि श्रीहीन, गवर्नर के पद का अपना रुतबा होता है, खास मायने होते हैं।"

"अगर मुझे वह पद, वह रुतबा मंजूर नहीं?"

"तो अपनी मर्जी से जो कुछ मंजूर हो, वही करो।"

"यानी, तुम्हारे वायदे के बदले यही दिन देखना नसीब था?"

"मैं क्या कर सकता हूं?" पिजारो की आवाज में तिरस्कार था।

थोड़ी देर चुप अलमाग्रो कुछ सोचता रहा, फिर निर्णय सुनाया, "कुछ कर नहीं सकते, यह बात सम्राट के मुंह से शोभनीय नहीं। खैर... मैं कल ही पनामा लौट रहा हूं। वर्षों करार से बंधी जिंदगी गुजारने के बाद कोशिश करूंगा, अपने बदहाल घर-परिवार, समाप्त हो चुके कारोबार को दोबारा जीवित करने की कोशिश करूं। आखिर में एक बात जरूर कहना चाहूंगा कि ईश्वर सब देखता है और अंतिम फैसला भी देता है।" कहते-कहते अलमाग्रो का गला भर आया था।

"फिर उसी ईश्वर से यह सब कहना था, मुझसे नहीं। मेरे पास क्यों चले आये? नाहक वक्त बरबाद किया...।" कहता हुआ पिजारो उठा और जैसे गुस्से में आगे के शब्द भुनभुनाता हुआ अंदर की तरफ चला गया।

पनामा रवाना होने से पहले, अगले दिन ही अलमाग्रो की हत्या कर दी गयी। प्रचारित कराया गया कि सम्राट के प्रति बदसलूकी की सजा मिली है। लोग सन्न रह गये। अलमाग्रो जिन्हें अपने साथ इस आश्वासन के साथ पनामा से लेकर आया था कि पिजारो जो कुछ हासिल करेगा, उसमें सब की हिस्सेदारी होगी, उनकी आंखों में आंसू आ गये—'एक उसी आदमी के भरोसे हम जी रहे थे कि आज न कल पिजारो से हमारा हक दिलवायेगा, मगर वह भी नहीं रहा।"

समय ने तेजी के साथ करवट ली। इंका सम्राट अताहुल्पा के साथ वादाखिलाफी कर उसे फांसी पर लटकवा देनेवाली घटना को लेकर पेरू के मूल निवासी घृणा से उबल रहे थे, अलमाग्रो की हत्या ने पनामा से आये सहयोगियों को भी पिजारो के प्रति नफरत से भर दिया। अपनी ही रंगीनियों तथा दिनचर्या में व्यस्त पिजारो के लिए खबर मिल पाना मुश्किल हो गया था कि उसके खिलाफ बाहर कैसी हवा बन रही है। बतानेवाला था ही कौन? शुरू के अपने तमाम लोगों को अपने कारनामों के कारण खुद से उसने दूर कर लिया था और मन में नफरत के बीज बो दिये थे।

२६ जुलाई, १५३१ को रविवार था। तथाकथित कुछ खास तथा विश्वसनीय लोगों से घिरा पिजारो राजभवन के अपने कमरे में बैठा था। महल के अंदर चारों तरफ शांति छायी थी। तभी तलवार, भाले तथा चमकते छुरों से लैस डेढ़ दर्जन लोगों का एक हुजूम गेट पर तैनात संतरियों को रौंदता अंदर घुसा और पिजारो को घेर लिया। पिजारो को घेरकर बैठे खास तथा विश्वसनीय लोगों के बीच डर के मारे भगदड़ मच गयी। कुछ लोग इधर-उधर भागे, कुछ खिड़कियों की राह जान बचाने को बाहर कूद गये। हथियारधारियों ने पिजारो को दबोच लिया और प्रहार करने लगे। रोते-बिलबिलाते पिजारो ने दया की भीख मांगनी चाही, मगर बेकार। बुरी तरह घायल होकर वह फर्श पर गिर गया। लगा, अब बचना मुश्किल है। खून से लथपथ फर्श पर पड़े-पड़े दोनों हाथ की उंगलियों से उसने होंठों के ऊपर 'क्रास' के चिह्न बनाये और ईसाई मत के विश्वासानुसार 'कनफेशन' के लिए होंठ हल्के खुले ही थे कि आक्रमणकारियों में से एक ने दोनों हाथों से कोने में रखा पीतल का पानीभरा बर्तन उठाया और गरजा, "जिन होंठों ने झूठे आश्वासन देने, सब्जबाग दिखाने तथा वादाखिलाफी करने जैसे घोर पाप किये हों, उन पर परमपिता परमेश्वर का पवित्र नाम हम नहीं आने देंगे।" और पूरी ताकत के साथ पानीभरा बर्तन उसने पिजारो के चेहरे पर दे मारा।

दिल दहला देनेवाली चीख के साथ पिजारो के प्राण उड़ गये। इसी के साथ जीवन के शुरुआती दौर में बेहद संघर्ष तथा सत्ता-सुख हासिल करने के बाद अहंकार में डूबे अपने समय के महान योद्धा पिजारो का अंत हो गया।

सोलहवीं शताब्दी का वह राजभवन आज पेरू का राष्ट्रपति भवन है। जिस जगह पिजारो की हत्या हुई थी, स्मृति-स्वरूप वहां संगमरमर का लंबा-चौड़ा चबूतरा बना दिया गया है। चबूतरा बनाने के क्रम में कुछ साल पहले उस जगह की खुदाई करायी गयी थी, तो ताबूत में बंद पिजारो के नरकंकाल मिले थे। सिर का कंकाल अलग, धड़ का अलग—यानी मरने के बाद क्रुद्ध आक्रमणकारियों ने धड़ से सिर अलग कर दिया होगा।

नीचे से पिजारो के अलावा भी नरकंकाल नजर आये। अनुमान लगाया जाता है, वे उसके दोनों बेटों, पत्नी तथा मौसेरे भाई अलकांट्रा के रहे होंगे। इन चारों की भी तत्काल हत्या कर दी गयी होगी। चबूतरे की परिक्रमा करते हुए अलमाग्रो का कहा जैसे आज भी गूंजता महसूस होता है—'ईश्वर सब देखता है।' और सचमुच अहंकार की बड़ी ही क्रूर सजा भी देता है।●

(चित्रांकन चित्रकार की कल्पना से)

परिवार की फौज

वैसे तो राजाओं के बड़े परिवार हुआ ही करते हैं, पर सऊदी अरब के बादशाह जनाब अब्दुल अजीज इब्न सऊद निराले ही थे। उन्होंने १९३२ से १९५३ तक हुकूमत की थी। उनके खानदान में पूरे पांच हजार शाहजादे और लगभग इतनी ही शाहजादियां थीं। वैसे बीवियों की तादाद भी कम न थी। हरम तीन सौ बेगमों से भरा था। इस परिवार-नियोजन के युग में है न यह अनोखी बात।

—डा० शिवनंदन कपूर

काला डालर, काले लोग

—हमारे संवाददाता द्वारा



शार्टी



राबर्ट

> काला कागज डालर की शक्ल में बदल चुका था। अतः राबर्ट ने सेफ बंद करके विकास बतरा को लाइट जलाने को कहा। रोशनी होने पर पता चला, वह वाकई असली डालर था

रात पूरे यौवन पर थी। जलती-बुझती रंगीन रोशनियों का इन्द्रधनुष-सा पारदर्शी वितान पूरे हॉल में फैला था। पाश्चात्य संगीत की धुन पर नशे की झोंक में थिरकते देशी-विदेशी जोड़ों ने हाल के माहौल को मादक बना रखा था। भड़कीले संगीत की लय पर मस्ती में नाचते जोड़ों में देशी लोग कम थे, विदेशी ज्यादा।

विकास बतरा के लिए रीजेंट होटल का वह डिस्कोथेक कोई नई जगह नहीं थी। वह जानते थे कि उस होटल का डिस्कोथेक विदेशी पर्यटकों की मौज-मस्ती का अड्डा है।

विकास बतरा का भारी रेडीमेड वस्त्रों के निर्यात का व्यवसाय था। विभिन्न देशों के पर्यटकों से मिलना, उनसे संबंध बढ़ाना और उन्हीं में अपने काम के आदमी ढूंढ़ना उनकी पेशेगत मजबूरियां थीं। कुछ मौज-मनोरंजन और कुछ व्यावसायिक हितों की वजह से वह कभी-कभी रीजेंट होटल के डिस्कोथेक में चले जाया करते थे। जब से उनका व्यवसाय कुछ मंदा पड़ा था, तब से उन्होंने वहां आना-जाना कुछ ज्यादा ही शुरू कर दिया था। इसका मुख्य कारण था, किसी ऐसे विदेशी की तलाश, जो उनके डूबते व्यवसाय को अपने कंधों का सहारा दे सके।

उस दिन विकास बतरा जब डिस्कोथेक के एक कोने में शांत खड़े विदेशी शराब की चुस्कियों के साथ किसी पार्टनर का इंतजार कर रहे थे, तो उनकी निगाह उन दो काले विदेशियों पर जमकर रह गयी, जो हाथों में जाम थामे बारी-बारी से एक गोरी लड़की के साथ डांस कर रहे थे। दोनों विदेशी देखने में नीग्रो लगते थे, जबकि उनकी साथी लड़की गोरी-चिट्टी थी। लड़की के हाथ में भी जाम था और वह पूरी मस्ती में थिरक रही थी—जैसे कौओं के बीच सोन चिरैया।

उस गोरी लड़की को उन अफ्रीकियों ने कैसे पटाया होगा, विकास बतरा अभी यह सोच ही रहे थे कि उनमें से एक विदेशी ने उनके पास आकर बड़ी बेबाकी से अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा, "प्लीज टू मीट यू। आई एम राबर्ट फ्रॉम लाइबेरिया (सेंट्रल अमरीका के पास स्थित कोस्टारिका का एक टापू)।"

"आई एम विकास बतरा।" विकास ने मुस्कराते हुए हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया। उनकी निगाह अभी भी फ्लोर पर थिरकते उस युवक के साथी और उस गोरी लड़की पर थी, जो एक-दूसरे से लिपटे डांस कम और अश्लील हरकतें अधिक कर रहे थे।

राबर्ट तेज था। विकास बतरा के

मनोभावों को समझकर वह मुस्कराते हुए बोला, "शी इज अवर फ्रेण्ड कैथरीन। कैथरीन फ्रॉम अमेरिका। वुड यू लाइक हर पार्टनरशिप?"

विकास बतरा कुछ कहते-सुनते, इससे पहले ही राबर्ट उनका हाथ पकड़कर उन्हें अपने साथी और उस लड़की के पास ले गया। उन दोनों को देख लड़की और उसके साथी ने डांस करना बंद कर दिया। राबर्ट ने उन दोनों से विकास बतरा का परिचय कराने के बाद अंग्रेजी में कहा, "मि० बतरा कैथरीन के साथ डांस करेंगे।"

जो हुआ था, अनायास हुआ। मजबूरी में विकास बतरा को कैथरीन की बांहें थामनी पड़ी। उसके बाद विकास बतरा, राबर्ट, उसके साथी और कैथरीन के बीच बारी-बारी से डांस का यह प्रोग्राम घंटों चलता रहा।

इस बीच विकास बतरा राबर्ट को बता चुके थे कि वह सिले-सिलाये भारी वस्त्रों के निर्यात का काम करते हैं। उन्होंने यह बात भी बता दी थी कि काफी दिन से उनका व्यवसाय ठंडा चल रहा है।

विकास बतरा की हकीकत जानने के बाद राबर्ट ने उनके व्यवसाय के बारे में अपने साथी शार्टी को बताते हुए कहा, "तुम्हारे पिता भी भारी रेडीमेड के व्यवसायी हैं। मि० बतरा का व्यवसाय ठीक नहीं चल रहा है। तुम चाहो तो इनकी मदद कर सकते हो।"

"श्योर, मैं अपने नये भारतीय दोस्त के लिए कुछ कर सका, तो बहुत खुशी होगी," शार्टी ने मुस्कराते हुए कहा, "आइए बैठकर बातें करते हैं।"

कैथरीन से विदा लेकर राबर्ट, शार्टी और विकास बतरा बार में जा बैठे। पीने-पिलाने के बीच बातों का दौर चला तो विकास बतरा ने राबर्ट और शार्टी को अपने व्यवसाय की पूरी व्यथा-कथा सुना दी। शार्टी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा, "मि० बतरा, निश्चिंत रहिए। अब आपको कोई परेशानी नहीं होगी। हम हर तरह से आपकी मदद करेंगे।"

शार्टी की बातों से विकास बतरा को लगा कि वह वाकई काम का आदमी है। उन्होंने अपना विजिटिंग कार्ड उसे दे दिया। शार्टी और राबर्ट ने विकास को बताया कि वे लोग आराकशां रोड, पहाड़गंज के रामा होटल में ठहरे हैं, और अभी काफी दिन तक दिल्ली में रहेंगे। उन्होंने विकास को अपना कमरा नम्बर और होटल का टेलीफोन नंबर भी दिया।

विकास बतरा, माइकल शार्टी और नादिए असाने उर्फ राबर्ट से मिलकर घर लौटे तो बहुत खुश थे। उन्हें लग रहा था कि शार्टी और राबर्ट के सहयोग से उनका गिरता हुआ व्यवसाय फिर से ठीक चल पड़ेगा।

अशोक विहार, फेज ३ निवासी विकास बतरा की राजनिवास मार्ग पर मेसर्स नेबेदिया ओवरसीज के नाम से भारी वस्त्रों के निर्यात की कम्पनी है। पिछले कुछ समय से उनका काम ठीक नहीं चल रहा था। उन्हें किसी ऐसे विदेशी सहयोगी की तलाश थी जो इस कार्य में उनकी मदद कर सके। किसी विदेशी की तलाश में विकास बतरा रीजेंट होटल जाया करते थे। अंततः उनकी तलाश पूरी हुई शार्टी और राबर्ट के रूप में। पहली मुलाकात के बाद विकास बतरा ने उन दोनों से मिलना शुरू कर दिया। जल्दी ही तीनों में खूब घनिष्ठता हो गयी। वे तीनों हर रात रीजेंट होटल के डिस्कोथेक में जाते और वहां खूब मौज-मस्ती करते।

एक दिन शार्टी ने विकास बतरा से कहा कि वह निर्यात किये जानेवाले अपने वस्त्रों के कुछ नमूने उसे दे दें, तो वह कुरियर से उन्हें अमरीका भेज देगा। हफ्ते-दस दिन में सैम्पलों का पैसा भी आ जायेगा और कोई बड़ा ऑर्डर भी। इसके लिए वह अपने पिता से फोन पर बात कर लेगा।

ऐसे मौके और काम के आदमी बड़ी मुश्किल से मिलते हैं, यह सोचकर विकास बतरा ने ५० हजार रुपये कीमत के वस्त्रों के नमूने शार्टी और राबर्ट को दे दिये। उन्होंने कपड़ों के नमूने कुरियर से अमेरिका भेज दिये। यह १० अप्रैल '९८ के आसपास की बात है।

वस्त्रों के नमूने देने के बाद भी विकास बतरा का शार्टी और राबर्ट से मिलना-जुलना जारी रहा। नमूने देने के एक सप्ताह बाद विकास ने शार्टी से वस्त्रों की कीमत अदा करने को कहा, तो शार्टी ने उन्हें समझाया, "ऐसे कामों में जल्दी करना ठीक नहीं होता। निश्चिंत रहो, पैसे के साथ कोई बड़ा आर्डर भी आयेगा। पैसा आने में अभी एक सप्ताह लग सकता है। जैसे ही पैसा आयेगा, आपको दे देंगे।"

अमेरिका से पैसा आ पाता, इससे पहले ही एक दिन शार्टी ने विकास बतरा को फोन करके कहा कि वे लोग उनसे मिलना चाहते हैं, कुछ जरूरी बातें करनी हैं। विकास बतरा ने उन दोनों को अपनी कोठी पर बुला लिया।

दोपहर को शार्टी और राबर्ट जब विकास बतरा की कोठी पर पहुंचे तो वह उन्हीं का इंतजार कर रहे थे।

विकास ने शार्टी और राबर्ट का गर्मजोशी से स्वागत किया। उन्हें चाय-पानी पिलाया। शार्टी और राबर्ट कुछ परेशान-से लग रहे थे। विकास ने उनसे परेशानी का कारण पूछा, तो शार्टी बोला, "एक बेहद गोपनीय बात करनी है। यहां कोई सुनेगा तो नहीं?"

"मेरी अपनी कोठी है। मेरे और मेरे पारिवारिक सदस्यों के अलावा यहां कोई नहीं रहता। आप लोगों के पास इस वक्त मैं अकेला बैठा हूं। जो भी बात करनी है, निश्चिंत होकर कीजिए।" विकास बतरा ने कहा, तो शार्टी बोला, "पिछले आठ-दस दिन से हम आपको अपने विश्वास की तराजू पर तौल रहे थे। हमें लगा कि आप पर हर तरह से विश्वास किया जा सकता है। आप हमारी हकीकत अपने तक ही सीमित रखेंगे। इसमें हमें भी लाभ है और आपको भी।"

"बात क्या है, बेफिक्र होकर बताइए। मैं आप लोगों की मदद भी करूंगा और गोपनीयता भी बनी रहेगी।" विकास ने कहा, तो शार्टी उनके पास खिसकते हुए धीरे-से बोला, "दरअसल अपना ये जो राबर्ट है, ये लाइबेरिया का रहनेवाला है। इसके पिता वहां के विपक्ष के बहुत बड़े राजनेता थे, जो अमरीकी सरकार के लिए काम करते थे। किसी तरह उनकी हकीकत लाइबेरिया सरकार को पता चल गयी। फलस्वरूप इसके पिता की गोली मारकर हत्या कर दी गयी।"

"यह तो बहुत बुरा हुआ।" विकास बतरा ने औपचारिकता में कहा, तो शार्टी बोला, "अच्छा-बुरा

क्या, ये सब तो राजनीति में चलता ही है। राबर्ट के पिता बेशक नहीं रहे, पर उनकी मौत के बदले में इसे बहुत कुछ मिला है। अमरीकी सरकार ने इसे इतनी दौलत दी है कि जिंदगीभर ऐश करेगा," एक पल रुककर शार्टी आगे बोला, "बस इसने भूल यह की, कि अमरीकी सरकार से मिली लाखों डालर की रकम सेफ में भरकर भारत ले आया। इसकी मजबूरी ये थी कि उस रकम को लाइबेरिया में नहीं रख सकता था।"

शार्टी की बात सुनकर विकास बतरा चौंके। पलभर को उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि राबर्ट के पास लाखों डालर्स होंगे। उत्सुकतावश उन्होंने शार्टी से पूछा, "राबर्ट के पास कितने डालर की रकम है?"

"बीस लाख डालर की।"

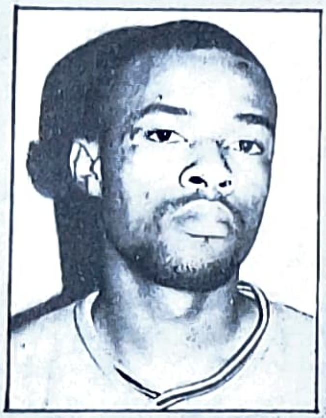
"बीस लाख डालर यानी आठ करोड़ रुपये!" विकास बतरा का मुंह आश्चर्य से खुला रह गया। वह सोच भी नहीं सकते थे कि जिन लड़कों को वह मामूली युवक समझ रहे थे, वे इतनी बड़ी रकम साथ लिये घूम रहे होंगे।

विकास बतरा अभी संशय की स्थिति से उबर भी न पाये थे कि शार्टी उनके चेहरे के भावों को पढ़ने की कोशिश करते हुए बोला, "लेकिन बीस लाख डालर की रकम सिर्फ हमारे लिए ही रकम है। कोई और देखे तो उसे काले कागज के टुकड़ों से अधिक कुछ नहीं समझेगा।"

"मैं कुछ समझा नहीं।" विकास बतरा ने उतावलेपन से पूछा। उन्हें उत्सुक देख शार्टी बोला, "दरअसल अमेरिकन सरकार ऐसे मामलों में जो रकम देती है, छुपाने के लिए उस पर कैमिकल लगा दिया जाता है। कैमिकल लगने से डालर का रंग काला हो जाता है। इस रकम को कैमिकल लगी सेफ में रखना पड़ता है। रंग बदल जाने की वजह से इस रकम को कहीं ले जाने में कोई परेशानी भी नहीं होती। यही वजह थी कि राबर्ट इतनी रकम भारत लाने में सफल रहा," पलभर बाद शार्टी आगे बोला, "कैमिकल-युक्त डालरों को असली रूप में लाना ज्यादा मुश्किल नहीं है। इसके लिए अमेरिकन एम्बेसी एक दूसरा कैमिकल उपलब्ध कराती है जिसके लगाते ही डालर्स अपने वास्तविक रूप में आ जाते हैं।"

शार्टी की पूरी बात सुनने के बाद विकास बतरा ने पूछा, "इस मामले में मैं आप लोगों की क्या मदद कर सकता हूं?"

"जिस कैमिकल से डालर्स को वास्तविक रूप में लाया जायेगा, वह अमेरिकन एम्बेसी से मिलेगा," इस बार राबर्ट ने कहा, "हमारे पास थोड़ा कैमिकल तो है, पर सारे डालर्स को वास्तविक रूप में लाने के लिए बहुत सारा कैमिकल चाहिए। उतना कैमिकल खरीदने के लिए पांच लाख



पलभर को उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि राबर्ट के पास लाखों डालर्स होंगे। उत्सुकतावश उन्होंने शार्टी से पूछा, "राबर्ट के पास कितने डालर की रकम है?"

रुपए की जरूरत है। जबकि इतनी बड़ी रकम हमारे पास नहीं है। अगर आप पांच लाख रुपये हमें दे दें, तो हम कैमिकल लाने के बाद आपके पहले के पचास हजार रुपये और ये पांच लाख रुपये डालर्स में चुका देंगे। आप चाहेंगे तो हम अलग से भी आपको एकाध लाख डालर दे सकते हैं।"

पूरी बात सुनने के बाद विकास बतरा को उनकी बातों पर विश्वास तो नहीं हुआ, लेकिन लालच के वशीभूत वह उनकी बात को पूरी तरह नकार भी नहीं सके। उन्होंने शार्टी और राबर्ट के सामने प्रस्ताव रखा कि यदि वे रकम की सेफ उनके घर ले आयें और उन्हें डालर बनाकर दिखा दें तो उन्हें पांच लाख रुपये दे देंगे। शार्टी और राबर्ट इसके लिए तैयार हो गये।

योजना के अनुसार, १६ अप्रैल '९८ को शार्टी और राबर्ट लोहे की एक सेफ लेकर विकास बतरा की कोठी पर पहुंचे। इत्तेफाक से उस समय विकास बतरा के पास उनके एक मित्र राकेश अग्रवाल बैठे हुए थे। राकेश अग्रवाल का भी कपड़ों के निर्यात का व्यवसाय था। उन्हें विदेशों के बारे में अच्छी जानकारी थी।

विकास बतरा ने शार्टी और राबर्ट का परिचय राकेश अग्रवाल से कराया। इसके बाद उन्होंने दोनों विदेशियों से कहा कि वे सेफ के अंदर रखे कैमिकल युक्त डालरों में से कुछ को वास्तविक रूप में लाकर दिखायें।

राबर्ट और शार्टी इसके लिए तैयार हो गये। उन्होंने कैमिकल की एक शीशी निकालकर सेफ के पास रखते हुए विकास बतरा से कहा, "लाइटें बंद कर दीजिए। कैमिकल का असर अंधेरे में होता है।"

विकास बतरा ने कमरे की लाइटें बंद कर दीं। कमरे में हल्का अंधेरा हो गया। तभी शार्टी ने सेफ खोली। सेफ के अंदर रुई में लिपटे डालर साइज के काले कागजों के बंडल रखे हुए थे। सेफ खुलते ही पूरे कमरे में बदबू फैल गयी। शार्टी और राबर्ट ने बताया कि वह डालर्स और सेफ में लगे कैमिकल की बदबू है। बदबू की वजह से विकास बतरा का ध्यान सेफ की ओर से हट गया था। उसी समय राबर्ट ने एक काले कागज पर कैमिकल लगाया तो वह बीस डालर में बदल गया।

काला कागज डालर की शक्ल में बदल चुका था। अतः राबर्ट ने सेफ बंद करके विकास बतरा को लाइट जलाने को कहा। रोशनी होने पर पता चला, वह वाकई असली डालर था।

राबर्ट और शार्टी ने जिस तरह कैमिकल का करिश्मा दिखाकर काले कागज को डालर में बदला था, उस पर विकास बतरा को तो विश्वास हो गया था, लेकिन राकेश अग्रवाल विश्वास नहीं कर सके।

राबर्ट ने जिस शीशी से रसायन इस्तेमाल किया था, उसमें थोड़ा कैमिकल और बचा था। हकीकत जानने के लिए राकेश अग्रवाल ने राबर्ट से कहा, "आपके पास अभी कैमिकल बचा हुआ है, एक-दो डालर बनाकर और दिखाइए, तभी हमें यकीन आयेगा।"

राकेश अग्रवाल की बात सुनकर राबर्ट और शार्टी आनाकानी करने लगे। वे वह काफी कहने-सुनने के बाद भी डालर बनाने को तैयार नहीं हुए तो राकेश अग्रवाल और विकास बतरा को उन पर शक हो गया। उन्होंने पुलिस को फोन करने की धमकी दी तो शार्टी और राबर्ट ने वहां से खिसकना चाहा। इससे उनका शक यकीन में बदल गया। दोनों विदेशियों को रोककर राकेश अग्रवाल ने थाना अशोक विहार फोन करके इस मामले की सूचना थाना-प्रभारी हरिदर्शन को दी।

सायं पौने छः बजे सूचना मिलते ही इंसपेक्टर हरिदर्शन वाहिया पुलिस टीम के साथ विकास बतरा की कोठी पर जा पहुंचे। राकेश अग्रवाल और विकास बतरा शार्टी और राबर्ट को घेरे बैठे थे। उनकी बात सुनने के बाद हरिदर्शन ने शार्टी और राबर्ट को हिरासत में ले लिया। उनके पास से मिली सेफ और कैमिकल भी पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया। बाद में विकास बतरा की ओर से शिकायत दर्ज करके पुलिस ने शार्टी और राबर्ट को विधिवत गिरफ्तार कर लिया।

इंसपेक्टर हरिदर्शन दुनिया के बहुत सारे देशों के बारे में न केवल जानते हैं, बल्कि जर्मन, अंग्रेजी और इटेलियन आदि कई भाषाएं बखूबी बोल भी लेते हैं। वीजा, पासपोर्ट और अन्तर्राष्ट्रीय उड्डयन नियमों की उन्हें अच्छी जानकारी है।

राबर्ट और शार्टी की तलाशी ली गयी तो राबर्ट के पास एक और शार्टी के पास दो पासपोर्ट मिले। शार्टी का एक पासपोर्ट मोजाम्बिक का था और दूसरा अमेरिका का।

शार्टी के पास दो पासपोर्ट मिलने से इंसपेक्टर हरिदर्शन को सन्देह हुआ। उन्होंने शार्टी से पूछताछ की तो उसने बताया कि उसकी मां अमरीकन थी और पिता मोजाम्बिक के रहने वाले थे। उसके माता-पिता में मतभेद थे, इसलिए उसने दोनों देशों की

नागरिकता ले रखी थी। हरिदर्शन ने उसके दोनों पासपोर्टों की गहराई से जांच की। मोजाम्बिक वाले पासपोर्ट पर उसके आगमन की १४ मार्च की इंदिरा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा दिल्ली की मोहर लगी हुई थी। पासपोर्ट में उसे छः माह के पर्यटन वीजा पर आया दर्शाया गया था। इस पासपोर्ट में उसका नाम मोरगन किवकि दर्ज था।

अमरीका वाले पासपोर्ट में मुम्बई के सहार अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे की १६ मार्च '९८ के आगमन की मोहर लगी थी। इस पासपोर्ट में तीन देशों का पर्यटन वीजा लगा हुआ था। प्रस्थान की मोहर किसी पासपोर्ट में नहीं थी। दोनों पासपोर्टों में फोटो तो शार्टी का था, लेकिन नामों में थोड़ा फर्क था। पते भी अलग-अलग थे।

राबर्ट का पूरा नाम नादिये असाने राबर्ट था। वह अमरीका के एक छोटे देश सेनेगल का रहने वाला था। उसके पासपोर्ट पर भी इंदिरा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे की १४ मार्च '९८ के आगमन की मोहर लगी थी।

राबर्ट और शार्टी के पासपोर्ट में छोटी-छोटी कई तकनीकी गलतियां थीं, जिनके बारे में सही जानकारी दूतावासों से मिल सकती थी।

हरिदर्शन ने शार्टी और राबर्ट से विस्तार से पूछताछ की तो उन्होंने बताया कि उन लोगों का एक विशाल गिरोह है, जो दुनियाभर के देशों में लोगों को लालच देकर इसी तरह ठगता है। इस गिरोह का संचालन मोजाम्बिक और अमरीका से होता है। शार्टी और राबर्ट ने बताया कि उनके गिरोह ने भारत के तमाम लोगों को ठगा है। दिल्ली में भी उन्होंने कई लोगों को अपना शिकार बनाया था। ये लोग अभी भी उनके द्वारा दिये गये काले कागज के टुकड़ों को यह सोचकर संभाले बैठे हैं, कि वे लोग कैमिकल लेकर लौटेंगे और काले कागजों को डालर्स में बदल देंगे। उन्होंने हरिदर्शन को ऐसे एक-दो लोगों के पते भी दिये। लेकिन पुलिस द्वारा सम्पर्क करने पर उन्होंने बदनामी की वजह से रिपोर्ट लिखाने से इंकार कर दिया। पूछताछ में शार्टी ने बताया कि वह दो पासपोर्ट इसलिए रखता था, जिससे पकड़े जाने की स्थिति में दूसरे पासपोर्ट के सहारे भाग सके।

हरिदर्शन ने शार्टी और राबर्ट की पूरी कार्यविधि की वीडियो फिल्म बनवायी, ताकि उसे अदालत में दिखाया जा सके।

शार्टी और राबर्ट ने पुलिस को बताया कि जिस सेफ में वे काले कागज रखकर लाये थे, उसे उन्होंने चार दिन पहले रानी झांसी रोड स्थित ब्राइट सेफ कम्पनी से बनवाया था। जिस बैग में सेफ रखकर लाये, वह उन्होंने करोलबाग में खरीदा था। डालर साइज वाले कागज के काले टुकड़े उन्होंने होटल में तैयार किये थे। उनके अनुसार कागज के टुकड़ों और सेफ में उन्होंने आयोडीन, काला तेल और बॉम्पलेक्स की टेबलेट का मिश्रण तैयार करके लगाया था। इससे बहुत तेज बदबू आती थी, जिसकी वजह से पास बैठे व्यक्ति का ध्यान उस ओर से हट जाता था। इसी बीच वे कागज के काले टुकड़े को असली डालर से बदल देते थे।

सेफ में उन्होंने आयोडीन, काला तेल और बॉम्पलेक्स की टेबलेट का मिश्रण तैयार करके लगाया था। इससे बहुत तेज बदबू आती थी, जिसकी वजह से पास बैठे व्यक्ति का ध्यान उस ओर से हट जाता था।

विस्तृत पूछताछ के बाद हरिदर्शन ने शार्टी और राबर्ट को तीस हजारी कोर्ट के मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट श्री पी०डी० गुप्ता की अदालत में पेश किया, जहां से उन्हें जेल भेज दिया गया।

बाद में पुलिस ने शार्टी और राबर्ट के पासपोर्ट जांच के लिए सम्बन्धित दूतावासों को भेजे, तो वे नकली पाये गये।

इंसपेक्टर हरिदर्शन के अनुसार, राबर्ट और शार्टी ने इसी तरह दिल्ली के कई और लोगों को भी ठगा था। उन्होंने उन लोगों से रिपोर्ट लिखाने का भी अनुरोध किया, पर वे बदनामी की वजह से तैयार नहीं हुए।

कथा प्रेस में जाने तक दोनों अभियुक्त जेल में थे।●

(पृष्ठ ९९ का शेष)

गया। फौजी ने उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट थाना मुखर्जी नगर में दर्ज करा रखी थी। सुनीता १३ फरवरी को गायब हुई थी। फौजी ने उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट १५ फरवरी '९८ को लिखायी थी।

इन सब बातों की जानकारी के बाद के०जी० त्यागी को लगा कि इस पूरे प्रकरण में सुनीता की कोई-न-कोई भूमिका जरूर रही होगी। सुनीता चूंकि फौजी की रखैल थी, इसलिए फौजी की तरफ पुलिस का ध्यान जाना स्वाभाविक ही था।

के०जी० त्यागी ने अपनी टीम को लगाकर प्रेमसिंह फौजी के बारे में जानकारियां जुटाई।

दसवीं पास प्रेमसिंह भारतीय थल सेना के तोपखाने में रंगरूट रह चुका था। उसने सन् १९७९ में सेना से स्वैच्छिक अवकाश ले लिया था।

प्रेमसिंह की शादी सन् १९८० में रोशनी देवी के साथ हुई थी। वह पांच बच्चों का पिता था।

प्रेमसिंह चूंकि सेना में रह चुका था, इसलिए सब उसे फौजी कहते थे। १९८० के दशक में दिल्ली में जब जमीनों के भाव आसमान छूने लगे और प्रॉपर्टी डीलरों की बन आयी, तो फौजी ने अपने पड़ोसी गांव मुकुंदपुर में अपने एक मित्र नरेश की साझेदारी में 'फौजी एसोसिएट' के नाम से प्रॉपर्टी डीलिंग का काम शुरू कर दिया। इसके साथ ही उसने झड़ौदा में दूध की डेयरी भी खोल ली थी। ढाका गांव मुखर्जी नगर के पास पड़ता है। झड़ौदा और मुकुंदपुर भी ढाका के आसपास हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय यहां से काफी पास है। दूर-दराज से दिल्ली में पढ़ने आये काफी छात्र इसी इलाके में रहते हैं। दिल्ली के अधिकांश गांव चूंकि महानगर में शामिल हो चुके हैं, अतः इन गांवों में शहरों जैसी सभी सुविधाएं मौजूद हैं। गांवों में किराये के कमरे काफी सस्ते मिल जाते हैं। इस वजह से अधिकांश छात्र मुखर्जी नगर के आसपास के गांवों में रहते हैं। फौजी ने ढाका गांव स्थित अपने म०नं० ८० में कई कमरे बनवा रखे थे। इन कमरों में बिहार के कई छात्र किराये पर रहा करते थे। आदित्य और अगस्त्य ने उसके सामनेवाले नकुलसिंह के मकान मे किराये पर कमरा ले रखा था।

सन् १९९१ में फौजी की मुलाकात शमीम उर्फ सुनीता से हुई। सत्रह वर्षीया शमीम फौजी की डेयरी के पास स्थित एक अन्य डेयरी पर काम करती थी। गोरे रंग और तीखे नयन-नक्शवाली सुनीता बेसहारा लड़की थी। उसके माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी। बिहार की रहनेवाली सुनीता का एक भाई था, जो कई वर्ष पहले बीमारी की भेंट चढ़ गया था। तभी से अपनी जिंदगी का बोझ वह स्वयं ढो रही थी।

फौजी ने सुनीता को देखा तो उस पर उसका दिल आ गया। वह उसे अपने जाल में फंसाने के लिए विभिन्न तरीकों से उसकी मदद करने लगा। शमीम उर्फ सुनीता जरूरतमंद लड़की थी। उसे किसी ऐसे सहारे की जरूरत थी, जो उसकी जिंदगी की नाव को किनारे लगा सके। फलस्वरूप वह धीरे-धीरे फौजी के पास आती गयी। जल्दी ही दोनों के बीच प्रेमिल संबंध बन गये। फौजी उसकी हर तरह से मदद करने लगा।

शमीम उर्फ सुनीता ने दूसरी डेयरी से काम छोड़कर फौजी की डेयरी पर काम करना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे फौजी और सुनीता इतने करीब आ गये कि उन्होंने पति-पत्नी की तरह साथ-साथ रहना शुरू कर दिया। फौजी की पहली पत्नी रोशनी ने इसका काफी विरोध भी किया, लेकिन फौजी पर उसका कोई असर नहीं हुआ। उसने शमीम उर्फ सुनीता को अपने घर में ही रहने की जगह दे दी।

सन् १९९५ तक सुनीता फौजी के साथ उसकी पत्नी के रूप में रहती रही। फौजी और सुनीता की उम्र में बीस-बाईस वर्ष का फर्क था। इस बेमेल जोड़ी के बीच मानसिक स्तर पर कुछ-न-कुछ मतभेद तो होने ही थे। फौजी दिनभर घर के बाहर रहता था, जबकि सुनीता घर में रहती थी।

फौजी के मकान में बिहार का एक युवक रमेश शर्मा किराये पर रहता था। फौजी की गैरमौजूदगी में उसकी आंखें सुनीता से लड़ गयीं। नवम्बर १९९५ में रमेश शर्मा सुनीता को भगाकर ले गया। सुनीता और रमेश दोनों को गायब देख फौजी को शक हो गया कि रमेश ही सुनीता को ले भागा है। उसने थाना मुखर्जी नगर में सुनीता के विरुद्ध रिपोर्ट लिखा दी। रिपोर्ट में उसने सुनीता को अपनी नौकरानी बताते हुए आरोप लगाया कि वह जेवरात और पैसा चोरी करके भागी है।

फौजी असरदार व्यक्ति था। रिपोर्ट लिखाकर वह चुप नहीं बैठा। उसने पुलिस पर बराबर दबाव बनाये रखा। इसका नतीजा यह निकला कि सुनीता गांव सीदीपुर, भागलपुर (बिहार) में पकड़ी गयी। गिरफ्तारी के बाद उसने आरोप लगाया कि फौजी उसे जबरन अपने घर में रखता था और उसके साथ व्यभिचार किया करता था। पुलिस ने उसके बयान पर प्रेम सिंह फौजी के विरुद्ध भा०द०वि० की धारा ३७६ के अंतर्गत केस भी दर्ज किया, लेकिन पुलिस ने इसे सुनीता द्वारा अपने बचाव के लिए लगाया गया आरोप माना। फिर भी पुलिस ने फौजी के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की।

पुलिस सुनीता को पकड़कर दिल्ली ले आयी। सुनीता ने दिल्ली आकर फौजी के खिलाफ काफी आग उगली। अखबारों ने भी इस खबर को काफी महत्व दिया। बहरहाल सुनीता पर चोरी का आरोप था। उसे अदालत में पेश करके जेल भेज दिया गया।

फौजी ने सुनीता पर चोरी का आरोप बेशक लगाया था, लेकिन वह उसे चाहता भी खूब था। उसके बिना रहना फौजी के वश की बात नहीं थी। उसने अपने एक दोस्त को सुनीता से मिलने जेल भेजा। सुनीता वहां पिंजरे में बंद पक्षी की तरह छटपटा रही थी। फौजी के दोस्त ने उसके सामने प्रस्ताव रखा कि यदि वह अपनी शिकायत वापस लेकर पुनः फौजी के साथ रहने को तैयार हो, तो उसकी जमानत करायी जा सकती है। सुनीता फौजी की ताकत को जानती थी। वैसे भी दिल्ली में न उसका कोई अपना था, न कोई ठिकाना। मजबूरी में वह तैयार हो गयी।

फौजी के इशारे पर उसके दोस्त ने सुनीता की जमानत करा दी। जेल से बाहर आकर उसने फौजी से समझौता कर लिया। दोनों ने अपनी शिकायतें वापस ले लीं। तब से सुनीता फौजी के साथ उसकी दूसरी पत्नी की तरह उसी के मकान में रह रही थी। दो साल साथ रहने के बाद १३ फरवरी '९८ को वह फिर गायब हो गयी थी।

एक तरफ सुनीता गायब हुई थी, दूसरी तरफ आदित्य और अगस्त्य का कत्ल हो गया था। सुनीता फौजी की रखैल थी और आदित्य व अगस्त्य उसके पड़ोस में रहते थे। ऐसी स्थिति में फौजी पर शक होना स्वाभाविक था। के०जी० त्यागी ने अपने वरिष्ठ अधिकारियों को पूरी जानकारी से अवगत कराकर फौजी को पूछताछ के लिए धारा १६० का नोटिस भेजकर अपने आफिस बुलाया। यह अट्ठाइस अप्रैल की बात है। पूछताछ में फौजी ने बताया कि आदित्य और अगस्त्य की हत्याओं के मामले में उसका कोई हाथ नहीं है। जहां सवाल सुनीता के गायब होने का था, तो वह दो माह पूर्व १३ फरवरी '९८ को गायब हुई थी। थाना मुखर्जी नगर में उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट भी दर्ज थी।

पुलिस अफसरों ने फौजी से विभिन्न तरीकों से पूछताछ की, लेकिन उसने हत्याओं से संबंधित काम की एक भी बात नहीं बतायी।

आदित्य और अगस्त्य की लाशें उनके सहपाठियों ने पहचान ली थीं। ये भी पता चल गया था कि वे दोनों जिला सीतामढ़ी के रहनेवाले थे। सबसे महत्वपूर्ण जो बात पता चली वह ये थी कि सुनीता सम्भवतः अभय के साथ भागी थी। अभय मृतकों आदित्य और अगस्त्य झा का सगा भाई था। दिल्ली विश्वविद्यालय से आदित्य और अगस्त्य झा का पता लेकर पुलिस ने उनके परिजनों को सूचना भेजवायी। आदित्य, अगस्त्य और अभय के दो मामा प्रशांत और राजीव ढाका गांव में किराये पर रहते थे। आदित्य और अभय के गायब होने पर उन्होंने २७ अप्रैल को उनके पिता सर्वेश्वर झा को फोन पर इसकी इत्तिला दी। वे लोग २९ अप्रैल को दिल्ली आये। जवान बेटों की मौत के गम ने उन्हें बुरी तरह तोड़ दिया था।

आदित्य और अगस्त्य के पिता ने पुलिस को बताया कि फरवरी में सुनीता अभय के साथ धनबाद चली गयी थी। वहां जाकर दोनों ने शादी कर ली थी। लेकिन दाम्पत्य सूत्र में

बंधने के एक माह बाद अभय से कुछ आपसी विवादों की वजह से उसने आत्महत्या कर ली थी। इस मामले में धनबाद पुलिस ने अभय के विरुद्ध भा०द०वि० की धारा ३०४ बी के तहत मुकदमा दर्ज करके उसे गिरफ्तार कर लिया था।

आदित्य और अगस्त्य झा की लाशों का पोस्टमार्टम हो चुका था। पुलिस ने लाशें सर्वेश्वर झा को सौंप दी। वे उन्हें अपने साथ ले गये। अभय के परिजन पोस्टमार्टम के बाद उसके शव को पहले ही वैशाली ले जा चुके थे। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, तीनों युवकों की मृत्यु दम घुटने से हुई थी।

पुलिस अफसरों ने जब सुनीता द्वारा आत्महत्या किये जाने की बात फौजी को बतायी, तो वह फूट-फूटकर रो पड़ा।

प्रेमसिंह फौजी ४५ वर्ष का था और सुनीता बाईस-तेईस साल की। सुनीता फौजी से प्रेम करती, तो वह दो बार इस तरह अन्य युवकों के साथ न भागती। हां, फौजी के रोदन को देखकर यह जरूर कहा जा सकता था कि वह सुनीता को जुनूनी हद तक चाहता था। जुनून में आदमी कुछ भी कर सकता है। यह बात पुलिस अफसरों के दिमाग में आयी, तो फौजी पर उनका शक बढ़ा। शक का एक कारण यह भी था कि फौजी के कई बदमाशों के साथ निकट संबंध थे। किसी की हत्या करवा देना उसके लिए मुश्किल काम नहीं था। फिर भी पुलिस अफसरों को इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था कि प्रेमसिंह फौजी जैसा व्यक्ति एक लड़की के लिए तीन युवकों की हत्या करेगा, या करवा देगा।

जांच टीम के पुलिस अधिकारियों ने जब इस मुद्दे पर विचार-विमर्श किया, तो इस नतीजे पर पहुंचे कि पहले उन बदमाशों का पता लगाया जाये, जिनसे प्रेमसिंह फौजी का संबंध है। इसकी जिम्मेदारी हवलदार जयसिंह को सौंपी गयी।

जयसिंह ने अपने सूत्रों से जानकारी एकत्र की। पता चला, प्रेमसिंह फौजी की दोस्ती राजू उर्फ सैम्सन से थी। पच्चीस वर्षीय राजू शादीशुदा और एक बच्चे का बाप था। वह अपनी पत्नी रोजी और चार साल के बच्चे के साथ राजेन्द्र बाबू टी०बी० अस्पताल, किंग्सवे कैम्प के क्वार्टर नम्बर १०० में रहता था। उसके पिता डी०एस० मैथ्यू काफी समय पहले प्रेमसिंह फौजी के मकान में किराये पर रह चुके थे। राजू और प्रेमसिंह तभी से एक-दूसरे को जानते थे।

राजू के बारे में जानकारी मिली कि वह शराबी-कबाबी किस्म का युवक है। गुण्डागर्दी और बदमाशी उसका पेशा है। फौजी उसे शराब भी पिलाता था और पैसा भी देता था। राजू पर हत्या के प्रयास का एक मुकदमा भी चल रहा था। सन् १९९५ में उसने तीमारपुर के एक व्यक्ति को चाकू मारकर उसकी हत्या करने का प्रयास किया था।

राजू फौजी के साथ रहकर उसके लिए गुण्डागर्दी के छोटे-मोटे काम करता है, हवलदार जयसिंह से यह जानकारी मिलने पर पुलिस ने राजू को उठा लिया।

फौजी जैसे जीवट वाले आदमी को राह पर लाना आसान नहीं था। उत्तरी जिला पुलिस टीम ने उसे राह पर लाने के लिए राजू का सहारा लिया। शराबी आदमी का मुंह खुलवाना पुलिस के लिए मुश्किल काम नहीं होता, इस मामले में भी यही हुआ।

राजू के सहारे रहस्य की पर्तें खुलनी शुरू हुई, तो एक बार उत्तरी जिला पुलिस के अधिकारी भी हैरत में रह गये। पुलिस के जाल में फंसने के बाद फौजी ने बताया कि हत्याएं तीन नहीं, बल्कि पांच छात्रों की हुई थीं। ये पांचों छात्र दिल्ली विश्वविद्यालय से ग्रेजुएशन कर रहे थे। उनकी हत्या की वजह सुनीता ही थी।



सुनीता फौजी से प्रेम करती, तो वह दो बार इस तरह अन्य युवकों के साथ न भागती। हां, फौजी के रोदन को देखकर यह जरूर कहा जा सकता था कि वह सुनीता को जुनूनी हद तक चाहता था।

सुनीता के प्यार के जुनून में फौजी ने राजू की मदद से पांचों छात्रों को मौत के घाट उतारा था। उन पांचों की हत्या उसने बेशक एक तरीके से की थी, पर उनकी लाशें इस तरह दूर-दूर फेंकी थीं, जिससे उन्हें आसानी से पहचाना न जा सके।

आदित्य, अजय और अगस्त्य के अलावा प्रेमसिंह फौजी के जुनून का शिकार जो दो अन्य युवक हुए थे, वे थे, बाड़ा हिन्दूराव के रहनेवाले अरशद जाफरी और शादाब। ये दोनों युवक भी दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र थे। इनमें अरशद जाफरी दिल्ली परिवहन निगम के चीफ जनरल मैनेजर एस०एन० जाफरी का पुत्र था। जबकि शादाब के परिजनों की बाड़ा हिन्दूराव में दुकान है।

अरशद जाफरी और शादाब गत वर्ष १७ जुलाई '९७ को लापता हुए थे। जब वे दोनों घर से निकले थे, तब अरशद के पास अपनी मारुति एस्टीम कार भी थी और सेल्युलर फोन भी। अरशद जाफरी और शादाब उस दिन जब रात गये तक घर नहीं लौटे, तो उनके परिजनों ने पुलिस में उनकी गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखा दी थी। पुलिस उन दोनों का तो कोई पता नहीं लगा सकी, अलबत्ता घटना के अगले दिन अरशद जाफरी की मारुति एस्टीम अन्तर्राज्यीय बस अड्डे की पार्किंग में खड़ी मिल गयी थी। उस समय यही समझा गया था कि अरशद और शादाब का अपहरण हो गया है। इस आशय की पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज की गयी थी। लेकिन न तो अपहर्ताओं की ओर से उनकी फिरौती के लिए कोई फोन आया, न शादाब और अरशद जाफरी के बारे में कोई महत्वपूर्ण जानकारी मिल सकी।

फौजी से पूछताछ के बाद अरशद जाफरी, शादाब, आदित्य, अजय और अगस्त्य झा की हत्याओं की जो कहानी पता चली, वह सनसनीखेज ही नहीं, बल्कि एक ऐसे बददिमाग जुनूनी व्यक्ति की वहशत की कहानी थी, जो अपने स्वार्थों को प्यार और प्यार को अपने बाप की बपौती समझता था।

यह सच है कि प्रेमसिंह फौजी ने बेसहारा शमीम को तब सहारा दिया, जब वह अकेली अपनी किस्मत से लड़ रही थी। लेकिन उसका यह कार्य निःस्वार्थ नहीं था। उसकी नजर खूबसूरत शमीम की जवानी पर थी, जिसे वह पैसे और ताकत के बूते पर हर हाल में हासिल करना चाहता था। शमीम बेसहारा थी, प्रेमसिंह फौजी सशक्त और समृद्ध। फलस्वरूप वह अपनी चाल में सफल रहा। पैसे की तराजू में तौलकर उसने एक ऐसे खूबसूरत फूल को खरीद लिया, जो किसी चमन को तो सुशोभित कर सकता था, पर उसके आंगन को नहीं। यह अलग बात है कि फौजी ने उस फूल को सजाकर अपने आंगन की शोभा बढ़ाने के लिए हर सम्भव प्रयास किया। इसी प्रयास में उसने शमीम को सुनीता नाम दिया।

पैसे और प्रयासों के बूते पर प्रेमसिंह फौजी को शमीम उर्फ सुनीता

का खूबसूरत जिस्म तो मिल गया, पर वह उसके मन की गहराई को छूना तो दूर, उसमें झांक तक नहीं पाया।

सुनीता की अपनी मजबूरियां थीं। उन्हीं मजबूरियों के तहत वह वर्षों तक दोगुनी उम्र के फौजी की जिंदगी में रखैल की भूमिका अदा करती रही। सुनीता को रहने के लिए घर और सारी सुविधाएं देने के बाद प्रेमसिंह फौजी ने समझा कि वह जिंदगीभर के लिए उसकी जरखरीद लौंडी हो गयी है। जबकि यह उसकी भूल थी।

सुनीता जवान थी। खूबसूरत थी। उसकी अपनी भावनाएं थीं, चाहतें थीं। वह प्रेमसिंह की बनकर बेशक रह रही थी, पर उसका मन करता था कि उसे प्यार करनेवाला कोई ऐसा युवक हो, जो उसे दिल-ओ-जान से चाहता हो। उसे जी भरके प्यार करे।

प्रेमसिंह फौजी के मकान में रमेश शर्मा नाम का एक युवक किराये पर रहता था। वह भागलपुर (बिहार) का रहनेवाला था। रमेश शादीशुदा था और कभी-कभी अपनी पत्नी को दिल्ली ले आता था। सन् १९९५ में जब रमेश शर्मा अकेला रह रहा था, तो उसकी आंखें सुनीता से टकरा गयीं। सुनीता को प्यार के लिए किसी ऐसे ही सजीले नौजवान की जरूरत थी। वह रमेश के प्यार में मुब्तिला हो गयी। रमेश का प्यार पाकर सुनीता को लगा, कि उसे जो रमेश से मिल सकता है, वह फौजी से कभी नहीं मिल सकता। यौवन के लिए पैसा या सुख-सुविधाएं उतनी जरूरी नहीं हैं, जितना जरूरी मनपसंद साथी का साथ है। रमेश शर्मा सुनीता से प्यार करने लगा था और उसे अपने साथ बिहार ले जाने को तैयार था। सुनीता भी यही चाहती थी। फलस्वरूप दोनों ने योजना बनायी और नवम्बर '९५ में एक दिन प्रेमसिंह फौजी को धता बताकर दिल्ली से भाग गये।

रमेश शर्मा और सुनीता एकसाथ गायब हुए थे। फौजी समझ गया कि सुनीता रमेश के साथ गयी है। भागलपुर जाकर सुनीता को वापस लाना फौजी के वश में नहीं था। फौजी की मजबूरी यह थी कि वह सुनीता को अपनी पत्नी भी नहीं बता सकता था। अंततः सोच-विचारकर उसने उसे अपनी नौकरानी बताते हुए थाना मुखर्जीनगर में उसके विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज करा दी। रिपोर्ट में उसने लिखाया कि सुनीता उसके घर से जेवरात और पैसा चोरी करके भागी है।

फौजी असरदार व्यक्ति भी था और पैसेवाला भी। उसने पुलिस पर दबाव डालकर सुनीता को भागलपुर से गिरफ्तार कराकर दिल्ली बुला लिया। जाहिर है, सुनीता पर चोरी का आरोप निराधार था। सुनीता को फौजी की यह हरकत अच्छी नहीं लगी। उसने भी फौजी की पोलपट्टी खोलते हुए उसके विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज करा दी कि वह वर्षों से उसे जबरन अपने घर में रखे हुए था और उसके साथ मुंह काला करता था। पुलिस ने सुनीता के बयान को आधार बनाकर प्रेमसिंह फौजी के खिलाफ भी कार्रवाई की। बाद में फौजी ने अपने एक दोस्त के माध्यम से सुनीता की ज़मानत कराकर उससे समझौता कर लिया। सुनीता फिर फौजी के साथ रहने लगी।

अधेड़ उम्र के फौजी ने जवान सुनीता को अपनी बनाकर एक बार फिर साथ तो रख लिया, लेकिन वह यह भूल गया कि सुनीता को जो चस्का लग चुका है, वह अब आसानी से छूटेगा नहीं।

फौजी के अपने तथा पास-पड़ोस के मकानों में दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्जनों छात्र रहते थे। इन छात्रों में से कई की नजर खूबसूरत सुनीता पर थी। फौजी काम के सिलसिले में दिनभर घर से बाहर रहता था। फौजी की गैर-मौजूदगी मनचले छात्रों के लिए सोने में सुहागा थी। कई छात्रों ने गाहे-ब-गाहे सुनीता को लाइन मारनी शुरू की। अपने हमउम्र छात्रों से आंखें लड़ाना सुनीता को अच्छा लगा। सुनीता पर किसी तरह की कोई पाबन्दी नहीं थी। वह अकेली रहती थी। फोन की सुविधा भी उसे उपलब्ध थी। फलस्वरूप दिल्ली विश्वविद्यालय के कई छात्र उसके इर्द-गिर्द मंडराने लगे। एक-दो छात्रों से उसकी टेलीफोन पर भी बातें होने लगीं। धीरे-धीरे उसके पास कई छात्रों का आना-जाना शुरू हो गया। इनमें शादाब और सलीम भी शामिल थे। फौजी इस बात से अनभिज्ञ था कि कुछ छात्रों और सुनीता के बीच आंख-मिचौली चल रही है।

राजू से फौजी की अच्छी पटती थी। वह उसके लिए प्रॉपर्टी से संबंधित मामलों में गुण्डागर्दी के काम किया करता था। राजू सुनीता को भी अच्छी तरह जानता था। सुनीता कभी-कभी उसके घर भी आती रहती थी। एक बार सुनीता ने राजू के घर शादाब और सलीम को बुलाया। उसने हकीकत छुपाने के लिए राजू से बताया कि वे दोनों उसके मरहूम भाई के दोस्त हैं। राजू खेला-खाया युवक था। वह उन लोगों के रिश्तों की हकीकत जान गया। उसे तब और भी पक्का यकीन हो गया, जब सुनीता ने उन दोनों से अकेले में बात की। बातों के बाद सुनीता ने शादाब और सलीम से रविवार को पुनः वहीं पर मिलने को कहा। अगले रविवार को जुलाई १९९७ की छह तारीख थी।

राजू, प्रेमसिंह फौजी का विश्वस्त आदमी था। उसने यह बात प्रेमसिंह को बता दी। उसकी प्रेमिका छुप-छुपकर लड़कों से मिलती हैं, यह जानकर प्रेमसिंह आपे से बाहर हो गया। उसने राजू से कहा, "जिन लड़कों ने मेरी सुनीता पर नजर डाली है, वे अब जिंदा नहीं रह सकेंगे। तुम इस काम में मेरा साथ दोगे।"

राजू फौजी का अपना आदमी था। वह कैसे इंकार करता। फौजी ने इस मामले को लेकर सुनीता की जमकर धुनाई की। फिर उसे डरा-धमकाकर उससे सलीम और शादाब को फोन कराया कि रविवार को वे लोग शाम को राजू के घर जरूर पहुंचें। सुनीता से फोन कराने के बाद फौजी ने उसे घर में कैद कर दिया। वहां से फोन भी हटा दिया गया, जिससे वह शादाब या सलीम को फोन न कर सके।

इसके बाद फौजी ने राजू से कहा कि ६ जुलाई '९७ की शाम को जब शादाब और अरशद उसके घर पहुंचें, तो वह उन्हें यह कहकर झड़ौदा स्थित डेयरी पर ले आये कि सुनीता ने उन्हें वहीं खाने पर बुलाया है।

रविवार, ६ जुलाई '९७ को शादाब और सलीम की जगह अरशद जाफरी मारुति एस्टीम से राजू के घर पहुंचे। मारुति एस्टीम अरशद जाफरी की थी। वह सेल्युलर फोन भी साथ लिये था। योजना के अनुसार, राजू झूठ बोलकर उन्हें झड़ौदा डेयरी ले गया। फौजी ने वहां उनकी मौत का इंतजाम पहले ही कर रखा था। इसके लिए उसने उत्तर प्रदेश के एक दो बदमाशों को भी बुला लिया था। राजू, अरशद जाफरी और शादाब को साथ लेकर जब झड़ौदा डेयरी पर पहुंचा, तब अंधेरा घिर आया था।

योजना के अनुसार फौजी ने दोनों युवकों के साथ ऐसा व्यवहार किया, जैसे वह सब कुछ जानता हो। उसने शादाब और अरशद जाफरी से कहा, "सुनीता आप लोगों के लिए खाना तैयार कर रही है। जब तक खाना बने, तब तक हमारे साथ बैठकर इंज्वॉय कीजिए।"

मजबूरी थी। अरशद जाफरी और शादाब को बैठना पड़ा। राजू साथ था, इसलिए उन्होंने ज्यादा परवाह भी नहीं की। पूरी तैयारी पहले ही कर ली गयी थी। खाने-पीने का दौर शुरू हो गया। पीने-पिलाने के दौरान फौजी ने अरशद जाफरी और शादाब के गिलासों की शराब में नींद की गोलियां मिला दीं। फलस्वरूप दोनों युवक तीन-तीन पैग पीने के बाद बेहोशी के आलम में आ गये। फौजी को इसी घड़ी का इंतजार था। दोनों युवकों के बेहोश होते ही उसने अपने साथी बदमाशों की मदद से रस्सी डालकर उनके गले घोंट दिये।

अरशद जाफरी और शादाब को मौत के घाट उतारकर फौजी ने उनकी पहचान मिटाने के लिए उस्तरे से पहले उनके सिर गंजे किये, फिर उनके बदन से सारे कपड़े उतार डाले। तत्पश्चात वह अपने साथियों की मदद से पहले शादाब की लाश को अरशद जाफरी की मारुति एस्टीम में डालकर सोनीपत ले गया। सोनीपत के थाना राई के क्षेत्र में शादाब की लाश और कपड़े फेंककर फौजी और उसके साथी वापस लौट आये। वापस आकर उन्होंने अरशद जाफरी की लाश कार में डाली और उसे जिला मेरठ के थाना दौराला के जंगल में फेंक आये। उसके कपड़े भी रास्ते में फेंक दिये गये। दोनों युवकों की लाशें ठिकाने लगाने के बाद फौजी ने अरशद जाफरी का सेल्युलर फोन अपने पार्टनर नरेश को दे दिया और मारुति एस्टीम अन्तर्राज्यीय बस अड्डे की पार्किंग में खड़ी कर दी।

शादाब का शव तो राई पुलिस को

Only Me

दुनिया भर में मशहूर स्प्रे
पुरुषों के लिए



उतनी ही मस्ती! उतना ही मज़ा!
बार! बार!

Available in all leading Medical Stores • प्रमुख दवाई की दुकानों पर उपलब्ध





Available in Maharashtra, Gujarat, M.P., Goa, Rajasthan, Delhi, U.P., Harayana, Himachal Pradesh and J & K.

Marketed in North India by:
J. K. CHEMICALS LTD.
FB-5, Ist Floor, Shivaji Enclave, New Delhi - 110 027

डाक द्वारा मंगाने हेतु, आप अनिवार्य मूल्य रु. 125 का 'मनीऑर्डर' या डिमांड ड्राफ्ट भेजें। कृपया अपना पूरा पता लिखें। आपको Only Me पोस्ट, पार्सल या कुरियर द्वारा भेजा जाएगा।

For Exports And Trade Inquries
Synthiko
Synthiko Exports Pvt Ltd; Om Dham, Lalubhai Park, Andheri (W), Bombay-400 058; Tel & Fax 6280887

मिल गया था, पर अरशद जाफरी की लाश का पता नहीं चला।

शादाब और अरशद जाफरी को मौत के घाट उतार दिया गया है, सुनीता को इस बात की जानकारी नहीं मिली। उधर उन दोनों की मौत के बाद प्रेमसिंह फौजी निश्चिंत हो गया कि अब कोई भी सुनीता पर डोरे डालने की कोशिश नहीं करेगा।

शादाब और अरशद के अचानक गायब होने और अरशद की मारुति एस्टीम मिल जाने के बाद उनके परिजनों ने उनके अपहरण की रिपोर्ट भी लिखायी और अपने स्तर पर भरपूर खोजबीन भी की, लेकिन उन दोनों के बारे में कहीं से कोई जानकारी नहीं मिली। वक्त के साथ सुनीता भी उन्हें भूल गयी।

नवम्बर १९९७ में सुनीता की आंखें अभय कुमार से लड़ीं। अभय कुमार दिल्ली में चार्टर्ड एकाउंटेंट का कोर्स करने के साथ-साथ एक प्राइवेट फर्म में नौकरी भी कर रहा था। आदित्य और अगस्त्य झा अभय कुमार के भाई थे। अभय कुमार अपने भाइयों के कमरे पर आता-जाता था। वहीं पर सुनीता से उसकी आंखें लड़ी थीं। धीरे-धीरे अभय और सुनीता ने मिलना शुरू कर दिया। जल्दी ही उनकी मुलाकात प्यार में बदल गयी। सुनीता एक अत्याचारी के जाल में फंसी है, यह जानकर अभय को उससे और भी ज्यादा हमदर्दी हुई। उसने निश्चय किया कि सुनीता को वहां से निकालकर बिहार ले जायेगा और उससे शादी कर लेगा। इसके लिए उसने सुनीता से बात की तो वह तैयार हो गयी।

अभय और सुनीता के बीच क्या खिचड़ी पक रही है, आदित्य और अगस्त्य इस बात से पूरी तरह अनभिज्ञ थे। अलबत्ता इस बारे में इन लोगों के दोस्त अजय को थोड़ी-बहुत जानकारी जरूर थी। अजय सुनीता से बातचीत करता रहता था। उसे सुनीता से बात करते हुए प्रेमसिंह फौजी ने भी देखा था।

अभय और सुनीता ने अपने भविष्य की योजना बना ली थी। उनके भागने की भी तैयारी हो चुकी थी। योजना के अनुसार १३ फरवरी '९८ को अभय और सुनीता ने दिल्ली छोड़ दी। दिल्ली से भागकर वे दोनों धनबाद पहुंचे। वहां दोनों ने शादी कर ली।

इधर सुनीता के गायब होने के बाद १५ फरवरी '९८ को फौजी ने थाना मुखर्जी नगर में उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखा दी थी। प्रेमसिंह फौजी को अभय पर कोई शक नहीं था। इसकी वजह ये थी कि अभय गांव ढाका में नहीं रहता था।

जिस दिन सुनीता गायब हुई थी, उससे चार-पांच दिन पहले अजय कुमार अपने घर चला गया था। उसके जाने के बाद ही सुनीता गायब हुई थी। अजय सुनीता से अक्सर बातचीत किया करता था। इससे फौजी को सन्देह हुआ कि सुनीता को अजय ही ले गया है।

सुनीता के जाने के लगभग एक माह बाद अजय अकेला वापस लौट आया। फौजी चूंकि सुनीता के गायब होने के मामले में अजय को ही दोषी मानकर चल रहा था, अतः उसने अपना पूरा ध्यान उसी पर केन्द्रित कर दिया। अजय से पूछताछ करके उसे मौत के घाट उतारना है, यह बात फौजी ने राजू को भी बता दी थी।

अजय को विश्वास में लेने में काफी दिन लगे। जब वह जाल में फंस गया, तो फौजी ने राजू के माध्यम से १५ अप्रैल '९८ को उसे पीने-पिलाने के लिए अपनी डेयरी पर बुलाया।

पीने-पिलाने का दौर चला तो फौजी ने उसे दो-तीन पैग पिलाने के बाद सुनीता के बारे में पूछताछ की। अजय को पता था कि सुनीता अभय कुमार के साथ धनबाद गयी है। उसने यह बात फौजी को बता दी। फौजी समझ गया कि इस मामले में थोड़ा-बहुत हाथ अजय का भी रहा है। अतः उसने अजय को ठिकाने लगाने का मन बना लिया। बातों-बातों में उसने अजय के गिलास की शराब में नींद की गोलियों का चूर्ण मिला दिया। अजय दो-तीन पैग पहले ही पिये हुए था। नींद की गोलियां मिली शराब पीकर वह बेहोश हो गया। उसके बेहोश होते ही फौजी ने उसके गले में रस्सी डालकर उसके प्राण हर लिये।

अजय को मौत के घाट उतारने के बाद प्रेमसिंह फौजी ने पहचान मिटाने के लिए उस्तरे से उसके सिर के बाल मूंड़ दिये और शरीर से सारे कपड़े उतारकर राजू की मदद से उसकी लाश कार में डाल ली। इसके बाद वह राजू के साथ जाकर उसकी लाश को थाना समयपुर बादली के क्षेत्र में एक सुनसान जगह पर फेंक आया। इसके अगले दिन ही पुलिस को उसकी लाश मिल गयी थी। अजय की लाश की शिनाख्त नहीं हो सकी। पोस्टमार्टम के बाद पुलिस ने शव ७२ घंटे के लिए मुर्दाघर में रखवा दिया। लाश १९ अप्रैल को पहचानी जा सकी।

सुनीता अभय के साथ बिहार जा चुकी थी। उसे वहां से वापस लाना फौजी के वश में न था। अभय का भी वह कुछ नहीं बिगाड़ सकता था और कोई वश न चला तो सुनीता के प्रेम के जुनून में डूबे प्रेमसिंह फौजी के गुस्से की गाज गिरी अभय के भाइयों आदित्य और अगस्त्य झा पर। फौजी को लगा कि यदि वे दोनों वहां न रह रहे होते, तो न अभय ढाका में आता और न सुनीता से उसकी आंखें लड़तीं। क्रोध की ज्वाला भड़की तो फौजी ने अभय की जगह आदित्य और अगस्त्य से बदला लेने की ठान ली। उसने राजू को उनके पीछे लगा दिया, ताकि वह उन दोनों को पटाकर किसी तरह झड़ौदा डेयरी तक ला सके।

> अभय और सुनीता के बीच क्या खिचड़ी पक रही है, आदित्य और अगस्त्य इस बात से पूरी तरह अनभिज्ञ थे। अलबत्ता इस बारे में इन लोगों के दोस्त अजय को थोड़ी-बहुत जानकारी जरूर थी।

राजू ने इस बार अपनी ड्युटी को अंजाम दिया २५ अप्रैल '९८ को। दरअसल आदित्य और अगस्त्य को फौजी या राजू पर किसी तरह का कोई शक तो था नहीं, आपस में भी उनके संबंध अच्छे थे, इसलिए २५ अप्रैल को जब झड़ौदा डेयरी पर खाने-पीने का प्रोग्राम बना तो वे दोनों राजू के साथ चले गये। फौजी पूरी योजना पहले ही बनाये बैठा था। उसने शादाब, अरशद जाफरी और अजय की तरह उन्हें भी नींद की गोलियां मिलाकर शराब पिलायी। जब दोनों भाई बेहोशी की अवस्था में पहुंच गये, तो फौजी ने उस्तरे से दोनों के सिरों के बाल मूंड़े। फिर उनके कपड़े उतारकर हत्या कर दी। फिर नंगी लाशें कार में डाल लीं। उसी रात उसने राजू के सहयोग से दोनों भाइयों की लाशें थाना समयपुर बादली क्षेत्र के गांव तिगड़ीपुर और थाना तीमारपुर के जंगल में अलग-अलग फेंक दीं।

अगले दिन जब दोनों लाशें मिलीं, तो पहचाने जाने पर पता चला कि दोनों मृतक भाई-भाई थे। दोनों भाइयों की हत्याएं एक ही तरह से की गयी थीं। इससे पुलिस ने अनुमान लगाया कि हत्याएं हुई भी एक जगह होंगी और दोनों के हत्यारे भी एक ही रहे होंगे। बाल मूंड़े जाने की वजह से हत्याओं का यह मामला रंजिश का लगता था। इसलिए दोनों हत्याओं के केस थाना समयपुर बादली में दर्ज करके जांच का काम इंसपेक्टर संदीप बयाला को सौंप दिया गया था।

दस दिन के अंदर तीन छात्रों की लाशें एक ही स्थिति में मिलने के बाद जिला पुलिस अधिकारियों की नींद हराम हुई, तो इस मामले की जांच के लिए जिले के चुनिंदा अफसरों की टीम बनायी गयी थी। जब जांच शुरू हुई तो सुनीता का नाम आया। उसी के सहारे पुलिस आगे बढ़ी, तो फौजी जाल में फंसा।

पांच छात्रों की हत्याओं की कहानी खुलने के बाद पुलिस ने प्रेमसिंह फौजी, उसके सहयोगी राजू और इंदिरा विकास कालोनी मुखर्जी नगर निवासी उसके पार्टनर नरेश को गिरफ्तार कर लिया। नरेश के पास से अरशद जाफरी का सेल्युलर फोन भी बरामद हो गया। जिस उस्तरे से मृतकों के सिर के बाल साफ किये गये थे, वह फौजी की झड़ौदा डेयरी से बरामद हो गया। मृतकों के कपड़े झड़ौदा डेयरी और राजू के घर से मिले।

विस्तृत पूछताछ के बाद पुलिस ने ३० अप्रैल '९८ को तीनों अभियुक्तों को तीस हजारी कोर्ट के मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट श्री विपिन गुप्ता की अदालत में पेश किया, जहां से उन्हें तिहाड़ जेल भेज दिया गया। ●

(कथा पुलिस सूत्रों पर आधारित)

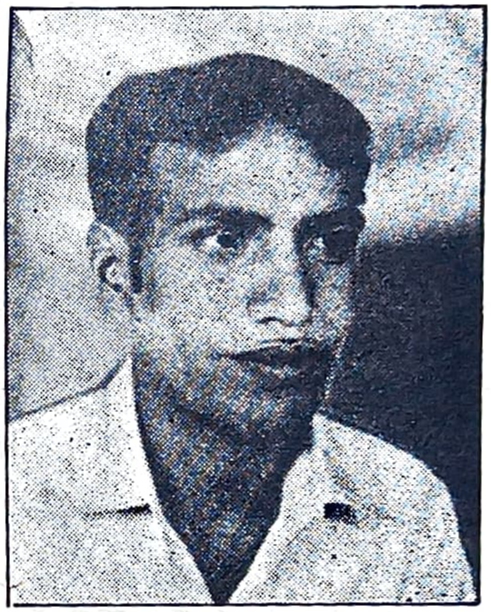
ज़िंदा समाधि : यह कैसी भक्ति

बालजी पटेल की समाधि श्रद्धालुओं की आस्था का केन्द्र, और धर्म के धंधेबाजों के लिए कमाई का अड्डा बनी हुई है

—उर्मिला प्राण दुबे



विमला वेन



बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा

गाजे-बाजे ढोल-धमाके और रामधुन की आवाजें सुनकर मोरवाड़ा गांव के निवासियों की नींद खुल गयी। अनेक लोगों ने बाहर निकलकर देखा, ट्रैक्टर पर सवार बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा आगे-आगे था, बाकी लोग उसके पीछे-पीछे। यह काफिला डेरी पीपरिया गांव से आ रहा था।

ग्रामीणों को मालूम था कि बालजी पटेल ने गांव के बाहर हिंदवापीर के थान पर ५ मार्च को रुद्राक्ष यज्ञ का आयोजन किया है। यज्ञ के लिए एक काफी बड़ा गड्ढा भी खोदकर तैयार कर लिया गया था। अन्य आवश्यक तैयारियां भी हो चुकी थीं। चूंकि प्रस्तावित यज्ञ-स्थल पर विद्युत-व्यवस्था नहीं थी, चुनांचे शहर से शक्तिशाली जेनरेटर मंगवा लिया गया था। यज्ञ-स्थल पर रात को भी दिन जैसा प्रकाश रहता था।

पूर्व घोषणानुसार यज्ञ शुरू होने में अभी दो दिन शेष थे। फिर रात्रि के अंतिम प्रहर में बालजी पटेल अपने पारिवारिक सदस्यों एवं शिष्यों के साथ कहां जा रहा था, यह जिज्ञासा ग्रामीणों के मन में स्वाभाविक थी। अतः कुछ उत्साही एवं श्रद्धालु व्यक्ति बालजी पटेल के काफिले के साथ हो लिये।

यज्ञ-स्थल पर पहुंचकर बालजी पटेल ने हिंदवापीर की समाधि पर शीश नवाया, फिर पालथी मारकर वहीं ध्यान की मुद्रा में बैठ गया।

शिष्यों ने वहां दरी-चादर पहले से ही बिछा रखी थी। बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा के बैठते ही उसकी पत्नी विमला बेन, पुत्र अल्पेश और प्रकाश, ससुर भीखा भाई उसके आसपास बैठ गये। इनके पीछे जो लोग बैठे थे, वे मौनी बाबा के शिष्य एवं क्षेत्रीय नागरिक थे। बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा ने अपने शिष्यों को ५ मार्च ९८ से प्रारंभ होनेवाले रुद्राक्ष यज्ञ की सूचना दे दी थी। उसी में शामिल होने के लिए कुछेक शिष्य सूरत और अहमदाबाद से २ मार्च को डेरी पीपरिया गांव (जिला अमरेली, गुजरात) आये थे।

ध्यान तोड़ने के बाद बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा ने क्षेत्रीय नागरिकों से यज्ञ-स्थल से १०० फुट दूर चले जाने को कहा। लोग दूर हट गये। रह गये बालजी पटेल के पारिवारिक सदस्य और कुछेक खास शिष्य।

बालजी पटेल ने अपनी कलाई घड़ी देखी, सुबह के ४ बज रहे थे। जिस उद्देश्य के लिए वह यज्ञ-स्थल पर आया था, उसका समय हो चुका था। अतः बालजी पटेल अपने ससुर से बोला, "अब समय आ गया है कि मैं गुरु की इच्छा पूरी करूं। आशा है, आप मुझे इस शुभ कार्य के लिए रोकेंगे नहीं। वैसे भी मानव-जीवन क्षणिक है, और उसका अंत मृत्यु है। साधना की गरिमा जीवन से महान होती है, और गुरु-आदेश की अवहेलना धर्मशास्त्र में वर्जित है। अतः आप मुझे अनुमति दीजिए।"

भीखा भाई ने अपने दामाद को हंसी-खुशी गुरु-आदेश का पालन करने की अनुमति दे दी।

अब बालजी पटेल अपनी पत्नी विमला बेन से मुखातिब हुआ, "बहन, मोक्ष-प्राप्ति हेतु तुम्हें मुझको राखी बांधकर विदा करना होगा।"

बालजी पटेल ने कलाई आगे बढ़ायी। विमला बेन ने उस पर झट राखी बांध दी। उसके बाद बालजी पटेल ने अपने दोनों पुत्रों के सिर पर हाथ फेरे, फिर शिष्यों से बोला, "विदाई का समय आ गया है...मैं चलता हूं। यदि गांववालों पर कोई विपदा या संकट आये, तो मेरे नाम से दो नारियल मेरी समाधि पर चढ़ा दें, संकट से मुक्ति मिल जायेगी।"

उसके बाद बालजी पटेल यज्ञ के लिए खोदे गये गड्ढे में कूदकर पद्मासन की मुद्रा में बैठ गया। रामधुन की गति और तेज हो गयी। शिष्यों ने बेलचे उठाये और थोड़ी दी देर में उस गड्ढे को पाट दिया। यज्ञ-स्थल बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा का जीवित समाधि-स्थल बन गया। शिष्यों, अनुयायियों, श्रद्धालुओं की आस्था का केंद्र, और धर्म की आंच पर स्वार्थ की रोटियां सेंकनेवालों के लिए कमाई का एक और अड्डा।

बालजी पटेल का जन्म चलाला विस्तार के घसानी ग्राम में हुआ था। उसके पिता खोड़ाभाई पटेल खेती करते थे। पांच भाई व तीन बहनों में बालजी पटेल का नम्बर तीसरा था।

बालजी पटेल जब मात्र बारह वर्ष का था, तभी उसके पिता खोड़ाभाई पटेल का स्वर्गवास हो गया था। अतः गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी बालजी की मां जकला बेन के कंधों पर आ गयी थी। किसी तरह उसने अपने बच्चों की परवरिश की। लड़कों को पढ़ाया-लिखाया, लड़कियों के विवाह किये।

कालांतर में बालजी पटेल के दो बड़े भाई धीरू और मगन सूरत जाकर बस गये थे। वे दोनों वहां पर एक जौहरी के यहां हीरा तराशने का काम करते थे।

उसी बीच, १९८३ में जकला बेन ने बालजी का विवाह हामापुर, बगसरा के भीखाभाई बाबरिया की पुत्री विमला से कर दिया था। हालांकि बालजी पटेल विवाह नहीं करना चाहता था। बचपन से ही उसकी रुचि ईश-आराधना एवं पूजा-पाठ में अधिक थी। गृहस्थ-जीवन के बारे में उसने कभी सोचा ही नहीं था। लेकिन मां की जिद के आगे उसकी एक न चली थी, और उसे विमला बेन से ब्याह करना ही पड़ा था।

कालांतर में बालजी पटेल दो पुत्रों अल्पेश और प्रकाश का पिता बना।

धीरे-धीरे परिवार बड़ा होता जा रहा था। उसी अनुपात में घर के खर्च भी बढ़ रहे थे। जमीन की पैदावार से गुजारा करने में मुश्किलें पेश आने लगी थीं।

आर्थिक तंगी ने सताना शुरू किया, तो बालजी को अपने भाइयों धीरू और मगन की याद आयी। अब तक वे दोनों सूरत छोड़कर अहमदाबाद में जा बसे थे, और वहीं पर नगीने तराशकर खासी कमाई कर रहे थे।

गांव में तो खेती के अलावा कुछ करने लायक था नहीं, अतः बालजी पटेल अपने भाइयों के पास अहमदाबाद चला गया। धीरू और मगन ने बालजी को हाथोंहाथ लिया, और वह उन्हीं के साथ रहकर हीरा तराशने का काम सीखने लगा।

बालजी पटेल में काम सीखने की लगन थी, मेहनत भी उसने खूब की। अतः जल्दी ही वह काम सीखकर चार पैसे कमाने लगा। कमाई शुरू हुई तो बालजी अपनी पत्नी और दोनों पुत्रों को अहमदाबाद ले आया, और अलग मकान किराये पर लेकर रहने लगा। गांव में रह गयी मां जकला बेन, और दो छोटे भाई-भोला व घनश्याम।

अहमदाबाद में बालजी पटेल का जीवन हंसी-खुशी गुजर रहा था, कि एक घटना ने उसकी जिन्दगी का ढर्रा ही बदल दिया। हुआ यह कि एक दिन अल्पेश अचानक लापता हो गया। बालजी ने अपने स्तर पर उसे काफी खोजा, पुलिस की शरण में भी गया, किन्तु उसका कहीं भी सुराग नहीं लगा।

बालजी की रामदेवपीर में गहरी आस्था थी। हर ओर से निराश होकर उसने मनौती मानी कि यदि अल्पेश सकुशल घर लौट आयेगा, तो वह अपना जीवन रामदेवपीर को समर्पित कर देगा।

पता नहीं यह मात्र संयोग था, या दैवी चमत्कार अथवा कुछ और कि मनौती मानने के दो दिन बाद ही अल्पेश खुद-ब-खुद घर लौट आया। पूछने पर उसने बताया कि उस साधु जैसे कुछ पाखंडी लोग बहला-फुसलाकर अपने साथ शहर से दूर कहीं ले गये थे, फिर उन लोगों ने उसे बंधक बना लिया था। अल्पेश ने बताया कि पिछले दिन रामदेवपीर जैसा एक संत उसके पास आया था। उसने पाखंडी साधुओं की खूब पिटाई की थी। तत्पश्चात् अल्पेश को उनके चंगुल से मुक्त कराकर घर तक छोड़ गया था।

ईश्वर जाने अल्पेश ने सच कहा था या झूठ, पर इस घटना से बालजी पटेल के मन में रामदेवपीर के प्रति आस्था काफी बढ़ गयी थी। वह हर समय रामदेव पीर की पूजा-अर्चना में ही व्यस्त रहता था।

बालजी की पत्नी विमला बेन के अनुसार, अल्पेश के घर लौटने के बाद बालजी ने एक तरह से वैराग ही ले लिया था। सांसारिक मोह-माया के बंधनों से उसे विरक्ति हो गयी थी। बालजी और विमला बेन नाममात्र के पति-पत्नी रह गये थे। बालजी पटेल ने पत्नी को अपनी बहन मान लिया था।

कुछ ही महीनों में बालजी पटेल की सांसारिक विरक्ति इतनी बढ़ गयी कि उसने सारा काम-धंधा छोड़ दिया। तत्पश्चात अपनी पत्नी और दोनों पुत्रों को लेकर डेरी पीपरिया गांव में किराये का मकान लेकर रहने लगा। उल्लेखनीय है कि गुजरात के जूना गढ़ शहर से ७० किलोमीटर दूर मोरवाड़ा गांव है, जहां बालजी ने जिन्दा समाधि ली... और मोरवाड़ा से २ किलोमीटर दूर डेरी पीपरिया गांव है, जहां पर बालजी सपरिवार रहता था।

डेरी पीपरिया के निवासी बालजी पटेल से बहुत प्रभावित थे। वे उसे सिद्ध-पुरुष समझते थे। अनेक ग्रामीण अपनी छोटी-मोटी समस्याएं लेकर बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा के पास जाते रहते थे। वह अपनी तथा कथित सिद्धि से उनके कष्टों का निवारण भी करता था।

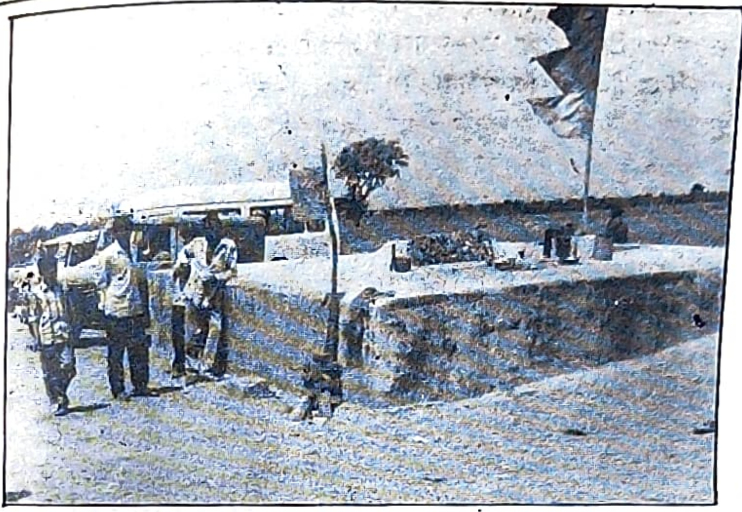
बालजी पटेल की पत्नी विमला बेन भी मां खोडियार की उपासक थी। वह भी ग्रामीण महिलाओं के दुख-दर्द दूर किया करती थी।

विमला बेन के अनुसार, पिछले कुछ दिनों से बालजी पटेल को अजीबोगरीब सपने आ रहे थे। सपने में ही रामदेवपीर ने उसे आदेश दिया था कि वह ५ मार्च'९८ को मोरवाड़ा गांव के बाहर हिन्दवापीर की समाधि के पास रुद्राक्ष-यज्ञ का आयोजन करे। चूंकि संत मलूकदास ने कभी यह शाप दिया था कि अमरेली जनपद की सीमा में कभी कोई धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो सकेगा, इसी लिए रामदेव पीर ने बालजी पटेल को निर्देश दिया था कि वह जूनागढ़ जनपद के मोरवाड़ा गांव में यज्ञ का आयोजन करे।

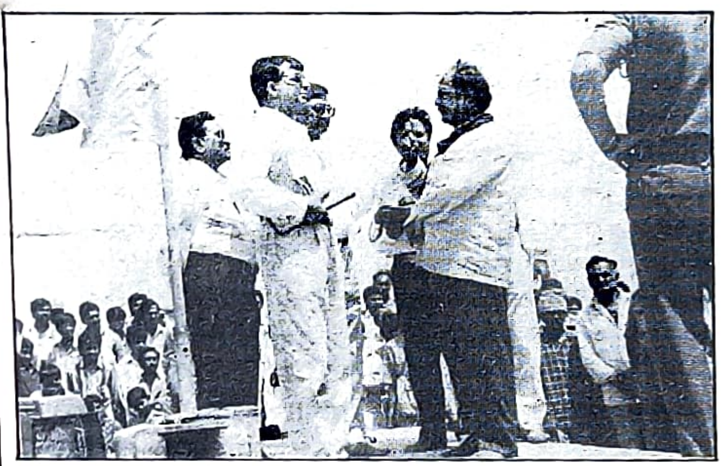
रामदेव पीर की आज्ञा शिरोधार्य करके बालजी पटेल यज्ञ के आयोजन में जुट गया था। हिन्दवापीर की समाधि के पास यज्ञ के लिए उसने काफी बड़ा गड्ढा भी खोदवा लिया था। इसके अलावा उसने फोन से अपने शिष्यों को भी यज्ञ की बाबत खबर कर दी थी।

यह सब कुछ चल ही रहा था कि बकौल विमला, रामदेवपीर फिर सपने में आये। उन्होंने बालजी पटेल को आदेश दिया कि यज्ञ के लिए उसने जो गड्ढा खोदवाया है, वह उसमें ही जीवित समाधि ले ले, नश्वर संसार में उसका कोई कार्य अब शेष नहीं रहा।

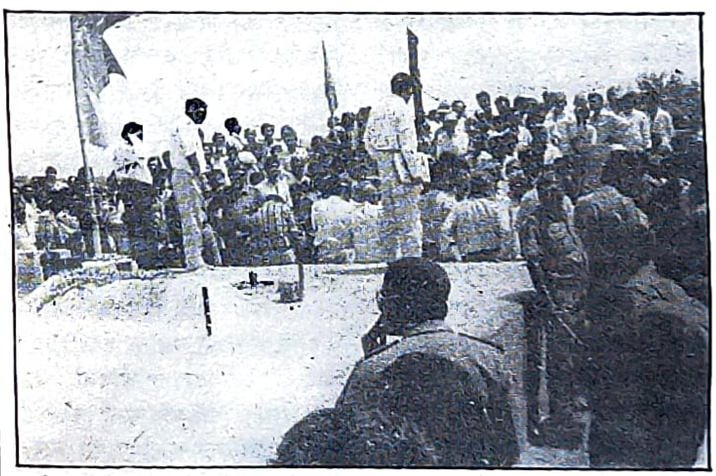
अंतएव, २४ फरवरी'९८ से ही



बालजी पटेल की समाधि



समाधि-स्थल पर प्रशासनिक एवं पुलिस अधिकारी



पुलिस सरक्षा करती है समाधि की

बालजी पटेल को जीवित समाधि लेने की धुन सवार हो गयी थी। पहले तो पत्नी और बच्चों आदि ने उसकी इस इच्छा का विरोध किया था, पर बालजी ने उन्हें न जाने क्या पट्टी पढ़ा दी थी कि वे लोग उसकी ही भाषा बोलने लगे थे।

जीवित समाधि लेने में कोई व्यवधान न आये, इसलिए इस बात को गुप्त रखा गया था। पहले तो बालजी पटेल के पारिवारिक सदस्यों एवं उसके कुछेक अनुयायियों को ही इस बात की जानकारी थी। मगर किसी तरह डेरी पीपरिया और मोरवाड़ा के अनेक निवासियों को इसकी भनक लग गयी थी। यही कारण था कि २/३ मार्च '६८ की रात जब गाजे-बाजे के साथ बालजी पटेल अपने घर से निकला था, तब दोनों गांवों के सैकड़ों लोग उसके पीछे हो लिये थे।

३ मार्च की सुबह ४ बजे जब बालजी ने जीवित समाधि ली, तब करीब ५०० व्यक्ति वहां उपस्थित थे। उन्होंने एक सौ फुट की दूरी से बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा को जीवित समाधि लेते हुए देखा था।

बालजी के समाधि लेते ही समाधि-स्थल पर जो भजन-कीर्तन शुरू हुआ था, वह निरन्तर चलता रहा। दोपहर होते-होते समाधि-स्थल पर पक्का चबूतरा भी बनवा दिया गया। आसपास एवं दूर-दराज के लोग वहां आकर समाधि की पूजा करने एवं सामर्थ्य के अनुसार चढ़ावा भी चढ़ाने लगे। चूंकि बालजी सिगरेट पीने का शौकीन था, इसलिए कुछ अंधभक्तों ने उसकी समाधि पर सिगरेट चढ़ाकर पूजा करनी शुरू कर दी। सिगरेट का प्रसाद भी बंटने लगा।

इस बीच तरह-तरह की अफवाहें भी सिर उठाती रहीं। कोई कह रहा था कि पद्मासन लगाते ही बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा ने प्राण त्याग दिये थे, किसी का कहना था कि समाधि लेते वक्त वह दिव्य बाल-स्वरूप में बदल गया था, तो कोई कह रहा था कि मनों मिट्टी के नीचे मौनी बाबा का शरीर कहां, वह तो सशरीर स्वर्गलोक चले गये। जितने मुंह, उतनी बातें।

लोग आते रहे, जाते रहे, चढ़ावा चढ़ता रहा, सिगरेटें चढ़ती-सुलगती रहीं।

समाधि तब और गुलजार हुई, जब ५ मार्च को यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए बालजी पटेल के शिष्य दूर-दराज से मोरवाड़ा आये। मेला-सा लग गया समाधि-स्थल पर। धर्म के धंधेबाज़ों ने तो कमाई की ही, स्थानीय दुकानदारों की भी बन आयी। सबने चांदी काटी।

बालजी पटेल के जीवित समाधि लेने की चर्चा जोर पकड़ती जा रही थी। उड़ते-उड़ते यह बात पुलिस के कानों तक भी जा पहुंची।

मोरवाड़ा गांव थाना भेसान के इलाके में था। अफवाहों की परख करने के लिए ६ मार्च को थाना भेसान से सब-इंसपेक्टर एन०आर० वाघेला मौके पर पहुंचे। वहां पहुंचकर उन्होंने जो देखा, जो सुना, वह आज के युग में किसी अजूबे से कम नहीं था। एक आदमी जिन्दा ही दफन हो गया था, और लोग उसकी मौत पर जश्न मना रहे थे। धार्मिक आस्था एवं विश्वास के दृष्टिकोण से यह सब कुछ चाहे जो रहा हो, पर कानूनी नजरिये से यह जघन्य अपराध था।

पुलिस स्टेशन वापस लौटकर एन०आर० वाघेला ने इंसपेक्टर जे०जे० वारड़ और उप-अधीक्षक शशिकांत त्रिवेदी को समूचे घटनाक्रम से अवगत करा दिया। मामला बेहद नाजुक और संगीन था। अतः जिलाधिकारी जूनागढ़ पंकज जोशी की नोटिस में भी यह प्रकरण लाया गया।

जिलाधिकारी ने वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को आदेश दिया कि वे स्थिति पर नजर रखें, और जल्दबाजी में कोई ऐसा कदम न उठायें, जिससे प्रशासन को किसी अप्रिय घटना से दो-चार होना पड़े। तत्पश्चात मामले की गहन जांच-पड़ताल के लिए पुलिस उपाधीक्षक शशिकांत त्रिवेदी और क्राइमब्रांच के इंसपेक्टर जे०के० जाला को नियुक्त किया गया। इनके सहयोग के लिए थाना-प्रभारी भेसान एम०एस० गढ़वी को लगाया गया था।

पांच दिनों की गहन तहकीकात से उपर्युक्त पुलिस अधिकारियों ने निष्कर्ष निकाला कि बालजी पटेल के जीवित समाधि लेने में उसके पारिवारिक सदस्यों एवं कुछेक शिष्यों ने सहयोग दिया था। कानून की दृष्टि में यह आत्महत्या के लिए प्रेरित करने का दंडनीय अपराध था। अतः थाना-प्रभारी एम०एस० गढ़वी ने स्वयं अपनी ओर से ११ मार्च '६८ को थाना भेसान में विमला बेन सहित ६ लोगों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करा दी।

इस पुलिस-कार्रवाई की भनक विमला बेन आदि को लग गयी थी। एफ०आई०आर० में नामजद लोगों को विश्वास था कि पुलिस उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज देगी। अतः उन्होंने अग्रिम जमानत के लिए प्रयास तेज कर दिये। इसके लिए एक याचिका भी अदालत में पेश कर दी गयी थी।

पुलिस और अभियुक्तों के बीच आंख-मिचौनी चल ही रही थी कि राजकोट के जयंत भाई पंड्या ने एक नई सनसनी फैला दी। उन्होंने १७ मार्च को गुजरात के डी०जी०, डी०आई०जी०, एस०पी० आदि को फैक्स भेजकर इस समूचे कांड को नाटक बताया। उनका कहना था बालजी पटेल ने तो आत्महत्या कर ली, अब उसका परिवार एवं कतिपय शिष्य धर्मभीरुओं की भावनाओं का दोहन कर रहे हैं। इसे तत्काल बंद कराया जाये।

जयंत भाई पंड्या आदि ने यह भी मांग की थी कि प्रशासन समाधि खोदवाकर बालजी पटेल के शव का पोस्टमार्टम कराये, ताकि उसकी मौत के पीछे कोई और भेद छुपे हों तो वे खुलकर सामने आ जायें। उन्होंने यह भी चेतावनी दी थी कि यदि १७ मार्च तक प्रशासन समाधि से बालजी पटेल का शव नहीं निकालता, तो वह अपने सहयोगियों के साथ स्वयं वहां पहुंचकर समाधि खोद डालेंगे। इसका जो भी परिणाम होगा, उसका पूर्ण उत्तरदायित्व प्रशासन पर होगा।

एक तरफ तो यह मामला था, दूसरी तरफ पुलिस एवं जिला प्रशासन को गुप्त रिपोर्टें मिली थीं कि यदि समाधि को खोदने की कोशिश की गयी, तो स्थिति विस्फोटक हो सकती है। इस समूचे प्रकरण को लोग धर्म से जुड़ा हुआ मान बैठे थे, और कोई भी वैधानिक कार्यवाही उनकी आस्था एवं विश्वास पर कुठाराघात कर सकती थी। यही वजह थी कि जिलाधिकारी पंकज जोशी ने पुलिस को बालजी पटेल उर्फ मौनी बाबा की समाधि खोदकर शव निकालने की अनुमति नहीं दी। केवल यही नहीं, बल्कि जयंत भाई पंड्या की चेतावनी के मद्देनजर १८ मार्च को समाधि-स्थल की कड़ी सुरक्षा-व्यवस्था का आदेश भी जारी कर दिया।

१८ मार्च को सुबह से ही समाधि स्थल को पुलिस ने अपने घेरे में ले लिया। दूसरी तरफ बालजी पटेल के भक्त एवं स्थानीय श्रद्धालु भी कमर कसकर मैदान में आ डटे थे कि यदि किसी ने समाधि को नुकसान पहुंचाने की कोशिश की तो उसे मुंहतोड़ जवाब दिया जायेगा।



खूब चढ़ता है सिगरेट का चढ़ावा



महिलाएं भी समाधि का दर्शन करने आती हैं

जैसी कि पुलिस को आशंका थी, जयंत भाई पंड्या अपने सहयोगियों को दो बसों में भरकर समाधि-स्थल पर पहुंच गये। इन लोगों के वहां पहुंचते ही स्थिति तनावपूर्ण हो उठी। दोनों ओर से नारेबाजी शुरू हो गयी। पुलिस ने बड़ी मुश्किल से हालात को अपने वश में किया।

पुलिस ने जयंत भाई पंड्या और उनके साथियों को समाधि-स्थल पर जाने से रोका। इस पर जयंत भाई ने कहा, "शास्त्रों के अनुसार सूर्योदय के बाद ही समाधि ली जा सकती है, जबकि बालजी ने सूरज निकलने से पहले समाधि ली। अतः उसकी समाधि शास्त्र-सम्मत नहीं मानी जा सकती। फिर जो चीज शास्त्र-सम्मत नहीं, उसे मिटाने में संकोच कैसा? यह आत्महत्या का खुला मामला है। क्षेत्र के भोले-भाले लोगों के मन से अंधविश्वास मिटाने के लिए बालजी का शव निकलवाना ही एकमात्र उपाय है।"

जयंत भाई पंड्या की दलीलों को पुलिस अधिकारियों ने नकार दिया। जयंत भाई और उनके साथियों ने जब जबरदस्ती आगे बढ़ना चाहा, तो हलका बल प्रयोग करके पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। शाम को सब लोग रिहा कर दिये गये।

पुलिस ने समाधि की रक्षा तो कर ली, पर वह नामजद अभियुक्तों के बंदीकरण के प्रयास में जुट गयी। विमला बेन अपने दोनों पुत्रों और अन्य सहयोगियों के साथ भूमिगत थीं। अलबत्ता उसने जूनागढ़ के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश श्री बी०एन० कारिया की अदालत में अग्रिम जमानत हेतु प्रार्थना-पत्र दाखिला कर रखा था।

दोनों पक्षों की सुनवाई एवं बहस-मुबाहिसे के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश श्री बी०एन० कारिया ने २४ मार्च को अल्पेश और प्रकाश की कम उम्र के मद्देनजर उनकी अग्रिम जमानत स्वीकार कर ली, बाकी सब की याचना खारिज कर दी। उसी दिन यानी २४ मार्च '९८ को ही तब विमला बेन आदि ने अग्रिम जमानत के लिए उच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की।

कथा लिखे जाने तक उच्च न्यायालय ने उक्त संदर्भ में कोई निर्णय नहीं किया था।●

प्यार की खातिर

–हमारे संवाददाता द्वारा



रजिया : मिल गयी मुहब्बत मुझे

मुहब्बत के बगीचे में धीरज और समझदारी का फल सदा मीठा होता है

सूरज अस्त हो चुका था, लेकिन उसकी लालिमा आधे आकाश को अपने आंचल में समेटे हुए थी। आसमान का पश्चिमी छोर बेशक सिंदूरी रंग में रंगा था, पर पूरबी छोर पर रात का सुरमई अंधेरा अपना जाल फैलाने लगा था। सांझ की उसी गोधूलि बेला में वह खूबसूरत लड़की छत पर मुंडेर के पास खड़ी दूर आकाश में एकटक डूबते सूरज को निहार रही थी।

फहीम ने उसे पहली बार देखा हो, ऐसा नहीं था। वह लड़की को भी जानता था, उसके परिवार को भी। दोनों का आमना-सामना कई बार हुआ था, पर बात करने का मौका कभी नहीं मिला था। इससे पहले फहीम ने न तो कभी उसे इतने गौर से देखा था, न कभी वह उसे इतनी दिलफरेब लगी थी। फहीम अपने मकान की बालकनी में खड़ा काफी देर तक उस नाजनीन को देखता रहा। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे धरती का चांद आकाश को छूने का सपना देख रहा हो।

थोड़ी दूरी पर खड़ा कोई उसे बड़ी शिद्दत से निहार रहा है, लड़की इस बात से अनभिज्ञ थी। वह फहीम की मौजूदगी से भी अनभिज्ञ थी और उसकी भावनाओं के उस ताने-बाने से भी, जो फहीम के दिल-ओ-दिमाग पर मुहब्बत का मजमून बुन रहा था। वह नाजनीन धीरे-धीरे उसके दिल-ओ-दिमाग में उतरती जा रही थी। उसका मन कर रहा था कि दौड़कर उसके पास जाये और पलभर में अपनी उस मुहब्बत का इजहार कर दे, जिसका जज्बा उसके मन में चंद पल पहले उभरा था। लेकिन चाहकर भी फहीम हिम्मत न जुटा सका। अलबत्ता उसने मन-ही-मन यह फैसला कर लिया कि जैसे भी सम्भव होगा, रजिया से अपनी मुहब्बत का इजहार जरूर करेगा। जी हां, उस लड़की का नाम रजिया ही था। काफी देर छत पर खड़ी रहने के बाद जब रजिया नीचे चली गयी तो फहीम भी अपने कमरे में आ गया। पहले तो फहीम ने सोचा कि रजिया के घर जाकर रू-ब-रू उसका दीदार करे और उससे अपना हाल-ए-दिल बयान करे, लेकिन ऐसा करने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

उस रात फहीम को चैन की नींद नहीं आयी। पलकें बंद करते ही रजिया का हसीन चेहरा उसकी कल्पनाओं में अठखेलियां करने लगा। वह सारी रात रजिया से मिलने के मंसूबे बनाता रहा। सुबह सूरज की पहली किरण के साथ वह अपनी बालकनी में उसी जगह जा खड़ा हुआ, जहां खड़े होकर उसने पिछली शाम रजिया को देखा था। उस भोली-सी लड़की की झील-सी गहरी आंखें और मासूम चेहरा फहीम के दिल पर नक्श बनकर उतर चुका था। इस उम्मीद में कि शायद रजिया छत पर आये, वह काफी देर बालकनी में खड़ा रहा। लेकिन सुबह से शाम तक दीवानावार बालकनी के चक्कर लगाने के बावजूद वह उसे छत पर नजर नहीं आयी।

इसके अगले दो दिन भी बेकरारी में गुजरे। फहीम के दिल की बेकरारी बढ़ती जा रही थी। मिलने का जब कोई रास्ता न सूझा तो उसने फोन पर उससे अपने दिल की बात कहने का फैसला किया। रजिया के घर का फोन नम्बर उसे मालूम था। फहीम ने उसके घर का नम्बर डायल भी किया, लेकिन यह सोचकर कि रजिया की वालिदा घर पर होंगी, उसने घंटी बजने से पहले ही रिसीवर रख दिया। उसके बाद फहीम शाम होने का इंतजार करने लगा। दरअसल उसे मालूम था कि शाम को रजिया की वालिदा अक्सर बाजार जाती हैं।

शाम के पांच बजे फहीम ने धड़कते दिल से रजिया के घर का नम्बर डायल करना शुरू किया। नम्बर मिल भी गया, पर दूसरी ओर घंटी बजने की आवाज सुनते ही उसके दिल की धड़कनें बढ़ गयीं। घबराकर उसने कांपते हाथों से फोन काट दिया और आंखें बंद करके गहरी-गहरी सांसें लेने लगा। स्वयं को सामान्य अवस्था में लाने में उसे थोड़ी देर लगी। मन शांत हुआ तो उसने दोबारा नम्बर डायल किया। पलभर बाद दूसरी ओर से किसी लड़की की मधुर आवाज सुनायी दी, "हैलो।"

"मैं आपके पड़ोस से बोल रहा हूं, चचाजान से कुछ काम था...आप कौन बोल रही हैं?" फहीम ने धड़कते दिल से पूछा।

"मैं रजिया बोल रही हूं। अब्बा तो इस समय घर में नहीं हैं।"

फहीम ने कंपकंपाती आवाज में कहा, "रजिया, प्लीज फोन मत काटना। दरअसल मैं आपसे ही कुछ कहना चाहता था।"

"कहिए, मैं सुन रही हूं।" रजिया ने सामान्य स्वर में कहा।

"वैसे तो मैं अक्सर आपको देखा करता था, लेकिन परसों शाम आपको छत पर देख लगा, जैसे किसी ख्वाब की ताबीर से रू-ब-रू हूं। सचमुच वह ख्वाब ही था, जो पलकों के सहारे दिल में उतर गया। सोचता हूं, वह दृश्य फिर कभी देख भी पाऊंगा या नहीं। मुझे बड़ी बेकरारी से आपके दीदार की दरकार है। मैं कल शाम को अपनी

बालकनी में खड़ा होकर आपके छत पर आने का इंतजार करूंगा।"

अपने दिल की बात कहकर फहीम ने धड़कते दिल से फोन रख दिया। उस वक्त वह मन-ही-मन बहुत खुश था। उसे उम्मीद थी कि अगले दिन शाम को रजिया छत पर जरूर आयेगी, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। शाम से रात हो गयी, लेकिन वह छत पर नहीं आयी। फहीम के मन में तरह-तरह की शंकाएं जन्म लेने लगीं। उसने यह भी सोचा कि कहीं रजिया बुरा न मान गयी हो, और उसने यह बात अपने वालिदेन को न बता दी हो। वालिदेन की बात सोचकर उसे डर भी लगा। तभी उसे याद आया कि उसने रजिया को अपना नाम तो बताया ही नहीं था। पड़ोसी तो और भी हो सकते हैं। यह सोचकर फहीम को थोड़ा सुकून भी मिला, कि बिना नाम जाने रजिया अपने अब्बा-अम्मी से कोई शिकायत नहीं कर सकती।

कहते हैं, जहां चाह होती है, वहां राह निकल ही आती है। फहीम के साथ भी यही हुआ। अगले दिन शाम को वह बालकनी में पहुंचा तो रजिया अपनी छत पर खड़ी डूबते सूरज को निहार रही थी। फहीम ने उसे देखा तो देखता रह गया। उसकी मुराद पूरी हो गयी। रजिया ने पलटकर फहीम की ओर देखा। फहीम को अच्छा लगा। उसने माथे से हाथ लगाकर आदाब किया। प्रत्युत्तर में रजिया ने भी उसे आदाब किया और मुस्कराते हुए नीचे चली गयी। उसके जाते ही फहीम भी कमरे में चला गया।

फहीम रजिया से बात करने को बेकरार था। मन काबू में न रहा तो उसने रजिया का नम्बर डायल किया। उधर से फोन रजिया ने ही उठाया। फहीम ने खुशी से कंपकंपाती आवाज में कहा, "तहेदिल से शुक्रिया रजिया। आप नहीं जानतीं कि छत पर आकर आपने मेरे ऊपर कितना बड़ा एहसान किया है। जबसे मैंने आपको भर नजर देखा है, मुझे न जाने क्या हो गया है। हर वक्त आपके बारे में ही सोचता हूं। मन चाहता है, आपको देखता रहूं। कहीं इसी का नाम मुहब्बत तो नहीं। कल सुबह छह बजे फिर आपके दीदार का मुंतजिर हूं।"

अगली सुबह छह बजे रजिया जब छत पर आयी तो फहीम ने अपने दिल की दास्तां प्रेम-पत्र के रूप में रजिया की छत पर उछाल दी, जिसका जवाब रजिया ने उसे उसी दिन शाम को दे दिया। फहीम खुशी से झूम उठा। उसे मोहब्बत का जवाब मोहब्बत से मिला था। उसके लिए रजिया का पत्र किसी खूबसूरत ख्वाब की तरह था। रजिया भी उसके इश्क में मुब्तिला है, यह जानकर फहीम उससे मिलने के लिए बेकरार रहने लगा। जब बेकरारी बढ़ती गयी, तो एक दिन फहीम ने फोन पर अपने दिल की आरजू का इजहार करते हुए रजिया से कहा, "एक इल्तिजा है। मैं करीब से तुम्हारा दीदार करना चाहता हूं।"

"यह मुमकिन नहीं है फहीम। आप मेरे वालिदेन को नहीं जानते। उन्हें इस तरह की बातें बिल्कुल गवारा न होंगी। हां, मुनासिब वक्त आने पर हम जरूर मिलेंगे।" रजिया ने अपने पारिवारिक माहौल की जानकारी देते हुए फहीम को समझाने की कोशिश की।

प्यार की चाह रजिया के मन को भी छू चुकी थी और फहीम के मन को भी। दोनों ही मिलन का रास्ता निकालने में लगे थे। अन्ततः एक दिन वह मुनासिब वक्त आ ही गया, जब रजिया और फहीम एक-दूसरे के करीब थे। वह दिन उनकी जिंदगी का सबसे मुबारक दिन बन गया था। दोनों ने एक-दूसरे से अपने-अपने दिल के हाल बयान किये। सच्ची मोहब्बत का इजहार करते हुए जीवनभर साथ निभाने का वादा किया। जुदा होते वक्त फहीम ने रजिया से पूछा, "फिर कब मिलोगी रजिया?"

फहीम के सवाल पर रजिया उदास होते हुए बोली, "कह नहीं सकती। आप नहीं जानते कि मेरे वालिदेन कितने दकियानूसी खयालात के हैं। उन्होंने आठवीं के बाद मुझे कालेज जाने तक से रोक दिया। घर की दीवारों में कैद रहना पड़ता है मुझे। घर पर ही ट्यूशन पढ़ती हूं। घर से ही प्राइवेट इम्तिहान देती हूं। अकेले बाहर निकलना मेरे लिए बहुत मुश्किल है।"

फहीम रजिया की बात सुनकर थोड़ा निराश हुआ। लेकिन फिर हंसते हुए बोला, "तुम्हारे वालिदेन का कोई कुसूर नहीं है। तुम हो ही इतनी हसीन। मेरा बस चले तो तुम्हें दुनियावालों की नजरों से छिपाकर दिल में कैद कर लूं।"

जहां इश्क का सच्चा जज्बा हो, वहां राहें खुद-ब-खुद बन जाती हैं। फहीम और रजिया की मोहब्बत दिनोंदिन परवान चढ़ती रही। कभी वे छत पर मिलते, तो कभी छुप-छुपकर घर के बाहर। अपने-अपने पारिवारिक माहौल की मुश्किलों के बाद भी उन्होंने आपसी गुफ्तगू का रास्ता निकाल लिया था। कई बार वे दोनों अपने-अपने घर की बालकनी और छत पर खड़े होकर इशारा करते, फिर फोन के जरिये एक-दूसरे से अपने दिलों की दास्तान कहते-सुनते। घरवालों की नजरों से छुपाकर परवान चढ़ी रजिया और फहीम की प्रेम-कहानी लम्बे अरसे तक चलती रही।

रजिया जामियानगर, ओखला के जोगाबाई इलाके में रहनेवाले फजल अहमद की बेटी थी। आठ बच्चों के पिता फजल अहमद पेशे से प्रॉपर्टी डीलर हैं। इस काम में उन्हें अच्छी-भली आय है। मुरादाबाद के पास स्थित ढक्का गांव से बीस साल पहले दिल्ली आकर बसे फजल अहमद का परिवार पुराने खयालात का है। उनके घर में पर्दा प्रथा का आज भी उतना ही महत्व है, जितना बीस साल पहले गांव में था। यही वजह थी कि उन्होंने आठवीं के बाद अपनी किसी भी लड़की को स्कूल नहीं जाने दिया। आठवीं के बाद रजिया की पढ़ाई भी घर में ही हुई थी। उसे एक महिला अध्यापक और एक मौलाना घर में पढ़ाने आते थे। दसवीं और बारहवीं की परीक्षाएं उसने बिना स्कूली शिक्षा के प्राइवेट फार्म भरकर दी थीं।

२३ वर्षीय फहीम अहमद ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था। उसके भाई की टेलरिंग शॉप थी, जिस पर वह टेलर मास्टर का काम करता था।

फहीम के परिवार और रजिया के परिवार के मकान बराबर-बराबर थे। फहीम के घर की बालकनी रजिया के घर की छत से मिली हुई थी।

रजिया खूबसूरत, नाजुक और शर्मीली-सी लड़की थी। पारिवारिक स्थितियों के हिसाब से मिला दब्बूपन उसके स्वभाव में शामिल था। बाहर के किसी भी व्यक्ति से बात करने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

फहीम ने रजिया को देखा तो सैकड़ों बार था, लेकिन तब, जब वह चौदह-पन्द्रह साल की किशोरी थी। बाद में वह पर्दे की ओट में ऐसी छिपी कि फहीम को उसका दीदार न हो सका...और वर्षों बाद जब उस दिन फहीम ने उसे छत पर देखा, तो वह उसे दीवानावार देखता रह गया था। रजिया की सादगीभरी खूबसूरती पहली ही नजर में उसके दिल-ओ-दिमाग में उतर गयी थी। उसके रूप-सौन्दर्य ने फहीम के मन में हलचल मचायी, तो वह हर समय उसी के बारे में सोचने लगा। वह समझ गया कि उसे रजिया से मोहब्बत हो गयी है। अपनी मोहब्बत का इजहार करने के लिए उसने रास्ता निकाला, तो वह रजिया तक अपने दिल की बात पहुंचाने में सफल रहा।

रजिया अट्ठारह वर्ष की हो चुकी थी। उसकी अपनी भावनाएं थीं, चाहतें थीं। यह अलग बात है कि उसकी चाहत घर के दकियानूसी माहौल में दबी हुई थी। जब फहीम ने रजिया को उसकी खूबसूरती, उसके यौवन और अपनी मोहब्बत का एहसास कराया तो उसके मन में छिपी चाहतों ने सिर उठाना शुरू कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि ज्यों-ज्यों फहीम ने उसके करीब आने की कोशिश की, त्यों-त्यों वह भी उसकी ओर झुकती गयी।

जज्बात, चोरी-छुपे की मुलाकातों और बातों के संगम में तैरते-उतराते रजिया फहीम से कब प्यार करने लगी, उसे स्वयं भी पता नहीं चला। जब यह बात उसकी समझ में आयी कि वह फहीम को सचमुच चाहने लगी है, तो उसे अपनी भूल का एहसास हुआ। वह अच्छी तरह जानती थी कि जिस दकियानूसी माहौल में उसकी परवरिश हुई है, वह उसकी और फहीम की मोहब्बत को कभी परवान नहीं चढ़ने देगा। उसने यह बात फहीम से कही भी, लेकिन वह कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था। वह उससे हमेशा एक ही बात कहता था, "तुम

बालिग हो। अपनी मर्जी से विवाह कर सकती हो। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हूं।"

रजिया में अपने परिवार से विद्रोह करके शादी करने की हिम्मत नहीं थी। वह फहीम से अपने दिल की बात बता देती, "मैंने अगर विद्रोह किया तो तुम्हें भी महंगा पड़ेगा और मुझे भी। बेहतर यही है कि हम वक्त का इंतजार करें। जब तक मुनासिब वक्त नहीं आता, तब तक हमें अपनी मोहब्बत को भी पर्दे में रखना होगा।"

रजिया और फहीम तीन वर्ष तक वक्त का इंतजार करते भी रहे। इस बीच फहीम ने रजिया तक अपनी पहुंच बनाये रखने के लिए उसके भाई रिजवान से दोस्ती भी की। इसके बावजूद वह मुबारक घड़ी न आ सकी, जो रजिया और फहीम के दामन एक-दूसरे से बांध देती।

रजिया और फहीम मिल तो न सके, अलबत्ता उनकी जिंदगी में अलगाव की एक ऐसी घड़ी जरूर आ गयी, जिसने सभी को हैरत में डाल दिया।



रजिया और फहीम तीन वर्ष तक वक्त का इंतजार करते भी रहे। इस बीच फहीम ने रजिया तक अपनी पहुंच बनाये रखने के लिए उसके भाई रिजवान से दोस्ती भी की। इसके बावजूद वह मुबारक घड़ी न आ सकी, जो रजिया और फहीम के दामन एक-दूसरे से बांध देती।

छब्बीस मार्च '९८ की सुबह रजिया घर से गायब मिली। उसका यूं अचानक गायब होना किसी रहस्य से कम नहीं था। रजिया ड्राइंग-रूम में सोती थी। ड्राइंग-रूम में ही उसका छोटा भाई रिजवान और तीन बहनें भी सोती थीं।

पौने सात बजे फजल अहमद जब सोकर उठे तो ड्राइंग-रूम का दरवाजा खुला देख आश्चर्य में रह गये। रिजवान और तीनों लड़कियां तो अपनी जगह सोयी पड़ी थीं, पर रजिया ड्राइंग-रूम में नहीं थी। रजिया की एक चप्पल और पीले रंग का दुपट्टा उसके बिस्तर के पास पड़े थे। चप्पल और दुपट्टे दोनों पर ही खून लगा था। उसकी दूसरी चप्पल ड्राइंग-रूम के दरवाजे के बाहर पड़ी मिली। उस पर भी खून के दाग थे।

फजल अहमद ने अपनी पत्नी साबिरा को उठाकर यह मंजर दिखाया, तो वह रोने लगीं। रोने की आवाज सुनकर परिवार के शेष सदस्य भी उठ गये। साबिरा ने बताया कि उन्होंने पौने छह बजे उठकर फज़र की नमाज पढ़ी थी। रोज की तरह उस वक्त रजिया भी उठी थी। उसने भी उनके साथ नमाज़ पढ़ी थी। नमाज़ के बाद साबिरा सो गयी थीं। उनके सोने के बाद ही कुछ हुआ होगा।

जवान बेटी गायब हुई थी, वह भी खून-खच्चर के साथ। पूरे मामले को ठीक से देखने-समझने के बाद फजल अहमद ने आठ बजे पुलिस कंट्रोल रूम को फोन करके इस घटना की सूचना दी। पुलिस कन्ट्रोल-रूम से इस हादसे की सूचना थाना श्रीनिवासपुरी और पुलिस चौकी ओखला को दी गयी। सूचना मिलने पर थाना श्रीनिवासपुरी के अतिरिक्त थाना-प्रभारी सुरेश कुमार कौशिक और पुलिस चौकी ओखला के इंचार्ज गिरीश कुमार सिंह अपनी-अपनी पुलिस टीमों के साथ फजल अहमद के घर पहुंचे।

पूछताछ में फजल अहमद ने रजिया के गायब होने की पूरी बात बताने के बाद पुलिस अफसरों से कहा कि उनकी दुश्मनी उसी इलाके के प्रॉपर्टी डीलर जाहिद से है। उसने ही दुश्मनी निकालने के लिए उनकी बेटी का अपहरण कराया होगा।

जाहिद और फजल अहमद दोनों ही प्रॉपर्टी डीलिंग का काम करते थे। दोनों में व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्विता के चलते न केवल मनमुटाव थे, बल्कि रंजिश भी थी। दोनों ने एक-दूसरे के विरुद्ध कई गम्भीर केस दर्ज करा रखे थे। पुलिस उनकी रंजिश को भी जानती थी और एक दूसरे के विरुद्ध दर्ज कराये गये केसों को भी। फजल अहमद के आरोप की वजह से पुलिस अफसरों ने इस मामले को काफी गम्भीरता से लिया।

जांच के दौरान दो बातें पुलिस की समझ में न आयीं। पहली यह कि जब ड्राइंग-रूम का दरवाजा अंदर से बंद था, तो रजिया का अपहरण करके ले जानेवाले अपराधी अंदर कैसे आये? दूसरी यह, कि अगर रजिया पर हमला किया गया था, या उसे चोट पहुंचायी गयी थी, तो वह चीखी-चिल्लायी क्यों नहीं? उसके चीखने पर ड्राइंग-रूम में सोये रिजवान और उसकी बहनों की आंखें जरूर खुल जातीं। जबकि ऐसा कुछ नहीं हुआ था। अगर यह मान लिया जाता कि रजिया ने किसी के खटखटाने पर दरवाजा खोला होगा और उसी वक्त उसका अपहरण कर लिया गया होगा, तो सवाल यह उठता था कि जब उसे दरवाजे से ही उठा लिया गया, तो उसकी खूनसनी एक चप्पल और दुपट्टा अंदर कैसे आये? इसके साथ ही दो बातें ऐसी थीं, जिन्हें किसी भी तरह नकारा नहीं जा सकता था। पहली यह कि ड्राइंग-रूम का दरवाजा रजिया ने ही खोला था और दूसरी यह कि उसका अपहरण करनेवाले यदि अपहरण के इरादे से आये थे, तो दरवाजे से उसका अपहरण करने के बाद उन्हें उसकी चप्पल और दुपट्टा ड्राइंग-रूम में अंदर जाकर फेंकने की कोई जरूरत नहीं थी।

पुलिस अफसरों ने इस मामले को हर कोण से जांच करके देखा, पर यह अपहरण या हत्या का मामला बिल्कुल नहीं लगा। इसके बावजूद श्रीनिवासपुरी पुलिस ने फजल अहमद की शिकायत पर रजिया के अपहरण का केस दर्ज करके जांच शुरू कर दी। इस केस की जांच अतिरिक्त थाना-प्रभारी सुरेश कुमार कौशिक के निर्देशन में चौकी-इंचार्ज गिरीश कुमार को करनी थी।

फजल अहमद ने अपने बयान में जाहिद पर सन्देह जाहिर किया था कि वह रंजिशन उनकी बेटी का अपहरण करा सकता है। सुरेश कुमार कौशिक और गिरीश कुमार ने इस संबंध में जाहिद से पूछताछ की। जाहिद दबंग आदमी था। उसने पुलिस अफसरों से कहा, "मेरी रंजिश फजल अहमद से है, उसके बच्चों के साथ नहीं। मुझे अगर दुश्मनी ही निकालनी होगी तो फजल अहमद का कत्ल कराऊंगा, उसके बच्चों का अपहरण करके मुझे क्या मिलेगा। आखिर मैं भी बाल-बच्चों वाला आदमी हूं। बेटी घर की इज्जत होती है। मैं किसी के घर की इज्जत पर हाथ नहीं डाल सकता।"

काफी टटोलने के बाद पुलिस को लगा कि रजिया के गायब होने में जाहिद का कोई हाथ नहीं है। जाहिद से शक हटा तो पुलिस ने दूसरे पहलुओं से इस मामले की जांच शुरू की।

इधर पुलिस जांच कर रही थी और उधर फजल अहमद हाथ धोकर पुलिस के पीछे पड़ गये थे। उन्हें लग रहा था कि पुलिस जान-बूझकर रजिया के मामले में ढील बरत रही है। वह पुलिस की कार्रवाई से खुश

नहीं थे। इसी बात को मुद्दा बनाकर उन्होंने तीन-चार सौ लोगों को एकत्र करके तीन घण्टे तक न केवल पुलिस चौकी ओखला का घेराव किया, बल्कि पुलिस कमिश्नर को घेरकर ज्ञापन भी दे डाला। स्थानीय पुलिस इससे विचलित जरूर हुई, लेकिन उसने अपनी जांच की राह तब्दील नहीं की।

जांच के दौरान पुलिस को कई महत्वपूर्ण बातें पता चलीं। जानकारी मिली कि जिस रजिया की उम्र फजल अहमद और उनकी पत्नी साबिरा ने अट्ठारह वर्ष बतायी थी, वह इक्कीस साल की थी। यह भी पता चला कि फजल अहमद का परिवार बहुत ही दकियानूसी किस्म का था। उन्होंने रजिया को आठवीं के बाद पर्दे में कैद कर दिया था। उसे घर में पढ़ाने के लिए एक महिला अध्यापिका और एक अध्यापक आते थे। उसने हायर सेकेण्ड्री और सीनियर सेकेण्ड्री की परीक्षाएं भी प्राइवेट फार्म भरकर पास की थीं।

इन सारी जानकारियों के बाद पुलिस को लगा कि रजिया के गायब होने के पीछे जरूर कोई प्रेम-प्रसंग हो सकता है। पुलिस की इस सोच के पीछे सबसे ज्यादा उन परिस्थितियों का हाथ था, जिनमें रजिया गायब हुई थी।

पुलिस ने जब रजिया के प्रेम-प्रसंग के बारे में पता लगाना शुरू किया तो जानकारी मिली कि वह बड़े शर्मीले स्वभाव की न केवल अन्तर्मुखी लड़की थी, बल्कि पर्दे में हमेशा घर के अंदर रहती थी। ऐसी लड़की का किसी से प्रेम-प्रसंग हो सकता है, यह कल्पनातीत था। लेकिन पुलिस अफसर इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनके हिसाब से पर्दे में भी छेद हो सकते थे।

पुलिस ने जब इस नजरिये से जांच शुरू की, तो बातचीत के आधार पर उसे फहीम पर शक हुआ। फहीम से पूछताछ की गयी, तो उसने बताया कि उसकी दोस्ती रजिया के छोटे भाई रिजवान से है। रजिया को तो उसने ठीक से देखा तक नहीं। रजिया के घरवाले प्रेम-प्रकरण वाले मामले के बजाय अपहरण पर ज्यादा जोर दे रहे थे। इसलिए पुलिस को फहीम की ओर से ध्यान हटाना पड़ा।

पुलिस ने एक बार फिर रजिया के अपहरण की सम्भावनाओं पर गौर किया। काफी मशक्कत के बाद भी कोई ऐसा सूत्र न मिला, जिससे यह समझा जा सकता कि रजिया का अपहरण हुआ है।

रजिया के अपहरण की सम्भावनाओं में कोई दम नहीं निकला, तो पुलिस ने यह पता लगाने की कोशिश की, कि रजिया ने कहीं गुपचुप किसी से शादी तो नहीं कर ली। उसकी शादी का पता लगाने के लिए पटियाला हाउस कोर्ट,तीस हजारी कोर्ट और कड़कड़डूमा कोर्ट के मैरिज रजिस्ट्रारों की अदालत के रिकार्ड छाने गये, परन्तु पुलिस का यह प्रयास भी विफल रहा। कहीं भी रजिया द्वारा शादी किये जाने का कोई प्रमाण नहीं मिला।

हर ओर से निराशा के बाद पुलिस का ध्यान एक बार फिर फहीम पर गया। पुलिस ने इस आशय से उसके घर की निगरानी रखनी शुरू की, कि अगर रजिया के गायब होने में उसका कोई हाथ होगा तो उसकी गतिविधियों से पता चल जायेगा। पुलिस कई दिन निगरानी करती रही, लेकिन कोई नतीजा न निकला। फहीम ज्यादातर अपने घर में ही मौजूद रहता था। वह थोड़ी-बहुत देर के लिये गायब होता भी था, तो जल्दी ही लौट आता था। ऐसी स्थिति में हालांकि उस पर सन्देह करना व्यर्थ था, फिर भी पुलिस ने उसकी निगरानी जारी रखी।

रजिया को गायब हुए एक सप्ताह से ज्यादा हो चुका था। उसके अपहरण के मामले में पुलिस पर तरह-तरह के दबाव पड़ रहे थे। उल्टे-सीधे आरोप लगाये जा रहे थे, सो अलग। पुलिस इस सबको लेकर काफी परेशान थी।

२ अप्रैल '९८ की शाम को फहीम अपने घर लौटा, तो काफी घबराया हुआ लग रहा था। पुलिस को उस पर सन्देह हुआ। वह उसे पकड़कर पुलिस चौकी ले आयी। पुलिस चौकी में उसकी तलाशी ली गयी, तो जेब से रजिया का एक पत्र मिला। रजिया ने पत्र में अपनी परेशानियों का जिक्र करते हुए लिखा था कि वह जल्दी से जल्दी उसके पास आ जाये। पत्र दो-तीन दिन पहले ही लिखा गया था।

फहीम के पास पत्र मिलने से यह बात स्पष्ट हो गयी कि रजिया को गायब करने में उसी का हाथ था।

पुलिस ने फहीम से पूछताछ की, तो उसने बताया कि वह और रजिया पिछले तीन साल से एक-दूसरे को प्यार करते थे। उन्होंने अगस्त १९९५ में निजामुद्दीन की मस्जिद में निकाह भी कर लिया था। निकाह के समय रजिया ने डर की वजह से अपने अब्बा को अपना भाई और दादा को अब्बा बताया था। ऐसा उसने इसलिए किया था, जिससे निकाह का राज न खुले।

फहीम के अनुसार, रजिया और उसकी प्रेम-कहानी तीन साल पहले छत से शुरू हुई थी। वे दोनों निकाह करके एक हो जाना चाहते थे, लेकिन

दोनों को चोरी-छुपे निकाह करना पड़ा। निकाह के बाद भी रजिया अपने परिवार से विद्रोह करने की हिम्मत नहीं जुटा सकी थी। मजबूरी में उसे तीन वर्ष तक निकाह की बात छुपाये रखकर अपने परिवार के साथ रहना पड़ा था।

रजिया अपने घर वालों के दकियानूसी विचारों को अच्छी तरह जानती थी। वे लोग फहीम से उसका निकाह कभी नहीं होने देते। इसी लिए दोनों को चोरी-छुपे निकाह करना पड़ा। निकाह के बाद भी रजिया अपने परिवार से विद्रोह करने की हिम्मत नहीं जुटा सकी थी। मजबूरी में उसे तीन वर्ष तक निकाह की बात छुपाये रखकर अपने परिवार के साथ रहना पड़ा था।

फहीम ने यह भी बताया कि रजिया १८ वर्ष नहीं, बल्कि बाईस वर्ष की है। रजिया के घरवाले दकियानूसी विचारों और सख्त स्वभाव के थे। उनकी वजह से उन दोनों के मिलने में काफी परेशानी आती थी। मजबूरी में अपने घरवालों को बरगलाने के लिए रजिया को अपहरण का नाटक करना पड़ा था।

फहीम ने बताया कि रजिया उसके खालाजाद भाई अनीस के यहां जगतपुरी में रह रही है। बीच-बीच में वह उससे मिलने जाता रहता है। फहीम को साथ लेकर पुलिस जगतपुरी स्थित अनीस के घर पहुंची। रजिया वहां नहीं थी। पता चला, अनीस उसे अपने किसी परिचित के यहां नोएडा ले गया है।

३ अप्रैल '९८ की सुबह पुलिस ने रजिया को नोएडा से बरामद कर लिया। उसने पुलिस को अपने बयान में बताया कि वह फहीम से निकाह कर चुकी है और उसी के साथ रहेगी। वह घर से स्वेच्छा से गयी थी, न कि किसी ने उसका अपहरण किया था।

रजिया की बरामदगी के बाद उसके बयान से उसके घरवाले बड़ी शर्मिन्दगी महसूस कर रहे थे। रजिया ने बताया कि २६ मार्च की सुबह जब वह घर से निकली तो उसने चप्पलों और दुपट्टे पर खून लगाकर घरवालों को भ्रमित करने के लिए ड्राइंग-रूम में छोड़ा था। खून उसने अपने पैरों में ब्लेड मारकर निकाला था। घर से निकलकर वह रिक्शा से जोगाबाई इलाके के बाहर ट्रांसफार्मर तक गयी। वहां से उसने जगतपुरी के लिए ऑटो लिया। उसके घर छोड़ने की यह योजना फहीम को मालूम थी। फहीम बाद में उसी दिन जगतपुरी जाकर उससे मिला था। उसने रजिया से कहा था कि स्थिति सामान्य होते ही वह उसके साथ रहना शुरू कर देगा।

पूछताछ के बाद पुलिस ने रजिया को पटियाला हाउस कोर्ट के मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश किया। अदालत में भी रजिया ने यही कहा कि वह शादीशुदा है और अपने पति के साथ रहना चाहती है, न कि परिवारवालों के साथ। निकाह की बात साबित करने के लिए फहीम की ओर से अदालत के सामने निकाहनामे की कॉपी भी पेश की गयी।

रजिया बालिग थी और शादीशुदा भी। अदालत ने उसे फहीम के साथ जाने की इजाजत दे दी। वह उसे लेकर अपने घर चला गया। इस तरह रजिया और फहीम की प्रेम-कहानी पूरी हुई।●

(पृष्ठ २० का शेष)

हस्ताक्षर कराये गये। बाद में एन०एम०सी० में ३० जनवरी '९८ को उसका आपरेशन हुआ। उसका गुर्दा निकालने के बाद अखिलेश ने उसे कुल ६ हजार रुपए देकर भगा दिया। राकेश ने थाना सेक्टर २० में रिपोर्ट लिखायी है।

नौरोजी नगर निवासी डी०एम० निरंग के बेटे राजेश कुमार का गुर्दा भी नोएडा मेडिकेयर सेंटर में निकाले जाने का मामला पता चला है। मानसिक रूप से विक्षिप्त राजेशकुमार का गुर्दा सितम्बर १९९७ में निकाला गया था। [illegible] पत्रों में उसका नाम-पता फर्जी लिखाया गया था।

नोएडा मेडिकेयर सेंटर के मालिकों, डाक्टरों और गुर्दा काण्ड के अन्य आरोपियों की गिरफ्तारी पर खूब बावेला मचा। ९ मई '९८ को नोएडा मेडिकेयर सेंटर पर पुलिस द्वारा मारे गये छापे और कथित अभियुक्तों की गिरफ्तारी के विरोध में १० मई को नोएडा के सभी मेडिकल सेंटर, अस्पताल और नर्सिंग होम बंद रहे, पर पुलिस ने इसकी परवाह नहीं की।

१० मई को सारे अभियुक्तों को गाजियाबाद के अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (पंचम) श्री मुशर्रफ हुसैन की अदालत में पेश किया गया। अभियुक्तों की ओर से उनकी जमानत की अर्जियां भी दी गयीं। इसके लिए अभियुक्तों ने प्रमाण के तौर पर कुछ शपथपत्र भी अदालत के समक्ष पेश किये, लेकिन ये शपथपत्र फर्जी पाये गये।

उसी दिन नोएडा में इंडियन मेडिकल एसोसिएशन के अध्यक्ष वी०एस० चौहान ने प्रेस कांफ्रेंस की, जिसमें कहा गया कि नोएडा मेडिकेयर सेंटर के डाक्टरों को एक साजिश के तहत फंसाया गया है। गुर्दों की दलाली करनेवाले गिरोह से उनका कोई लेना-देना नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि गुर्दा निकालना एक दिन का काम नहीं है। इस प्रक्रिया में एक सप्ताह लगता है।

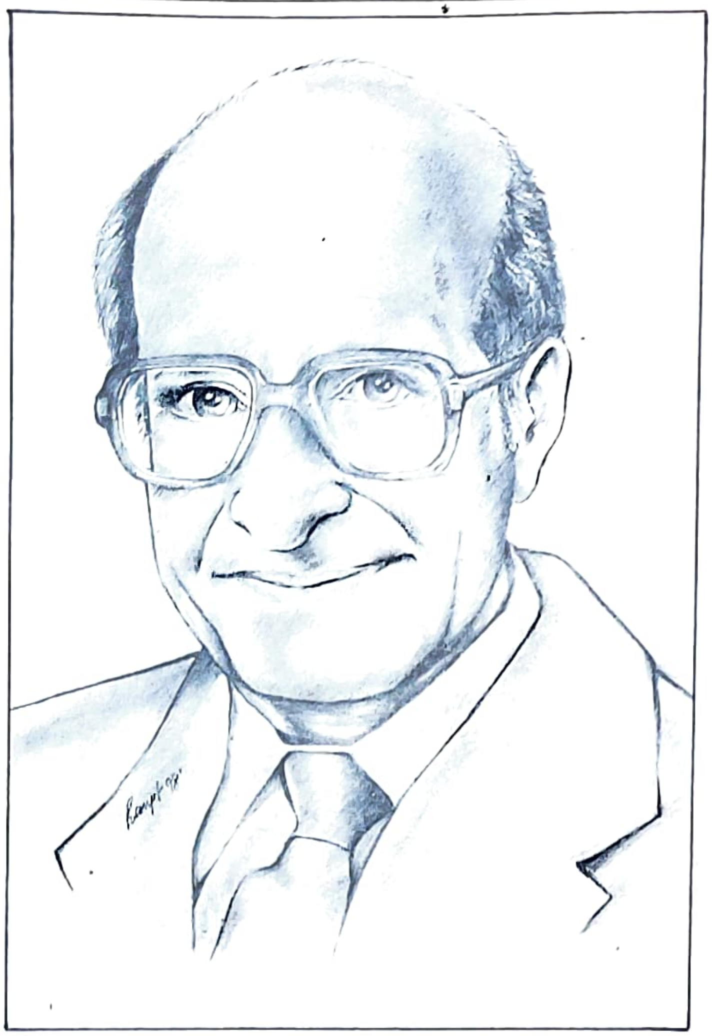
कितने लोगों के साथ धोखाधड़ी करके उनके गुर्दे अमीरों को प्रत्यारोपित किये गये, यह पता करने के लिए नोएडा मेडिकेयर सेंटर के रिकार्ड और कम्प्यूटर रूम की जांच जरूरी थी। ११ मई '९८ को पुलिस जब इसके लिए नोएडा मेडिकेयर सेंटर पहुंची, तो अस्पताल के कर्मचारियों ने यह कहकर उसे रोक दिया कि रिकार्ड और कम्प्यूटर रूम सील है। बिना अदालती आदेश के जांच नहीं की जा सकती। मजबूरी में पुलिस को बैरंग लौटना पड़ा।

गुर्दा खरीद-फरोख्त काण्ड का मुख्य अभियुक्त अखिलेश यादव फरार था। उसने १४ मई को गाजियाबाद के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत में आत्मसमर्पण कर दिया। अखिलेश डेढ़ साल पहले नोएडा मेडिकेयर सेंटर में ड्राइवर रह चुका था। बाद में वह टैक्सी चलाने लगा था।

१३ मई को सेक्टर २० थाने की पुलिस ने पूछताछ हेतु अभियुक्तों के रिमाण्ड के लिए अर्जी दाखिल की थी। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट श्री यशपाल शर्मा ने १४ मई को इस अर्जी पर सुनवाई के बाद नोएडा मेडिकेयर सेंटर के मालिक डा० नवीन चौधरी, डा० हर्ष जौहरी, डा० संजय वधावन और सिपाही संजय सिंह को चार दिन के पुलिस रिमाण्ड पर पुलिस को सौंप दिया। शेष अभियुक्तों में से किसी की भी उस दिन जमानत नहीं हो सकी।

इंडियन मेडिकल एसोसिएशन ने कुछ अस्पतालों में इस तरह गुर्दे निकालने और उनका प्रत्यारोपण करने पर चिंता जताते हुए इस मामले की जांच के लिए एक जांच कमेटी गठित की है। आई०एम०ए० के महासचिव डा० प्रेम अग्रवाल ने जांच कमेटी की घोषणा करते हुए ऐसा कार्य करनेवाले डाक्टरों की भर्त्सना करते हुए कहा है कि अगर कोई डाक्टर ऐसा करता है, तो यह मानव-सेवा के इस पेशे के साथ विश्वासघात और जघन्य अपराध है। ऐसे काम कानूनी रूप से कानून के दायरे में होने चाहिए।

●



लेखक

पूर्व निर्धारित होता है जीवन

–नानी ए० पालकीवाला

"मैं विश्वास करता हूं कि व्यक्ति या राष्ट्र के जीवन का बुनियाद ढांचा पूर्वनिर्धारित होता है। इस पूर्वनिर्धारित को पहले से देख पाने की दिव्य दृष्टि का उपहार बहुत कम व्यक्तियों को प्राप्त होता है..."

प्रारब्ध के बारे में हर व्यक्ति अपने निजी अनुभवों के आधार पर विश्वासों को बना लेता है। आज मैं आपको अपने निजी जीवन की कुछ घटनाएं बता रहा हूं। आप अपनी मर्जी से जो चाहें, निष्कर्ष निकाल सकते हैं। हां, मैं आपसे निवेदन करता हूं कि बिना किसी पक्षपात या पूर्वाग्रह के, अपने दिमाग को खुला रखकर तय करें कि आप जो सोच रहे हैं, वह सही निष्कर्ष हो सकता है।

शायद इस पूरी समस्या का सूत्र वाक्य डा० जानसन का था, जिसे 'द आक्सफोर्ड बुक आफ द सुपरनेचुरल' में उद्धृत किया गया है-"सभी तर्क इसके खिलाफ हैं, मगर सभी विश्वास इसके पक्ष में हैं।"

यह सोचना गलत है कि एक राष्ट्र या व्यक्ति, जो भाग्य में विश्वास करता है, वह जरूर पिछड़ा हुआ है। जर्मन लोगों ने बढ़ती हुई संख्या में रहस्यमय चमत्कारों और अलौकिक पर विश्वास करना शुरू कर दिया है। फ्रेंच रेडियो मौसम की दैनिक भविष्यवाणी के साथ उस दिन का राशिफल भी प्रसारित करता है। यही नहीं, फ्रांस में ऐसे दस हजार करदाता नागरिक रहते हैं, जो अतींन्द्रिय शक्ति रखते हैं। फ्रांस की विश्वविख्यात सारबून युनिवर्सिटी में सन् १६६६ में हटा दिये गये ज्योतिष विषय को फिर से स्थान मिल गया है।

संसार में कुछ ऐसे महानतम व्यक्ति हुए हैं, जो यह विश्वास करते थे कि उनके जीवन की कुछ घटनाएं पूर्वनियोजित थीं और कुछ व्यक्तियों को पूर्वबोध का दुर्लभ गुण प्राप्त होता है।

डा० राधाकृष्णन का उदाहरण सीधे खयालों में आता है, जो भारत के उपराष्ट्रपति और फिर राष्ट्रपति बनने से बरसों पहले दर्शन शास्त्र के सिर्फ एक प्रोफेसर थे। अगर आप उनके पुत्र गोपाल की लिखी हुई उनकी जीवनी पढ़ें, तो आपको पृष्ठ १४३ पर निम्नलिखित पैराग्राफ मिलेगा।

"इन बरसों में किसी वक्त जब राधाकृष्णन यूरोप में गर्मियां बिता रहे थे, वह उस समय के प्रसिद्ध हस्तरेखा शास्त्री 'कीरो' से मिले थे। कीरो ने उनकी हस्तरेखाओं का अध्ययन करके भविष्यवाणी की थी कि वह सर्वोच्च पद पर पहुंचकर एक राष्ट्र के प्रमुख बनेंगे, लेकिन अपनी मृत्यु से पहले दिमागी संतुलन खो बैठेंगे। ये दोनों भविष्यवाणियां उस समय इस हद तक अविश्वसनीय लगी थीं कि वे उनके परिवार में एक लतीफा बनकर रह गयी थीं।"

इस पैराग्राफ में पूर्वनियोजन एवं पूर्वबोध, दोनों तथ्यों के प्रभावशाली प्रमाण मिलते हैं।

प्लेटो ने सुकरात का कथन लिखा है, "अतीत में भविष्यवाणी सुनानेवाले आवाज से मैं सुपरिचित हो गया था, जो हमेशा मेरे साथ रहती थी और जब मैं छोटी-छोटी बातों में भी गलत राह पर होता था, तो मेरा विरोध करती थी।"

विंस्टन चर्चिल के जीवन की एक प्रसिद्ध घटना इसी तरह की है। एक बार चर्चिल कार में बम के हमले से बाल-बाल बचे थे। घटना के दिन उन्होंने कार में रोज बैठने की अपनी जगह से दूर दूसरी तरफ बैठना पसंद किया था। उनकी श्रीमती जी ने इसका कारण पूछा था। चर्चिल ने बताया, "मैं नहीं जानता।" फिर कहा, "हां, मैं जानता हूं। कार के दरवाजे तक पहुंचने से पहले ही किसी ने मेरे भीतर से ही मुझसे कहा,'रुको'।' तभी मैं खुले दरवाजे को छोड़कर दूसरी तरफ गया और उधर का दरवाजा खोलकर कार में बैठ गया।" इस तरह बम के हमले से चर्चिल साफ बच गये। उनका बाल भी बांका नहीं हुआ।

ऐसे 'अपरिचित अतिथि' का मै एक और उदाहरण देना चाहता हूं, जिसका मार्गदर्शन आपकी जिंदगी बदल सकता है। १६४६ में ३६ वर्षीया मदर टेरेसा भारत में एक साधारण शिक्षिका संन्यासिनी थीं। १० सितम्बर १६४६ के दिन जब वह ट्रेन से दार्जिलिंग जा रही थीं, उन्होंने एक दैवी आदेश महसूस किया। संदेश मिला कि उन्हें अपना वर्तमान एकान्तवासी अस्तित्व त्याग देना चाहिए और कलकत्ता के स्लम एरिया में जाकर गरीबों में भी सबसे ज्यादा गरीबों की देखभाल करनी चाहिए। दो साल बाद रोम के चर्च की अनुमति से उन्होंने कानवेंट छोड़ दिया। उस समय उनकी जेब में सिर्फ पांच रुपये थे।

फिर १६५० में उन्होंने एक प्रार्थना-पत्र देकर पोप से अनुमति प्राप्त की और अपना धर्मसंघ 'द सोसाइटी आफ द मिशनरीज आफ चैरिटी' चलाना शुरू किया। इस तरह उन्होंने अपने 'अपरिचित मेहमान' के दैवी मार्गदर्शन के बाद कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

प्रारब्ध या नियति के विषय पर मैं अपने विश्वास को संक्षेप में व्यक्त करना चाहता हूं।

पहले, मैं विश्वास करता हूं कि

व्यक्ति या राष्ट्र के जीवन का बुनियादी ढांचा पूर्वनिर्धारित होता है।

दूसरे, इस पूर्वनिर्धारित को पहले से देख पाने की दिव्य दृष्टि का उपहार बहुत कम व्यक्तियों को प्राप्त होता है।

तीसरे, कभी-कभी विशिष्ट मनुष्य को ऐसे साधनों से मार्गदर्शन मिलता है, जिसकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं होती है।

चौथे, मैं स्वतंत्र इच्छाशक्ति में विश्वास करता हूं, लेकिन पूर्वनियोजित परिसीमा में ही। मेरे विचार से, हम जिस विषय में बात कर रहे हैं, सबसे सरल समानता उस कुत्ते से की जा सकती है, जो एक लंबे पट्टे से बंधा होता है। कुत्ते को घूमने-फिरने की उतनी ही आजादी होती है, जितनी पट्टा दे सकता है, मगर उससे आगे नहीं

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसी विचार को अधिक उपयुक्त भाषा में व्यक्त किया है। अमेरिकी सम्पादकाचार्य और उच्च ख्याति के लेखक नार्मन कजिन्स ने पंडित नेहरू का इंटरव्यू लिया था। राजनैतिक प्रश्नों के बाद कजिन्स ने आखिरी सवाल कुछ इस तरह पूछा था :

"इंग्लैंड में शिक्षा-दीक्षा के कारण आपके पास आधुनिक दिमाग है, जबकि आपकी जड़ें इस प्राचीन भूमि में हैं। आप स्वतंत्र इच्छाशक्ति और प्रारब्ध में कैसे सामंजस्य करते हैं?"

इस सवाल पर कुछ रुककर सोचने के बाद पंडित नेहरू ने जवाब दिया :

"दोनो का हमारे जीवन में स्थान है। सबसे अच्छी समानता जो कोई सोच सकता है, वह जीवन की तुलना ताश के खेल ब्रिज-से करने मे है। आपके सामने जो पत्ते होते हैं, उन पर आपका कंट्रोल नहीं होता, मगर जिस तरह आप अपना हाथ खेलते हैं, वह आपकी स्वतंत्र इच्छाशक्ति होती है। अच्छा हाथ होने पर, फिर भी आप खेल को गड्डमड्ड कर सकते हैं, या इसका उलटा भी।"

अब मैं उन चारों विश्वासों पर आधारित अपने जीवन के अनुभवों की चर्चा करता हूं, जिनका जिक्र अभी किया है।

सन् १९४४ में वकालत शुरू करने पर मैंने अदालती दस्तावेज के साथ पिछली दीवालियों, क्रिसमस, रमजान, ईदें और लंबी छुट्टियों के बारे में पढ़ना जारी रखा। मुझे विश्वास है कि यह यात्रा पैसे से खरीदी गयी सारी चिकित्सा-सुविधा के बावजूद पूर्वनिर्धारित समय पर ही समाप्त होगी।

आज मैं जीवित हूं, तो एक वायरस के कारण, जिसका संक्रमण चालीस सालों से भी पहले हुआ था। ९ मई १९५३ को सुप्रीम कोर्ट में एक स्पेशल लीव पिटिशन पर बहस करने के लिए मुझे लगाया गया था। इस मामले में गाग्रत एंड कंपनी के हिस्सेदार चन्द्रकांत मेहता सलाहकार मुख्तार थे। हम दोनों ने दिल्ली से मुंबई के वापसी टिकट उसी दिन की रात की फ्लाइट से बुक करा लिये थे। ६मई को मुझे जुकाम के साथ बुखार आ गया और मुझे मुकदमे के कागजात वापस करने पड़े। अगले दिन मैंने इरादा बदल दिया और मुकदमा लड़ने पर सहमत हो गया, क्योंकि वादी एक गरीब और योग्य व्यक्ति था। मगर ८ मई को मेरा बुखार और तेज हो गया और एक बार फिर मुझे मुकदमे के कागजात लौटाने पड़े। सालीसिटर जनरल श्री सी०के० दफ्तरी ने कृपा करके मेरा स्थान ले लिया। मैं दिल्ली नहीं जा पाया, तो चन्द्रकांत मेहता एयरलाइन दफ्तर गये और अपना वापसी टिकट १० मई की सुबह के लिए बदलवा लिया, क्योंकि उन्हें रात का हवाई सफर पसंद नहीं था।

९ मई की देर शाम जिस विमान ने अपने पूरे मुसाफिरों को लेकर दिल्ली से उड़ान भरी, वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया। एक भी व्यक्ति जीवित नहीं बचा। श्री मणिशंकर अय्यर के पिता भी उस विमान में मुसाफिर थे।

बचपन में मैं भयानक रूप से हकलाता था। लगता था कि मेरे एडवोकेट या पब्लिक स्पीकर बनने के लिए तनिक भी गुंजाइश नहीं बची थी। फिर भी एक बच्चे की दुस्साहसिक विशेषता के साथ मैं भाषण प्रतियोगिताओं में भाग लेने लगा। मगर मुझे विश्वास है कि अपनी निजी संकल्पशक्ति के बिना मैं यह बाधा कभी पार नहीं कर सकता था।

जीवन के कुछ मोड़ों पर जब-जब मैंने अपनी सीमित बुद्धि से गलत निर्णय लिया, मुझे ऐसा महसूस हुआ, जैसे किसी अलौकिक शक्ति ने मेरी इच्छाशक्ति को मोड़ दिया हो और मुझे स्वयं से भी बचा लिया हो।

१९६८ में, कांग्रेस सरकार में गोविन्द मेनन कानून मंत्री थे। उन्होंने मुझ पर बहुत दबाव डाला कि मैं भारत के महान्यायवादी का पद स्वीकार कर लूं। अत्यधिक हिचकिचाहट के बाद मैं राजी हो गया। जब मैं दिल्ली में था, तो मैंने अपनी स्वीकृति उन तक पहुंचा दी और उन्होंने मुझे बताया कि अगले दिन घोषणा कर दी जायेगी। मैं प्रसन्न था कि अनिर्णय के कष्टकारक क्षण समाप्त हो गये।

गहरी नींद का सुख मुझे हमेशा प्राप्त रहा है। उस रात भी सोते समय गहरी नींद में डूब गया, लेकिन तीन बजे अचानक मैं एकदम से जाग उठा। मुझे लगा, जैसे मैं अपनी चेतना में तैर रहा होऊं। तभी आभास हुआ कि मैंने गलत निर्णय लिया है और समय रहते मुझे उसे उलट देना चाहिए। सबेरे उठते ही मैंने कानून मंत्री को अपना निर्णय बदलने की बात बताकर क्षमा मांग ली।

आगे के वर्षों में मैंने कांग्रेस सरकार के रहते सरकार के खिलाफ कई ऐसे महत्वपूर्ण मामलों में बहस की, जिनसे भारत के संवैधानिक कानून को नया स्वरूप मिला। ऐसे मामलों में प्रमुख थे- बैंक राष्ट्रीयकरण (१९६९), प्रिवी पर्स (१९७०), फंडामेंटल एंड द मिनर्वा मिल्स केस (१९८०) और राइट्स (१९७२-७३) आदि।

इस तरह मेरे जीवन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण निर्णय लेने का श्रेय मुझे नहीं, किसी अन्य शक्ति को था।

२६ जून १९७५ को देश में आपातकाल की घोषणा हुई। उसके बाद मैं अपनी जिंदगी के सबसे ज्यादा अंधेरे दौर से गुजरा। व्यक्तिगत तौर पर मेरे साथ कुछ भी नहीं हुआ, लेकिन हमारे लोकतंत्र के भविष्य को लेकर बहुत गहरे अफसोस में रहा। एसीसी (एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी) में एक कर्मचारी था, जिसका उपनाम ठाकर था। उसे कुछ समय के लिए भविष्य देखने की क्षमता प्राप्त थी। मुझे याद है, सेल (स्टील अथारिटी आफ इंडिया लिमिटेड) के तत्कालीन चेयरमैन और मेरे मित्र वदूद खान ने मुझे बताया था कि उन पर वज्रपात हो गया था, जब ठाकर ने भविष्यवाणी की थी कि अमेरिका में रहनेवाला उनका भाई एक हवाई दुर्घटना में मर जायेगा। दुर्भाग्य से वदूद खान का भाई विमान-दुर्घटना में सचमुच चल बसा।

इस तरह मैं ठाकर से बात करने के लिए उत्सुक हो उठा कि भविष्य में मेरे लिए क्या है।

१९७६ में एक सुबह मैंने ठाकर को बातचीत के लिए अपने घर बुलाया। भविष्य बताते हुए उसने कहा, "मैं रोम में आपको एक खूबसूरत और विशाल महल में रहते देख रहा हूं।" मैंने उसे बताया कि मैं विदेश में आराम से रहने में रुचि नहीं रखता, अपने देश के लोगों के लिए जो कर सकता हूं, करते रहना चाहता हूं। उसने आगे बताया, "आप वहां लगभग दो साल रहेंगे, जबकि आपके पास भारत लौटने के कई अवसर आयेंगे।" बाद में मैंने इस बात को दिमाग से निकाल दिया।

१९७७ में जब जनता सरकार सत्ता में आयी, श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने मुझसे संपर्क करके वाशिंगटन में भारत का राजदूत नियुक्त करने का प्रस्ताव रखा। मैं यह कार्य-भार लेने के लिए तनिक भी इच्छुक नहीं था, क्योंकि आपातकाल हटे अधिक दिन नहीं हुए थे और मैं बाहर जाने के बजाय देश में ही रहना चाहता था। मैंने श्री वाजपेयी को विनम्र उत्तर भेजकर क्षमा मांग ली। लेकिन बाद में मैंने अपना इरादा बदल दिया और उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

जब मैं वाशिंगटन गया, ठाकर के कहे शब्द मुझे याद आ गये। ठाकर ने एक भूल की थी। उसने रोम की बात की थी, जबकि वाशिंगटन में मुझे वह खूबसूरत और विशाल महल रहने को मिला था। मैं लगभग दो साल वहां रहा और उस दौरान मुझे अपने खर्चे पर भारत आने के कुछ अवसर भी मिले।

मेरे जीवन में दिव्य दृष्टि या पूर्वबोध का सबसे अधिक अविश्वस-नीय अनुभव श्रीमती इंदिरा गांधी के

उस मुकदमे से संबंधित था, जिसकी पराकाष्ठा आपातकाल की घोषणा में हुई थी।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने जून १९७५ में फैसला किया कि श्रीमती इंदिरा गांधी का लोकसभा चुनाव अवैध था। इसका अर्थ था कि वह लोकसभा सदस्य नहीं रहीं और उनके प्रधान मंत्रित्व को भी खतरा पैदा हो गया। श्रीमती गांधी ने उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की और २३ जून १९७५ को अंतरिम राहत के उनके प्रार्थना-पत्र पर मैंने बहस की।

न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अय्यर ने सुनवाई की और अगले दिन अंतरिम राहत का आदेश पारित कर दिया। अंतरिम आदेश यह था कि अपील पर सुनवाई और अंतिम निर्णय होने तक श्रीमती गांधी लोकसभा में बैठ सकती थीं और अन्य सदस्यों की तरह लोकसभा की कार्यवाहियों में भाग ले सकती थीं।

उन पर सिर्फ एक रोक लगायी गयी थी, वह यह कि उन्हें लोकसभा में मतदान का अधिकार नहीं रहेगा। माननीय न्यायाधीश ने उल्लेख किया था कि इस रोक से कोई कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि उस समय लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा था और लोकसभा की बैठक शुरू होने पर मैं मतदान के अधिकार के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकता था।

ठीक उसी दिन २४ जून १९७५ की शाम को मैं श्रीमती गांधी से उनके निवास पर मिला। मैंने उन्हें बताया कि अंतरिम आदेश संतोषजनक है और उन्हें चिंता नहीं करनी चाहिए।

विमान से मुंबई लौटते समय खादी पहने हुए और खादी का थैला लिए एक अधेड़ तथा सरल सज्जन मेरे बगल में बैठे थे। उन्होंने मुझसे प्रधानमंत्री के मुकदमे के बारे में पूछा, तो मैंने संक्षेप में बता दिया।

उन सज्जन ने अपने बारे में बताया कि वह बंगलौर के एक गांधी आश्रम में रहते थे और मई १९७५ से वह भारत के विभिन्न भागों की यात्रा पर आश्रम से बाहर थे। उन्होंने बंगलौर के एक अतीन्द्रिय दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति का नाम लेकर चर्चा की कि उसकी कुछ भविष्यवाणियां अजीब-सी थीं। इसके आगे हमारी बातचीत कुछ इस प्रकार थी :

"मई १९७५ में जब मैंने आश्रम छोड़ा, अतीन्द्रिय दृष्टा ने मुझे बताया था कि प्रधानमंत्री इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपना मुकदमा हार जायेंगी, फिर भी वह विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली महिला बनेंगी।" विमान में मेरे पड़ोसी ने बताया।

मैंने आश्चर्य से पूछा, "आज की तुलना में श्रीमती इंदिरा गांधी और अधिक शक्तिशाली कैसे हो सकती हैं? वह तो पहले से ही पृथ्वी पर सबसे बड़े लोकतंत्र की प्रमुख हैं। अब उनकी शक्ति में और क्या जुड़ सकता है?"

'मैं नहीं जानता। मैं तो वही दोहरा रहा हूं, जो उसने मुझसे कहा था।"

मैं इस बेतुकी बात से प्रभावित नहीं हुआ और उस अतीन्द्रिय द्रष्टा का नाम भी याद रखने की परवाह नहीं की। फिर भी बाचचीत जारी रखने के लिए मैंने पूछा, "उस भविष्यवक्ता ने क्या कुछ और कहा था?"

"हां, उसने कहा था कि प्रधानमंत्री को जो असाधारण शक्ति मिलेगी, वह मार्च १९७७ में खत्म हो जायेगी।"

"क्या उसने कोई और भविष्यवाणी की थी?"

"हां, उसने बताया था कि इसके बाद भारतीय जन-जीवन में सर्वाधिक लोकप्रिय नेता जयप्रकाश नारायण लगभग दो साल में जानलेवा बीमारी से चल बसेंगे। उसने यह भी कहा था कि यशवन्त राव बलवन्त राव चह्वाण, जो प्रधानमंत्री बनने का सपना देख रहे हैं, उस पद पर कभी नहीं पहुंच पायेंगे।"

मैं यह आश्चर्य करता हुआ घर आ गया कि भविष्य क्या सामने लायेगा।

सोलह घंटे से कम समय में आपातकाल की घोषणा हो गयी। वह २६ जून १९७५ की काली सुबह थी।

आपातकाल की घोषणा के बाद मेरे दिमाग में चारों भविष्यवाणियां गूंजती रहीं। मैंने अपने घर पर 'द टाइम्स आफ इंडिया' के तत्कालीन संपादक एवं कुछ अन्य प्रसिद्ध पत्रकारों को एक सादगीभरी दावत में बुलाया और उन्हें गांधी आश्रमवाले सज्जन से हवाई जहाज पर हुई बातचीत के बारे में बताया।

अगले महीने मैंने पूरी कहानी इंडियन एक्सप्रेस के मालिक रामनाथ गोयनका को बतायी थी। वे अंधकार और निराश के दिन थे। बस रोशनी की क्षीण रेखा वह भविष्यवाणी ही थी कि मार्च १९७७ में तानाशाही खत्म हो जायेगी।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन दो भविष्यवाणियों के साथ शेष दोनों भविष्यवाणियां भी सच हो गयीं। अक्टूबर १९७९ में जयप्रकाश नारायण की मृत्यु हो गयी और नवम्बर १९८४ में यशवंत राव चह्वाण भी बिना प्रधानमंत्री बने दिवंगत हो गये।

२२ मार्च १९७७ की शाम से पहले फिर मैं श्रीमती गांधी से नहीं मिला था। चुनाव में जनता पार्टी ने पूर्ण विजय प्राप्त की थी और श्रीमती गांधी को प्रधानमंत्री पद से त्याग-पत्र देना पड़ा था। उस दिन मैं दिल्ली में था और श्रीमती गांधी से मिलने उनके निवास पर गया। मैंने उन्हें जून १९७५ में विधानसभा के दौरान एक अपरिचित सज्जन से हुई बातचीत के बारे में बताया और कहा, "इंदिरा जी, अगर यह बात कुछ सांत्वना दे सके, तो मैं बता दूं कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय में आपके खिलाफ चुनाव का मुकदमा दायर होने से लेकर अब तक की सारी घटनाएं पूर्वनियोजित लगती हैं।"

यह सुनकर उनकी आंखों में आंसू आ गये थे, सिर्फ उसी समय मैंने उन्हें इतने गहरे क्लेश की मुद्रा में देखा था।

प्रारब्ध पूर्वनियोजन और पूर्वबोध के सिद्धान्त के अतिरिक्त इन सच्ची बातों का मेरे पास और कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

मेधावी भौतिकशास्त्री प्रोफेसर स्टीफेन हाकिंग ने अपनी किताब 'ब्लैक होल्स एंड बेबी युनिवर्सेज' में लिखा है, "मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि ब्रह्मांड एक रहस्य है।"

इस कथन से मुझे जो धक्का लगा, उसे शब्दों में नहीं कह सकता। मेरे लिए यह ब्रह्मांड संपूर्ण रूप से एक रहस्य ही नहीं, करोड़ों अविश्वसनीय और अनसुलझे रहस्यों का अनंत समूह है, जिसे मानव मस्तिष्क (मानवीय आत्मा से अलग) कभी नहीं सुलझा सकेगा।

हमारे समय के महानतम वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन का दृष्टिकोण सही था, "सर्वाधिक सुंदर अनुभूति, जो हम पा सकते हैं, वह है रहस्यमयी...मौलिक भावना, जो सच्ची कला और सच्चे विज्ञान के हिंडोले पर स्थित है।"

प्रोफेसर हाकिंग के अनुसार, मानव मस्तिष्क में हजारों लाख खरबों-खरब अणु स्थित हैं। मैं नहीं मानता कि मानव का ऐसा मस्तिष्क भी ब्रह्मांड की प्रारंभिक अवस्था से निरंतर विकास को पूर्णतया निर्धारित करनेवाली नियमावली को खोज पाने लायक कभी हो पायेगा, जब तक कि मानवीय आत्मा विकास की उस स्थिति तक नहीं पहुंच जाती, जिसे श्री अरविन्द ने अतिमानसिक स्थिति बताया है।

कुछ वर्ष पहले मुंबई में एक डिनर पार्टी थी, जिसमें भारत के महान वैज्ञानिक डा० होमी भाभा शामिल हुए थे और लखनऊ का एक सरल व्यक्ति भी शामिल था, जिसकी ख्याति कुछ असामान्य शक्ति रखने को लेकर थी। डा० भाभा उसकी शक्ति का परीक्षण करना चाहते थे। उन्होंने अपने पर्स से एक रुपये का एक नोट निकालकर बिना उसे देखें अपनी बगल की जेब में रख लिया और उस व्यक्ति से नोट का नंबर पूछा। उसने उस नोट का नंबर एकदम सही-सही बता दिया।

यह दिमाग पढ़ने (माइंड रीडिंग) का मामला नहीं हो सकता था, क्योंकि डा० भाभा ने खुद भी नोट का नंबर नहीं देखा था। बाद में डा० भाभा से दिल्ली में मुलाकात होने पर मैंने इसका जिक्र करते हुए उनसे पूछा था कि इस शक्ति की क्या कोई वैज्ञानिक व्याख्या हो सकती है। उन्होंने स्वीकार कर लिया कि अभी तक इसकी कोई व्याख्या नहीं है। ●

संस्थापक : स्वर्गीय श्री क्षितीन्द्र मोहन मित्र। प्रधान सम्पादक : आलोक मित्र। सहायक सम्पादक : देवकुमार सिंह। अशोक मित्र द्वारा मित्र प्रकाशन लिमिटेड के लिए प्रकाशित तथा माया प्रेस प्रा०लि०, इलाहाबाद-३ में मुद्रित। दिल्ली कार्यालय-१०५ रोहित हाउस, ३ टालस्टाय मार्ग, नई दिल्ली-११०००१

Regd. No. AD-5
Lic. No. U/AD-5
Manohar Kahaniyan
June 1998
Rs. 18.00 Per Copy

